नरेश

[मैकियावली की प्रसिद्ध रचना 'इल प्रिंसय' का स्वतंत्र
टिप्पणी सहित अनुवाद]

●

राधानाथ चतुर्वेदी

किताब महल, इलाहाबाद

भूमिका

यह अनुवाद भारतीय विश्वविद्यालयों के पूर्व स्नातक और स्नातकोत्तर विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को दृष्टि में रख कर प्रस्तुत किया गया है। मूल पाठ ज्यों का त्यों रखा गया है लेकिन हर अध्याय के अन्त में सारांश दे दिया गया है जिसके आधार पर सम्पूर्ण पुस्तक का पारायण करने में पन्द्रह मिनट से अधिक का समय नहीं लगना चाहिये। विभिन्न विश्वविद्यालयों में मैकियावली के सम्बन्ध में जितने प्रश्न पूछे गये हैं, टिप्पणी लिखते समय उनका भी ध्यान रखा गया है।

आशा है अनुवाद विद्यार्थियों के अलावा सामान्य वर्ग के लोगों के लिए भीं उपयोगी सिद्ध होगा।

अनुवादक

विषय-सूची

भाग १

भाग २

अध्याय पृष्ठ

भाग १

निकोलो मैकियावली

§१. मैकियावली का युग

किसी भी विचारक, दार्शनिक या राजनीतिज्ञ के विचारों, उसके दर्शन, उसके सिद्धान्त और उसकी नीतियों को उसके युग की पृष्ठभूमि में ही समझा जा सकता है। वस्तुतः ऐतिहासिक पृष्ठभूमि विचारों के निरूपण और अंकन में वही काम करती है, जो लिखने की प्रक्रिया (Process) में कागज। किसी और विचारक के बारे में संभवतः उक्त कथन को लेकर कोई शंका भी प्रकट की जा सके परन्तु निकोलो मैकियावली के संबंध में तो उक्त कथन अक्षरशः लागू होता है। उसके विचारों को तो बिना युग की पृष्ठभूमि जाने समझा ही नहीं जा सकता।

मैकियावली के जीवनकाल का यूरोप का मानचित्र क्रान्तिकारी छबि आँखों के सामने लाकर खड़ा कर देता है। सारा यूरोप या यों कहिये पश्चिम की सारी सभ्य दुनिया पाँच बड़े देशों में विभक्त थी। वे देश थे; इंगलैण्ड, फ्रांस, स्पेन, जर्मनी और इटली। इन पाँचों देशों को हम दो वर्ग में विभाजित कर सकते हैं : राष्ट्रवादी देश और सामन्तवादी देश। राष्ट्रवादी देशों में फ्रास, स्पेन और इंगलैण्ड आते हैं और सामन्तवादी देशों में जर्मनी और इटली।

राष्ट्रवादी वर्ग के देश फ्रांस, स्पेन और इंगलैण्ड उन दिनों बड़ी उन्नत अवस्था में थे। हम इनमें से प्रत्येक राज्य की स्थिति पर अलग-अलग संक्षेप में विचार करेंगे।

सोलहवीं शताब्दी के प्रथम चरण का फ्रांस अत्यन्त सबल केन्द्रीय शासन के अन्तर्गत था। यह केन्द्रीय शासन सम्पूर्ण फ्रांस को एकता के सूत्र में पिरोये हुए था। लेकिन फ्रांस के निवासियों को यह एकता सहसा किसी जादू के जोर से नहीं मिल गयी थी। इस एकता तथा लुई एकादश के 'सबल केन्द्रीय शासन' के लिए फ्रांस को शताब्दियों दुखों के पहाड़ झेलते हुए प्रयत्न करना पड़ा था। मध्ययुग का फ्रांस भी छोटी-छोटी सामन्तवादी रियासतों में विभक्त था। इनको एक में मिलाकर राष्ट्र का रूप देने का प्रयत्न फिलिप दि फेयर ने किया था। लेकिन इसी बीच शतवर्षीय युद्ध आरंभ हो गया और इस युद्ध ने एकता के लिए किये कराये प्रयत्नों पर पानी फेर दिया। लेकिन शतवर्षीय युद्ध ने जहाँ फ्रांस में कोई सुदृढ़ राजतंत्र स्थापित नहीं होने दिया वहीं उसने छोटे-छोटे सामन्तों और उनकी रियासतों की जड़ें खोद डालने में भी कोई कसर न छोड़ी। इसके साथ ही अन्य मध्ययुगीन संवासों को भी नष्ट कर दिया। बाद में स्थापित होनेवाले राजतंत्र या केन्द्रीय शासन की दृष्टि से मध्ययुग के सामुदायिक, सामन्तवादी और प्रतिनिधि संवासो (Associations) का उन्मूलन हितकारी ही हुआ। पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, जब इन सब का नाश हो गया तो केवल निर्बल राजतंत्र ही फ्रांस में शेष रह गया था। लेकिन सन् १४३९ में फ्रांस की संसद (Estates General) द्वारा राजा को दिये गये इस अधिकार ने निर्बल शासन में जान डाल दी कि राजा को ही राष्ट्रीय सेना के संगठन का एकाकी अधिकार है और इस सेना के संघठन के व्यय भार को सँभालने के लिए वह समूचे देश से कर (Tax) वसूल कर सकता है। सैन्यबल तथा कर लगाने की शक्ति मिलते ही फ्रांस के राजतंत्र को संघठित, सामंजस्यपूर्ण और एकतायुक्त देश बनाते देर न लगी और बहुत शीघ्र ही अँग्रेज़ों को फ्रांस की भूमि से बाहर निकाल दिया गया। और सन् १५०० तक बर्गण्डी, ब्रिटानी और एंजोऊ जैसे सामन्तवादी तालुकों को फ्रांस के नरेश के समक्ष नतमस्तक होने के

लिए विवश कर दिया गया। फ्रांसीसी सामन्तों से कालान्तर में कर लगाने की सारी शक्ति छीन ली गयी और वह फ्रांस के नरेश को दे दी गयी। परिणाम यह हुआ कि फ्रांसीसी नरेशों का सामन्तों के प्रति कोई उत्तरदायित्व न रहा। इसी प्रकार धीरे-धीरे फ्रांस के पादरियों की शक्ति को भी कम किया गया। इस प्रकार सोलहवीं शताब्दी के आरंभ से लेकर सन् १७८६ की राजक्रान्ति तक फ्रांसीसी नरेश राष्ट्र के एकमात्र 'प्रवक्ता' बने रहे। राजतंत्र को सबल बनाने का परिणाम भी अच्छा हुआ। कुछ ही समय में फ्रांस की शक्ति अन्तर्राष्ट्रीय समाज में अनुभव की जाने लगी। फ्रांस के वाणिज्य और व्यवसाय में वृद्धि हुई तथा देश की समृद्धि बढ़ी।

फ्रांस की तरह स्पेन में भी यही हुआ। सोलहवीं शताब्दी के पूर्व एरागाँ और केस्टाइल नाम के दो सामन्तवादी परिवारों की विद्वेषाग्नि में सम्पूर्ण देश बुरी तरह जल रहा था। इस शत्रुता ने देश को राजनीतिक दृष्टि से ही नहीं आर्थिक दृष्टि से भी अत्यन्त निर्बल कर दिया था। किन्तु फर्डीनैण्ड और ईसाबेला के विवाह के कारण दोनों परिवारों में मेल हो गया और फ्रांस की भाँति स्पेन में भी सुदृढ़ राजतंत्र की स्थापना हो गयी। सुदृढ़ राजतंत्र के अस्तित्व के साथ ही स्पेन की राजनीतिक शक्ति भी दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ने लगी।

इंगलैण्ड ने भी यूरोप में तेजी के साथ फैलने वाली राष्ट्रीयता के इस तत्व को आत्मसात् कर लिया। हेनरी सप्तम ने गुलाबों के युद्ध का अन्त कर दिया। हेनरी अष्टम ने सामन्तों की शक्ति को घटाया। व्यावसायिक वर्ग को प्रोत्साहन दिया। इस नये मध्यवर्ग ने अपने नरेश का समर्थन किया जिससे राजतंत्र की शक्ति और भी अधिक बढ़ी। हेनरी अष्टम के बाद रानी एलिज़ाबेथ ने भी वही नीति जारी रखी। फल यह हुआ कि इंगलैण्ड न केवल स्वतंत्र, संप्रभु राजनीतिक इकाई हो गया अपितु उसकी आर्थिक सम्पन्नता में भी वृद्धि हुई। इंगलैण्ड भर में शान्ति और व्यवस्था हो गयी।

इस तरह फ्रांस, स्पेन और इंगलैण्ड जहाँ एक ओर धर्मसत्ता से मुक्ति प्राप्त कर राष्ट्रवाद की दिशा में द्रुतगति से आगे बढ़े चले जा रहे थे वहीं दूसरी ओर सामन्तवादी वर्ग के देशों की दशा बड़ी शोचनीय थी। फ्रांस, स्पेन तथा इंगलैण्ड की राजनीतिक शक्ति और आर्थिक समृद्धि की तुलना में जर्मनी और इटली दोनों ही अत्यन्त निर्बल और विपन्न थे। जर्मनी में बवेरिया के लेविस के शासन काल में जर्मनी की राष्ट्रीय एकता के लिए प्रयत्न किये गये लेकिन वहाँ सामन्तवाद, पवित्र रोमन सम्राट् तथा पोप की शक्तियों का कुछ ऐसा प्रबल प्रभाव था कि स्थिति में कोई विशेष सुधार न हो सका। फलतः वहाँ अराजकताजन्य अव्यवस्था और अशान्ति में बिस्मार्क के समय तक कोई कमी न आ सकी। लेकिन राष्ट्रीयता का विकास जर्मनी में भी सदैव के लिए बन्द न किया जा सका। हाँ, कुछ समय के लिए जर्मनी के राष्ट्रीयकरण की प्रगति अवरुद्ध अवश्य हो गयी।

इटली की दशा जर्मनी से भी गयी बीती थी। सारा देश पाँच बड़ी-बड़ी रियासतों में बँटा हुआ था। देश के सुदूर दक्षिण में समुद्र तट पर नेपिल्स का राज्य था। इसी प्रकार उत्तर-पश्चिम में मिलान का राज्य था। इसे 'डची ऑव मिलान' कहते थे। उत्तरपूर्व में वेनिस गणतंत्र (Venitian Republic) था, जिसका शासनतंत्र कुछ चुने हुए लोगों के हाथ में था। इसीलिए वेनिस के गणतंत्र को इतिहास में आभिजात्यतंत्रात्मक (Aristocratic) राज्य कहा गया है। वेनिस के पड़ोस में ही फ्लोरेंस का गणतंत्र राज्य था। फ्लोरेंस के गणतंत्रात्मक शासन का सन् १५१२ में अन्त हो गया था। मैकियावली इसी राज्य में पैदा हुआ था। इटली के बीचोबीच पोप का राज्य था। ये राज्य—जो क्षेत्र की दृष्टि से छोटी-छोटी रियासतें ही कही जा सकती हैं—सदैव आपस में लड़ा करते थे। इन आपसी लड़ाइयों का सबसे अधिक लाभ पोप उठाते थे। वे अपनी कूटनीति से राज्य की रक्षा करने में संभवतः अन्य सभी राज्यों के शासकों से अधिक चतुर थे। पोपों की

इच्छा यह रहती थी कि वे सम्पूर्ण इटली पर कब्जा कर लें और उस पर शासन करें, किन्तु पोप की सत्ता के आधार इतने निर्बल थे कि उनके भरोसे चतुर से चतुर राजनीतिज्ञ भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता था। फिर भी पोपों की यह इच्छा सत्ता के केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति की परिचायक है। उनके इस कार्य के फलस्वरूप इटली का एकीकरण तो आरंभ हो गया लेकिन वह पूरा न हो सका। मैकियावली ने देखा कि पोपों के कारण ही इटली का राजनीतिक विकास नहीं हो पा रहा है, अर्थात् इटली का राष्ट्र राज्य के रूप में अभ्युदय नहीं हो पा रहा था। फलतः, वह पोप-विरोधी हो गया। इटली के एकीकरण का कार्य कोई बाहर का देश भी कर सकता था। किस तरह, इस तरह कि सम्पूर्ण देश पर कब्जा कर लेता और केन्द्रीय शासन की स्थापना कर देता। आधुनिक काल में अनेक औपनिवेशिक शक्तियों ने एशिया के कई देशों में ऐसा किया भी है। किन्तु तत्कालीन शक्तियों—फ्रांस, स्पेन आदि में से किसी भी राज्य में न तो इतनी शक्ति थी और न इतनी रुचि कि वह सम्पूर्ण इटली पर कब्जा करता और इस प्रकार इटली के निवासियों की राष्ट्रीयता उभारता। इसके अलावा पोप अपनी चतुराई से किसी भी देश को—न फ्रांस को और न स्पेन को, इस बात का मौका देते थे, उनमें से कोई भी इटली पर कब्जा कर पाये। स्वयं पोप में इतनी शक्ति नहीं थी कि वह स्वयं सारे इटली को अपने नियंत्रण में ला पाते। इस प्रकार सारा इटली यूरोप की दो शक्तियों के कूटनीतिक दाँवपेंचों का अखाड़ा बना हुआ था और अपनी इस असहाय दशा में पड़ा-पड़ा कराह रहा था। 'नरेश' (प्रिंस) के अंतिम अध्याय में मैकियावली ने इटली की इसी दशा पर आँसू बहाये हैं।

यह तो थी इटली की राजनीतिक अवस्था! सामाजिक और नैतिक अवस्था तो इससे भी गयी बीती थी। पुराने सामाजिक संवासों और संस्थानों का पतन हो गया था। गिरजा या विश्व साम्राज्य की कल्पना के सपने ढह चुके थे। इन सपनों ने किसी समय दांते जैसे कवियों को भले ही अनुप्राणित किया हो लेकिन अब तो उनकी स्मृति भी शेष नहीं

थी। राजनीति केवल राजनीतिज्ञों तक ही सीमित न थी; साधारण से साधारण इटालियन भी उसमें भाग लेता था। इटली के वेनिस, फ्लोरेंस, नेपिल्स, मिलान आदि जैसे बड़े-बड़े नगर षडयंत्रों के अड्डे बने हुए थे। सारा इटली गृहयुद्ध की आग में जल रहा था। जहाँ देखो वहीं उत्तराधिकार, तथा रियासत की प्राप्ति के लिए संघर्ष होते नजर आते थे। लोगों का धर्म में विश्वास न रहा था। लोगों ने ईसा के प्रतिनिधित्व का दावा करने वाले पोप के कुकर्मों को देख लिया था; इसलिए पोप पर उनकी कोई श्रद्धा नहीं रह गई थी। पोप से स्वयं उनके गिरजे के लोग सन्तुष्ट नहीं थे। नीचे के पादरी पोप के भोगविलासमय जीवन का विरोध कर रहे थे। कौंसिल आन्दोलन ने इस प्रवृत्ति को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त भी कर दिया था। इस प्रकार धर्म का आवरण तो था लेकिन धर्म की आत्मा का लोप हो चुका था। इस लुप्त आत्मा की पुनर्स्थापना के लिए फ्रांसिस्कन और डोमनीकन जैसे सम्प्रदाय कायम हुए। सेवानारोला जैसे सन्तों ने अपनी वाणी और नैतिक बल से आध्यात्मिक पथ प्रदर्शन का प्रयत्न किया। उसने गिरजा के सुधार की माँग की। लेकिन अभी भी मार्टिन लूथर का समय नहीं आया था। इसलिए लूथर जैसे आमूल सुधारों की माँग रखते हुए हम सेवानारोला को नहीं देखते। सेवानारोला ने जहाँ एक ओर गिरजा के सुधार की माँग की वहीं दूसरी ओर सर्व-साधारण से कहा कि वे भोगविलासमय जीवन छोड़ दें और साधारण जीवन बितायें। सेवानारोला की शिक्षाओं का प्रभाव भी पड़ा। उसके उपदेशात्मक प्रवचनों में हजारों आदमियों की भीड़ हुआ करती थी। लेकिन बाद में फ्लोरेंस पर फ्रांस ने जब कब्जा किया तो सेवानारोला को पोप के अनुग्रह की प्राप्ति के लिए गिरफ्तार कर के जिन्दा जला दिया। राजा और नरेश तथा पादरियों ने तो नैतिक आदर्शों को तिलांजलि दे ही दी थी, साधारण नागरिक भी, जैसा हम कह आये हैं नैतिकता के मानदण्डों के अनुसार आचरण नहीं करते थे।

यह तो इटली की अवस्था थी नैतिक, धार्मिक और राजनीतिक क्षेत्र

में; लेकिन विद्या, कला और साहित्य की दशा इससे बिलकुल भिन्न थी। कला और साहित्य का तो यह स्वर्ण युग था। ज्ञान के पुनरोदय की केन्द्रस्थली इटली ही था। फ्लोरेंस इस आन्दोलन का मुख्य स्थान था। यहाँ यूरोप की बड़ी से बड़ी चित्रों की दूकानें थीं। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि ज्ञान का पुनरोदय (Renaissance) इटली में ही क्यों आरंभ हुआ? इसका पहला कारण इटली की भौगोलिक स्थिति है। इटली सदैव से पूर्व के सभ्य देशों के सम्पर्क में रहा। यूनान, मिस्र तथा अन्य देशों से जो भी विचार यूरोप पहुँचे वे सब इटली के ही जरिए पहुँचे। इटली का समुद्री किनारा बड़ा अच्छा है। इसलिए वहाँ बड़े-बड़े बन्दरगाह खुल गये। इन बन्दरगाहों द्वारा व्यापार-वाणिज्य की सुविधाएँ मिल गयीं। व्यापार बढ़ने से इटली और इटली द्वारा सारा यूरोप समृद्ध हुआ। पूर्वी यूरोप तथा मध्य यूरोप की तुलना में इटली सुदूर दक्षिण में बसा है। इसलिए जब बर्बरों के आक्रमण शुरू हुए तो जितनी क्षति पूर्व और मध्य यूरोप को उठानी पड़ी उतनी इटली को नहीं। एक अन्य कारण यह भी था कि इटली में पोप की राजधानी थी। इसलिए वहाँ प्रायः संसार भर के विद्वान पहुँचा करते थे। इन सब कारणों से इटली को छोड़कर यूरोप के अन्य किसी क्षेत्र में ज्ञान के पुनरोदय का आन्दोलन आरंभ नहीं हुआ। लेकिन विद्या के प्रसार के साथ लक्ष्मी की भी अमित कृपा इटली पर हुई। परिणाम यह हुआ कि इटलीवासी भोगविलासमय जीवन में डूब गये। इटली बढ़िया से बढ़िया खाद्य सामग्री, खेलकूद, उत्कृष्टतम वस्त्र आदि का यूरोप का सबसे बड़ा बाजार था।

ज्ञान के पुनरोदय के आन्दोलन के समय ऐसी थी इटली की परस्पर विरोधी अवस्था।

§ २. युग का शिशु

जैसा कि आरंभ में ही लिखा जा चुका है हर विचारक पर अपने देश, काल और ऐतिहासिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। प्लेटो ने

जो कुछ लिखा, वह शायद सब कुछ वैसा ही न होता, यदि यूनान नगर राज्यों की अवस्था इतनी गिरी न होती। संभवतः एथेन्स की पतन-शील स्थिति को ही 'रिपब्लिक' की रचना का श्रेय दिया जा सकता है। यही बात अरस्तू के संबंध में भी कही जा सकती है। किन्तु इतने पर भी प्रो० डब्लू० ए० डनिंग ने मैकियावली को 'युग का शिशु' (Child of his times) कहा है तो इस कथन का अभिप्राय यही है कि मैकियावली के विचारों को उसके युग ने अन्य विचारकों की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावित किया है। यह सच है कि यदि मैकियावली इटली में पैदा न हुआ होता और उसने सोलहवीं शताब्दी में न लिखा होता तो उसे आज वह स्थान प्राप्त न होता जो राजदर्शन के इतिहास में दिया गया है। मैकियावली की रचनाओं में ज्ञान के पुनरोदय के आन्दोलन की आत्मा स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। बौद्धिक और आर्थिक दृष्टि से मैकिया-वली का युग अत्यन्त सम्पन्न होते हुए भी नैतिक और राजनीतिक क्षेत्र में कितना विपन्न था यह हम ऊपर बतला आये हैं। यह दोनों ही बातें मैकियावली की रचनाओं से प्रतिबिम्बित होती है। मैकियावली की किसी भी रचना में बौद्धिक तार्किकता का अभाव नहीं है लेकिन उनमें नैतिक आदर्शों के विरुद्ध काम करने की भी सलाह दी गयी है। यह मैकियावली के युग के बिलकुल अनुरूप हैं। हम यह बतला आये हैं कि इंगलैण्ड, फ्रांस और स्पेन किस प्रकार राष्ट्र-राज्य बन चुके थे और इटली कितना पिछड़ा था। मैकियावली ने इटली की भी वैसी ही एकता चाही और अत्यन्त भावुकता से इटालियन राष्ट्र की सृष्टि के लिए शक्तिवान इटालियनों को उत्साहित किया। 'डिसकोर्सेज' से स्पष्ट है कि मैकियावली को इस बात का विश्वास न था कि राजतंत्र (Monarchy) ही सर्वोत्तम शासन है किन्तु फिर भी उसने देखा कि इटली, फ्रांस और स्पेन राजतंत्रों के नेतृत्व में ही आगे बढ़ रहे हैं, इसलिए उसने इटली के लिए भी राजतंत्रात्मक शासन को ही पसन्द किया। एक सच्चे देशभक्त के रूप में मैकियावली को इस बात का बड़ा दुख था कि इटली का कोई

राष्ट्रीय नेता नहीं है। जिन व्यक्तियों में नेता होने की क्षमता है वे आपस की ईर्ष्या और द्वेष में लड़े मरे जा रहे हैं। कोई उनको रोकने वाला नहीं है। इसके अलावा पोप दुष्टतापूर्वक विदेशियों को निमंत्रित कर इटली की दासता के पाश को और अधिक दृढ़ कर रहे हैं। मैकियावली ने अपनी रचनाओं में एक नरेश को राष्ट्रीय नेता का रूप देने का यत्न किया। यह मत प्रकट किया कि जो नरेश हो उसे सबलतम बनाया जाय और पोप को सर्वथा अधीन दशा में रखा जाय जिससे वे कभी देश-विरोधी काम करने के लिए सिर न उठा सकें। राष्ट्र राज्यों के प्रचार के कारण मध्ययुग की विश्व साम्राज्य और विश्वबंधुत्व वाली कल्पना १६ वीं शताब्दी के आरंभ में शेष न रह गयी थी। मैकियावली ने अपने युग की यह माँग भी स्वीकार की और विश्वराज्य या विश्वसाम्राज्य का कोई आदर्श अपनी रचनाओं में अंकित नहीं किया। सब लोग उस युग में अपना-अपना स्वार्थ ही देखते थे। इन अर्थों में व्यक्तिवाद की नींव पड़ रही थी। मैकियावली ने नरेश को सम्पत्ति न छीनने की सलाह देकर व्यक्तिवाद का समर्थन किया। यद्यपि यह सच है कि नागरिक स्वाधीनता या अधिकार जैसे किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन उसने नहीं किया। ज्ञान के पुनरोदयकाल में लोगों ने धार्मिक-विश्वासों के बजाय बुद्धि और विवेक को कसौटी मान लिया था। लोग कोई भी बात इसलिए मानने को तैयार नहीं थे, क्योंकि वह बाइबिल में लिखी है; बल्कि वे उसे तभी मानने को प्रस्तुत होते थे जब उन्हें यह विश्वास हो जाता था कि कोई बात, प्रस्ताव या सुझाव उनकी अपनी समझ से भी ठीक है। ऐसी स्थिति में निगमनात्मक प्रणाली (Deductive method) का बहिष्कार स्वाभाविक है। लोगों का अनुभव की तरफ झुकना भी ठीक है। मैकियावली ने भी युग की प्रवृत्ति के अनुसार निगमनात्मक प्रणाली को छोड़ कर व्याप्ति मूलक प्रणाली (Inductive method) अपनायी और अनुभूति मूलकता (Empiricism) पर बल दिया। सोलहवीं शताब्दी का इटालियन आदर्शों के बजाय व्यावहारिक एवं सांसारिक सफलता प्राप्त करने का

अधिक इच्छुक था। मैकियावली ने 'नरेश' (प्रिंस) में सांसारिक सफलता प्राप्ति के विवेक सम्मत मार्ग की ओर ही संकेत किया है। क्योंकि लोग सफलता की प्राप्ति के लिए साधनों की कोई चिन्ता नहीं करते थे; अतः, मैकियावली ने भी खुलकर अनैतिक साधनों के प्रयोग का भी परामर्श दिया है। छल और बल से जैसे भी हो वह नरेश को अपने राज्य की रक्षा करते रहने का परामर्श देता है।

§३. मध्ययुग और आधुनिक युग

जब हम चौदहवीं शताब्दी और पन्द्रहवीं शताब्दी की राजनीतिक गतिधारा की तुलना करते हैं तो हमें दोनों में जमीन-आसमान का अन्तर दिखलायी पड़ता है। तेरहवीं शताब्दी में पोप और गिरजा की शक्ति का जो प्रखरतम रूप हमें दिखलायी पड़ा था वह चौदहवीं शताब्दी में मार्सीलिओ ऑव पेदुआ, जॉन ऑव पेरिस, जॉन ऑव जण्डुन, विलियम ऑव ओकाम आदि के राजनीतिक विचारों के सामने श्रीहत हो गया। इन लोगों के विचारों के फलस्वरूप चौदहवीं शताब्दी के अन्त में और पन्द्रहवों शताब्दी के आरंभ में कौंसिल आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ। कौंसिल आन्दोलन के कार्यकर्ता गिरजा में प्रतिनिधिमूलक शासन की स्थापना के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहते थे। किन्तु इस आन्दोलन की अपनी कुछ दुर्बलताएँ थीं; दोष थे, जिनके कारण वह पनप न सका। कौंसिल आन्दोलन की असफलता का बहुत बड़ा महत्व है और वह महत्व इसलिए है कि उसकी असफलता की प्रतिक्रिया प्रतिकूल दिशा में हुई। चौदहवीं शताब्दी की राजनीति का विद्यार्थी पन्द्रहवीं शताब्दी के तीसरे और चौथे चरण में अर्थात् सन् १४५० के बाद देखता है कि पोपों की शक्ति बढ़नी पुनः आरंभ हो गयी। पोपों की शक्ति के बढ़ने के अलावा एक और विस्मयकारी तत्व का अभ्युत्थान होते हुए हम देखते हैं और वह है राजतंत्रों की सत्ता और शक्ति में वृद्धि। मध्ययुग की प्रतिनिधि संस्थाओं का विघटन और उनकी शक्तियों का राजसत्ता

में केन्द्रीकरण ये दो ऐसी बातें हैं जिनकी कोई अवहेलना नहीं कर सकता। यह पन्द्रहवीं शताब्दी की विशेषता है। पन्द्रहवीं शताब्दी के बाद सोलहवीं शताब्दी में यह प्रवृत्ति बदल जाती है। प्रतिनिधि संस्थाओं को उत्साहित किया जाता है, उन्हें बढ़ावा दिया जाता है। राजसत्ता और धर्मसत्ता के अधिकारों और शक्तियों को सीमित करने की बात की जाती है; लेकिन यह सब कुछ लूथर और उसके सुधारवादी आन्दोलन (Reformation) के साथ होता है; उसके पहले नहीं।

सकारात्मक दृष्टि से मैकियावली पन्द्रहवीं शताब्दी के उस पक्ष का प्रतिनिधि है जो यह चाहता था कि समस्त अधिकारों को राजा, नरेश या शासक में केन्द्रीभूत कर दिया जाय। निषेधात्मक दृष्टि से वह गिरजा और पोपतंत्र की शक्तियों के बढ़ने के विरुद्ध है। मैकियावली राजतंत्र समर्थक और पोपतंत्र विरोधी क्यों था—इस प्रश्न का सकारण उत्तर हम आगे देंगे।

यहाँ संक्षेप में यह जान लेना चाहिये कि पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अकस्मात् प्रतिनिधिमूलक संस्थाओं का अधः पतन क्यों हुआ ? इस प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए हमें एक बार पुनः मध्ययुग की उन परिस्थितियों का सिंहावलोकन करना होगा जिनमें वे पनपी थीं और उनका जन्म हुआ था। मध्ययुग में यातायात तथा संचार के साधन इतने उन्नत न थे कि किसी केन्द्रीय सत्ता द्वारा एक स्थान से बहुत बड़े प्रदेश का शासन सुविधापूर्वक किया जा सकता। उदाहरण के लिये, आज दिल्ली में बैठे-बैठे बम्बई या मद्रास जैसे सुदूरवर्ती राज्य का शासन भी चलाया जा सकता है लेकिन आज से पाँच सौ वर्ष पूर्व इस तरह की किसी बात की कल्पना भी परिहासास्पद मानी जाती। फलतः केन्द्रीय शक्ति या सत्ता त ो उन दिनों किसी राजा या नरेश के रूप में अवश्य हुआ करती थी लेकिन नरेशों को अपने राज्यों के सुदूरवर्ती प्रदेशों या प्रान्तरों के शासन के लिए अपने प्रतिनिधियों पर निर्भर करना पड़ता था। ये प्रतिनिधि प्रायः नरेश के निकट सम्बन्धी या अत्यधिक कृपापात्र होते

थे। क्योंकि इन सामन्तों की नरेश से दिन प्रति दिन भेंट न होती थी और न सम्पर्क ही बना रहता था, इसलिए राजनीतिक एवं शासन कार्यों के मामलों में इन्हें काफी छूट रहती थी। कभी-कभी तो यह भी होता था कि राजा या नरेश सामन्त द्वारा राजकोष में निश्चित धनराशि नियमित समय पर जमा कर दिये जाने के कारण शासन तथा न्यायादि के मामलों तक में कोई हस्तक्षेप तक न करते थे। सामन्त की शक्तियाँ भी नरेश की भाँति ही नीचे के सामन्तों, कृषकों तथा विभिन्न संस्थाओं में बँटी हुई थीं।

राजनीतिक शक्तियों की भाँति ही मध्ययुग के यूरोप की आर्थिक और वित्तीय रूपरेखा भी प्रतिनिधिमूलक थी। छोटे-छोटे संघ हुआ करते थे; जो उत्पादकों को कच्चा माल देते थे और वे जो कुछ बनाते थे उन्हें बाजार में बेंच देते थे। निश्चित बाजार थे, माल लाने ले जाने के निश्चित मार्ग थे; मार्ग व्यय भी निश्चित हुआ करता था; इसलिये किसी को इन संघों (गिल्डों) पर किसी प्रकार की शंका या संदेह करने का मौका नहीं मिला करता था।

चौदहवीं शताब्दी के अन्त तक यूरोप की यही दशा थी। पन्द्रहवीं शताब्दी में ज्ञान के पुनरभ्युदय का काल आया। ज्ञानवृद्धि के साथ ही लोगों की यात्रा तथा भ्रमण की वृत्ति जागी। इस वृत्ति ने लोगों को नये-नये देशों के दर्शन कराये। व्यापार और वाणिज्य बढ़ाने के नये-नये मार्ग दिखलाये। भ्रमणकर्ता यात्रियों ने अपने साहस के बल-बूते पर बड़ी-बड़ी धन राशियाँ अर्जित कर लीं। पहले तो ऐसे कुछ ही लोग थे किन्तु बाद में समुद्र पार व्यापार के लाभ की कल्पना के कारण अनुकरण की भावना जागी और देखा-देखी बहुत से व्यक्तियों ने देश-विदेशों में क्रय-विक्रय का काम शुरू कर दिया। इस व्यापार युग के आरंभ के पूर्व मध्य युग के समाज में उत्पादक और उपभोक्ता यही दो वर्ग हुआ करते थे लेकिन व्यापार-वाणिज्य के प्रसार से एक और नया

वर्ग उठ खड़ा हुआ। यह वर्ग व्यापारियों का था। सामन्तों की भाँति व्यापारी वर्ग के सदस्य सम्पत्तिशाली तो नहीं थे लेकिन अपनी सीमित पूँजी को कारोबार में लगाने का इस वर्ग के लोगों में बड़ा साहस था; जिसकी बदौलत वे एक-एक के चार-चार सीधे करते थे। दूसरी ओर वे मध्ययुग के किसानों और कारीगरों की भाँति निर्धन भी न थे। उन्हें इन लोगों की तरह किसी स्थान-विशेष या वस्तु-विशेष से मोह भी न हुआ करता था। इन व्यापारियों ने धीरे-धीरे कारीगरों को अच्छा पैसा दे-दे कर अपने वंश में कर लिया। कारीगर बजाय संघों के लिये काम करने के इन व्यापारियों के लिये काम करने लगे। व्यापारिक नगरों में इन कारीगरों की बड़ी-बड़ी बस्तियाँ बस गयीं। व्यापारियों के इस कार्य से मध्ययुग के सामन्तों को धक्का लगना स्वाभाविक था। अतएव सामन्तवादी वर्ग ने व्यापारियों का विरोध किया। इसमें सन्देह नहीं कि व्यापारी-वर्ग उभरता हुआ वर्ग था. उसका भविष्य उज्ज्वल था; किन्तु सामान्तवादी वर्ग राजनीतिक और आर्थिक दोनों ही क्षेत्रों में सुस्थापित और सत्ता और स्रोत सम्पन्न वर्ग था, और उसके लिए यह संभव न था कि वह ऐसे शक्तिशाली वर्ग के साथ अकेले मोर्चा लेता। व्यापारी वर्ग को अपनी अस्तित्व रक्षा के लिए किसी सहारे की आवश्यकता थी। और सहारे का यह दामन मध्यवर्ग को, जिसे अब तक हम व्यापारी वर्ग कहते आये हैं, नरेशों द्वारा प्राप्त हुआ।

जैसा कि हम ऊपर बता आये हैं मध्ययुग में उत्पादक और उपभोक्ता केवल दो वर्ग थे। व्यापारी वर्ग बाद में उत्पन्न हुआ। यह वर्ग न उपभोक्ताओं (सामन्तों) की कोटि में आता था और न उत्पादकों (कृषकों और कारीगरों) की। वह दोनों के बीच का वर्ग था। इसलिये उसे मध्यवर्ग कहा गया।

नरेशों ने मध्यवर्ग की सहर्ष रक्षा की; क्योंकि उन्होंने देखा राज्य की सम्पत्ति और उसके वैभव को बढ़ाने वाले देश में और कोई ऐसा वर्ग नहीं हो सकता। फलतः पन्द्रहवीं और सोलहवीं, इन दोनों शताब्दियों

में हम राष्ट्रीयता का उभरता हुआ स्वरूप देखते हैं। हम देखते हैं कि हर नरेश अपने राज्य के स्रोतों को, राष्ट्रीय वैभव की वृद्धि में प्रयोग करने वाले साधनों को प्रोत्साहन देता है। हर नरेश देश के व्यापार को अधिक से अधिक बढ़ाने की चिन्ता में रत है। हर नरेश यही चाहता है कि उसका देश सैनिक दृष्टि से इतना अधिक सुदृढ़ रहे कि उसके व्यापार-वाणिज्य को कोई भी प्रतिद्वन्दी राज्य या राष्ट्र धक्का न लगा सके।

अतः व्यापारिक वर्ग का अभ्युदय, सामन्तों और व्यापारियों के अनिवार्य संघर्ष, व्यापारिक वर्ग द्वारा केन्द्रीय सशक्त शासन की माँग, सामन्तवादियों के वर्ग की मूलभूत अव्यवस्था, विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति तथा व्यापारियों द्वारा सामन्तों के विरुद्ध नरेशों के समर्थन ने राजतंत्रों के उत्थान का मार्ग प्रशस्त कर दिया। किन्तु अपना व्यापार बढ़ाने के लिए व्याकुल मध्यवर्ग के लोगों ने सामन्तवादी व्यवस्था में निहित विकेन्द्रीकरण के लाभों की जहाँ एक ओर अवहेलना की वहीं दूसरी ओर उन्होंने राजाओं को निरंकुश अधिकार दे कर अपने वर्ग के दमन के खतरों की तरफ से आँख मूँद लेने की बड़ी भारी गलती कर डाली। किन्तु, मध्यवर्ग की इस रुचि की रक्षा करते हुए उसके पक्ष में यह कहा जा सकता है कि उस समय सामन्तों की अपेक्षा नरेशों का साथ देने में ही भविष्य अधिक सुरक्षित था। सामन्तवादी व्यवस्था में वर्तमान औद्योगिक प्रगति की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

मध्ययुग से आधुनिक युग की इस प्रगति रेखा में मैकियावली वह बिन्दु है जहाँ हम व्यापारी वर्ग को राजतंत्र का समर्थन करते हुए पाते हैं। इस तरह मैकियावली ने राजतंत्र का समर्थन कर, सम्पत्ति न छीनने की सलाह दे कर एक तरह से मध्यवर्ग के लक्ष्य की सिद्धि में सहायता दी।

§४. आधुनिक युग का जनक

मैकियावली को बहुधा आधुनिक युग का जनक (Father of

modern age) भी बतलाया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि आधुनिक युग मैकियावली से आरंभ होता है। इस युग के आरंभ के साथ मध्ययुग का अन्त हो जाता है। किन्तु हम इस कथन का महत्व तब तक नहीं समझ सकते जब तक हम मध्ययुग तथा आधुनिक युग, इन दोनों युगों की विशेषताएँ और इन दोनों का अन्तर न समझ लें। मध्ययुग की तीन विशेषताएँ हैं जो उसे प्राचीन युग और आधुनिक युग से अलग करती हैं; सामन्तवाद, पोपतंत्र और पवित्र रोमन साम्राज्य। आधुनिक युग के आरंभ में वे तीनों तत्व समाप्त हो गये; अथवा यह कहा जा सकता है कि कम से कम उनकी प्रभुता का अन्त हो गया। मैकियावली के राजनीतिक विचारों में हम मध्ययुग की तीनों विशेषताओं का नितान्त अभाव देखते हैं। उदाहरण के लिए मैकियावली सामन्तवाद तथा तज्जनित सामन्तवादी विकेन्द्रीकरण का विरोधी है। वह सामन्तवादी युग की भाँति राजसत्ता का बहुत से सर्दारों में बिखरा रहना पसन्द नहीं करता। वह इसके विपरीत एक केन्द्रीय शक्ति चाहता है। वह चाहता है एक राजा हो जो सब प्रकार की नीतियों में अत्यन्त निपुण और कुशल हो और समस्त शक्ति उसी के हाथ में रहे। आधुनिक युग के अन्य विचारकों ने भी इसी मत की और अधिक स्पष्टता से पुष्टि की। मैकियावली बोदाँ या हॉब्स की भाँति अपने विचारों को दार्शनिक स्पष्टता से नहीं रख पाया था। मैकियावली ने पोपतंत्र का भी विरोध किया। पोपतंत्र के विरोध का मुख्य कारण यह था कि पोप की शक्ति इटली के राष्ट्रीय संघठन में बाधक थी। मैकियावली में देश प्रेम की मात्रा अधिक थी और यही भावना उसे पोपों के विरोध पर विवश करती थी। उसके राजनीतिक विचारों में, जैसा कि हम आगे देखेंगे, पोप की शक्ति का बड़ा जबर्दस्त विरोध झलकता है। वह चाहता था कि धर्मगुरु राजा के अधीन रहें। तीसरे, वह धार्मिक आधारों पर राजनीतिक साम्राज्य का विरोधी था। दाँते की भाँति मैकियावली ने विश्वसाम्राज्य की विराट कल्पना नहीं की। उसने इस मामले में रूसों का पूर्ववर्ती होना अस्वीकार कर दिया और विश्व राज्य की कोई रूप-

रेखा नहीं दी। मैकियावली ने हॉब्स, हीगल और बोसांके की भाँति राष्ट्र-राज्य को ही मानव मस्तिष्क की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति माना। मध्य-युग के विचारकों की भाँति पवित्र रोमन साम्राज्य जैसी किसी कल्पना को विश्व राज्य आदि के रूप में स्थान नहीं मिला है। यह तो हुआ निषेधात्मक पक्ष; अर्थात् कौन-कौन सी ऐसी बातें हैं जो मध्ययुग के विचारकों में पायी जाती थीं और मैकियावली के विचारो में नहीं पायी जातीं। निषेधात्मक पक्ष से सकारात्मक पक्ष की ओर आते हुए अब हमें पहले यह, देखना है कि आधुनिक युग की क्या-क्या विशेषताएँ हैं। आधुनिक युग की सबसे पहली विशेषता तो यह है कि इस युग के हर विचारक और दार्शनिक ने राष्ट्र-राज्य की कल्पना का प्रतिपादन किया। किसी विचारक ने बिलकुल सच कहा है कि आधुनिक युग का राजदर्शन राष्ट्रराज्य-दर्शन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। मैकियावली मध्ययुगीन विचारकों के बाद, जो सदैव ईसाइयों के विश्वराज्य की कल्पना में डूबे रहते थे, ऐसा पहला विचारक है जिसने राष्ट्रराज्य की कल्पना का न केवल समर्थन किया; अपितु इटली का तदनु-सार संघठन करने के लिए समकालीन राजनीतिक कर्णधारों को अनुप्राणित भी किया। मैकियावली का 'नरेश' (प्रिंस) इस कथन का सबसे बड़ा प्रमाण है। यही नहीं अपने समय के राष्ट्र-राज्यों को वह बड़े सम्मान की दृष्टि से देखता था और उसकी यह हार्दिक इच्छा थी कि इटली भी स्पेन, इंगलैण्ड और फ्रांस की भाँति राष्ट्र-राज्य बने। राष्ट्र-राज्य के बाद आधु-निक युग की दूसरी विशेषता है, बौद्धिकवाद। बौद्धिकवाद मध्ययुग में प्रचलित 'स्कॉलास्टिसिज्म' का लगभग उलटा है। स्कॉलास्टिक विद्वान, जिनमें सेण्ट टॉमस एक्वीनाज का नाम नेता के रूप में लिया जा सकता है, धार्मिक विश्वासों को विवेक द्वारा सिद्ध करने का प्रयत्न करते थे। उदाहरण के लिए, ईश्वर का अस्तित्व मानना न मानना एक ऐसा विषय है जो मनुष्य के व्यक्तिगत विश्वास पर निर्भर करता है। लेकिन स्कौलास्टिक विद्वान पहले यह मान लेता है कि ईश्वर है और इसके बाद तर्क द्वारा अपने विश्वास को सिद्ध करता है। बौद्धिकवादी विद्वानों द्वारा ऐसा नहीं

किया जाता। वे तो हर वस्तु को बुद्धि की कसौटी पर परखते हैं। जो बात उस कसौटी पर खरी उतरती है, वही उन्हें मान्य है, अन्यथा नहीं। मैकियावली के विचारों में भी बौद्धिक तार्किकता बहुत है। वह जो भी सूक्ति आदर्श नीति के रूप में 'नरेश' के आचरण के लिए स्थिर करता है; उस सूक्ति का पहले भली भाँति विश्लेषण करता है और इसके बाद उसे तर्कों द्वारा, उदाहरणों द्वारा सिद्ध करता है और तभी उसे आदर्श बनाने को कहता है। विभिन्न प्रकार के राज्यों के शासन के संबंध में, राष्ट्रीय सेनाओं के संघठन के संबंध में, इटली को स्वाधीन करने के संबंध में ये सभी विचार सुदृढ़ तर्कों पर आधारित हैं। व्यक्तिवाद, आधुनिक युग की तीसरी विशेषता है। मैकियावली में भी व्यक्तिवाद न्यूनाधिक अंश में विद्यमान है। इस कथन की पुष्टि के लिए मैकियावली के सम्पत्ति संबंधी विचारों की ओर हम संकेत कर सकते हैं। मैकियावली ने स्पष्ट रूप से व्यक्ति की स्वाधीनता के पक्ष में कोई आवाज नहीं उठायी किन्तु उसने यह कहकर कि राजा को व्यक्ति की सम्पत्ति का अपहरण किसी भी अवस्था में न करना चाहिए, एक सीमा तक व्यक्तिवाद का मार्ग प्रशस्त कर दिया। आधुनिक युग की चौथी विशेषता है, व्यापार-वाणिज्य का प्रसार। मैकियावली ने राज्य को स्वस्थ बनाये रखने के लिए 'नरेश' को सलाह दी है कि वह व्यापार-वाणिज्य को बढ़ाये; क्योंकि बिना इसके राज्य समृद्ध नहीं रह सकता और जो राज्य समृद्ध न होगा वह स्वस्थ नहीं रह सकेगा।

आलोचना पक्ष की ओर आते हुए हम देखते हैं कि मैकियावली में ऐसी बहुत सी बातें हैं जो उसके आधुनिक युग के जनक के दावे का या तो खण्डन करती हैं या कम से कम यह सिद्ध करती हैं कि मैकियावली अन्य आधुनिक विद्वानों की भाँति अपने विचारों में स्पष्ट न था। इसमें संदेह नहीं कि उसकी अध्ययन पद्धति में ऐतिहासिकता, बौद्धिकता, पर्यवेक्षण आदि के तत्व मध्ययुग के विचारकों से अधिक थे। वह निगमनात्मक प्रणाली (Deductive method) के बजाय व्याप्तिमूलक (Inductive

method) की ओर अधिक झुका था। लेकिन उसकी प्रणाली या अध्ययनपद्धति रूपरेखात्मक दृष्टि से ठीक होते हुये भी दोषमय थी। उदाहरण के लिये वह वस्तुतः ऐतिहासिक पद्धति का परिपालन नहीं करता। मध्ययुग के विचारों की भाँति वह भी मन ही मन कुछ बातों के संबंध में यह मान लेता है कि वे ठीक हैं और फिर उनका औचित्य इतिहास में से कुछ उदाहरण लेकर सिद्ध करता है। उसके तर्कों का भी आधार पूर्व मान्यतायें हैं। पर्यवेक्षण भी बुद्धिवादी नहीं है। एक बार सरसरी नजर से देख लेने के बाद जो भी मैकियावली की धारणा बन गई; बस, वह उसी के अनुसार कार्य करेगा। आधुनिक युग के विचारक ऐसी प्रणाली का उपयोग अध्ययन के क्षेत्र में बिलकुल नहीं कर सकते और न करते ही हैं। इसी प्रकार राष्ट्र-राज्य के स्वतंत्र अस्तित्व के संबंध में तो मैकियावली के विचार ठीक हैं किन्तु जब हम यह तलाश करते हैं कि मैकियावली के राज्य की कल्पना किन-किन तत्वों से मिलकर बनी है तो हमें निराश होना पड़ता है। राज्य के तत्वों के संबंध में मैकियावली बिलकुल स्पष्ट नहीं है। उदाहरण के लिये राज्य के एक अत्यन्त आवश्यक तत्व संप्रभुता की उसने बिलकुल चर्चा भी नहीं की है, जबकि आधुनिक युग का शायद ही कोई ऐसा विचारक हो जिसने इस ओर ध्यान न दिया हो। इसके अलावा मैकियावली ने भौतिक वातावरण के राजनीतिक संवासों (Political Associations) की रचना पर पड़ने वाले प्रभाव की ओर भी ध्यान नहीं दिया। आधुनिक विचारकों ने यह माना है कि किसी भी देश के भौगोलिक वातावरण के अनुसार ही उस देश की राजनीतिक संस्थायें भी होंगी। अन्त में एक और ऐसी बात है जो मैकियावली के आधुनिक युग के जनक के दावे को पछाड़ देती है और वह है नागरिकता की कल्पना। मैकियावली ने नागरिक अधिकारों की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया।

मैकियावली की अपरिपक्वताओं, दोषों और त्रुटियों को बहुत अंशों तक बोदाँ ने दूर किया। बोदाँ ने वास्तविक ऐतिहासिक, पर्यवेक्षणात्मक और व्याप्तिमूलक अध्ययन पद्धति का सर्जन किया। बोदाँ ने राज्य के

अनिवार्य तत्व बतलाये। राज्य की परिभाषा की। संप्रभुता की विवेचना की। भौतिक वातावरण और राजनीतिक संवासों का संबंध बतलाया। नागरिकता की पुष्ट कल्पना दी। इन्हीं कारणों से कुछ विचारक मैकियावली को नहीं बोदाँ को आधुनिक युग का जनक बतलाते हैं।

§५. जीवनी

इसके पूर्व कि हम मैकियावली के राजनीतिक विचारों को क्रमबद्ध रूप में उपस्थित करें यह अधिक उचित होगा कि हम उसकी जीवनी भी जान लें; क्योंकि हर व्यक्ति के विचार, विशेष रूप से यथार्थवादी स्वभाव के व्यक्ति के विचार बहुत कुछ उसकी जीवन की परिस्थितियों के अनुरूप ही निरूपित होते हैं।

मैकियावली का जन्म ज्ञान के पुनरोदय के केन्द्रस्थल और इटली के प्रसिद्ध नगर फ्लोरेंस में सन् १४६६ में हुआ था। उसका घराना बड़ा पुराना था और मैकियावली के पूर्वज टस्कनी के निवासी थे; इसलिए मैकियावली के घराने को टस्कन कहा जाता है। फ्लोरेंस में उन दिनों मेडिची वंश के लोगों का शासन था। आरंभ में मैकियावली के एक पूर्वज ने मेडिची राजवंश के लोगों के सिंहासनारोहण का विरोध भी किया था; जिसकी वजह से उनको कारागार में डाल दिया गया था और बंदी जीवन के कष्ट भोगते भोगते ही उन्होंने प्राण त्यागे थे। मेडिची वंश के सदस्यों ने फ्लोरेंस के गणतंत्रात्मक स्वरूप में अधिक हेरफेर नहीं किया; लेकिन न्यूनतम परिवर्तन करके राज्य के शासन की बागडोर अपने हाथ में अवश्य ले ली थी। मैकियावली के एक पूर्वज के बंदी गृह में प्राण त्याग करने के कारण मैकियावली तथा मेडिची इन दोनों प्रसिद्ध घरानों के बीच मधुर एवं मैत्री संबंध कभी स्थापित न हो सके। दुश्मनी बराबर बनी रही। मैकियावली के पिता फ्लोरेंस में वकालत करते थे। धन की दृष्टि से भी समृद्ध थे; किन्तु फिर भी इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता है कि उन्होंने अपने पुत्र को कोई ऊँची शिक्षा किसी प्रसिद्ध विश्वविद्यालय

में दिलायी हो। परन्तु मैकियावली का अत्यन्त संचेत्य मस्तिष्क मानवतावादी आन्दोलन के प्रभाव से अछूता न रह सका था। मैकियावली को इतिहास से बड़ा प्रेम था; विशेष रूप से रोम के इतिहास से। रोम के इतिहास के अध्ययन का प्रमाण हमें उसकी रचनाओं से भी मिलता है। यदि मेडिची के वंशजो का शासन निरन्तर चलता रहता तो संभवतः जीवन भर मैकियावली को राजनीतिक क्षेत्र में आने का अवकाश न मिलता किन्तु सन् १४९२ में लोऐंजो की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी पियरो के शासनकाल में फ्रांस की सेनाओं ने फ्लोरेंस पर चढ़ाई कर दी। चार्ल्स अष्टम के नेतृत्व में फ्रांस की सेनाओ को फ्लोरेंस जैसे छोटे से गणराज्य को पराजित करने में किसी विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। फ्रांस की देखरेख में एक बार पुनः फ्लोरेंस गणराज्य बन गया। इसी काल में मैकियावली को गणराज्य परिषद् में सचिव के पद पर नियुक्त किया गया। मैकियावली ने इस बीच अपनी प्रतिभा और विद्वत्ता की धाक समूचे फ्लोरेंस पर जमा ली थी। मैकियावली के नाम से प्रभावित होकर ही गणराज्य फ्लोरेंस के अधिकारियो ने उसे विदेश और सैनिक विभाग सौंप दिये थे। अपने शासनकाल में फ्लोरेंस की विदेश और सैनिक नीतियो के निर्माण में मैकियावली ने अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग लिया। उसे दो दर्जन से भी अधिक बार विदेश सैनिक तथा उलझे हुये अन्तर्राष्ट्रीय मामलों को सुलझाने के लिए भेजा गया। इसी सिलसिले में मैकियावली को कई बार पेरिस जाना पड़ा; कई बार रोम जाना पड़ा। वह जर्मनी भी गया। किन्तु, 'सब दिन जात न एक समान' की लोकोक्ति के अनुसार मैकियावली के भाग्यचक्र ने भी पलटा खाया। १३ वष बाद फ्रांस को अपनी निर्बलताओ के कारण फ्लोरेंस छोड़ना पड़ा और फ्लोरेंसवासियों को अपने जीवन की रक्षा का इससे अधिक अच्छा उपाय और कुछ न सूझा कि वे गणतंत्रात्मक सरकार को उलट दें और मैकियावली और उसके सहयोगियों को देश-निष्कासन का दण्ड देकर मेडिची के वंशज को वापस बुला लें।

देश निष्कासित, सम्पत्तिहीन और फ्लोरेंस एवं सारे देश की दशा से दुखित मैकियावली को नगर के बाहर एक छोटे से गाँव में अपने जीवन के कई अपमानपूर्ण वर्ष काटने पड़े। लेकिन विपत्तिकाल का भी मैकिया-वली ने पूरा-पूरा लाभ उठाया। अपने एक मित्र बेत्तोरी को मैकियावली ने जो पत्र लिखा था; उसमें उसने अपनी दिनचर्या इस प्रकार बतलायी थी :

"मैं अपमानित होने के बाद से अब तक बराबर इसी गाँव में जीवन बिता रहा हूँ। मैं तड़के ही उठ बैठता हूँ और उठकर अपने जंगल में चला जाता हूँ। वहाँ देखता हूँ कि लकड़हारों ने पहले दिन क्या-क्या काम किया है।" थोड़ी देर वहाँ ठहरने के बाद, मैकियावली ने जो कुछ लिखा है उसका सार यह है, कि वह इसके बाद छोटी सी पहाड़ी पर चढ़ जाता है और पहाड़ी पर ही बैठा-बैठा काफी दिन चढ़े तक दाँते, पेट्रार्क, टिबुलस या ओविड की रचनाओं का स्वाध्याय करता है। दोपहर को साधारण सा भोजन करने के बाद गाँव के चक्कीवाले, जमींदार, कसाई और राज-मजदूरों के पास जाता है। उनसे गप्प लड़ाता है। तीसरे पहर ताश खेलता है। कभी-कभी जुए में भी बैठ जाता है। मैकियावली ने जुए का जिक्र करते हुए लिखा है : "यहाँ हम धेले धेले-धेले के लिए लड़ जाते हैं। साँझ तक यही चलता है। दिन ढलते ही मैं घर वापस लौट आता हूँ और अपने अध्ययनकक्ष में घुस जाता हूँ। अध्ययनकक्ष में घुसने के पूर्व मैं गाँव के धूल-धूसरित परिधान को उतार देता हूँ। इनकी जगह खूब अच्छे-अच्छे राजसी वस्त्र धारण करता हूँ और इस प्रकार तैयार होकर प्राचीनकाल के महापुरुषों की महफिल में प्रवेश करता हूँ। मुझे प्रतीत होता है कि उस महफिल के सभी लोग मेरा स्वागत करते हैं। मुझे वहाँ वह भोजन मिलता जो मेरी मानसिक क्षुधा को शान्त करता और जिसने मुझे वह बनाया है जो कुछ मैं आज हूँ। मैं उनसे बातें करता हूँ और मैं उनसे पूछता हूँ, आपके अमुक कार्य करने का क्या कारण था। वे मुझे कृपापूर्वक सब बातें सविवरण बताते हैं। मुझे अब धनहीन जीवन या मौत तक से कोई भय नहीं प्रतीत होता।"...मैकियावली के इस कथन से प्रकट होता है

कि वह इतिहास का कितना प्रेमी था। उसने इतिहास का चिन्तनयुक्त अध्ययन किया था। अध्ययन के साथ ही उसने कुछ लिखा भी था और जो कुछ लिखा था वह 'प्रिंस' या 'नरेश' के रूप में हमारे सामने है।

यद्यपि ऊपर उद्धृत पत्र की अंतिम पंक्ति में मैकियावली ने निर्धनतायुक्त जीवन या मौत तक से न डरने की बात कही है; लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि उसने आशाओं और महत्वाकांक्षाओं को बिलकुल तिलांजलि दे दी थी। वह बराबर इस प्रयत्न में लगा रहा कि उसे पुराना पद या उसके समकक्ष अन्य कोई स्थान प्राप्त हो जाय। अंशतः उसे सफलता भी मिली; क्योंकि फ्लोरेंस स्थित उसके मित्रों ने उसे छोटे-मोटे राजनीतिक कार्य करने बाहर भी भिजवाया। पोप क्लीमेण्ट सप्तम ने उसे 'फ्लोरेंस का इतिहास' लिखने का भार भी सौंपा था। इस कार्य के लिए उसे वेतन भी मिलने लगा था। लेकिन पूर्णतः मैकियावली अपने उद्देश्यों की पूर्ति में कृतकार्य न हो सका। इसका कारण यह था कि 'नरेश' या 'प्रिंस' जिसे बड़ी आशा से मैकियावली ने सन् १५१९ में लिख कर समाप्त किया और जिसे मेडिची वंश के उत्तराधिकारी शासक को समर्पित भी किया: वह मेडिची नरेश तक सन् १५३५ तक नहीं पहुँच पाया जबकि मैकियावली सन् १५२७ में ही मर गया। जब मेडिची को यह रचना भेंट की गयी; तब यूरोप की अवस्था सुधारवादी आन्दोलन के आरम्भ हो जाने के कारण और भी बिगड़ गई थी और जिसकी वजह से मेडिची वंश के उत्तराधिकारियों को गद्दी छोड़कर स्वयं देश से बाहर चला जाना पड़ा था। यह प्रारब्ध का खेल ही था कि इटली की एकता चाहने वाला इतना बड़ा महापुरुष बिना किसी सम्मान के महाकाल की अँधेरी गोद में खो गया।

§६. मैकियावलीवाद

यूरोप के राजनीतिक इतिहास में 'मैकियावलीवाद' ठीक उसी प्रकार प्रसिद्ध है जिस प्रकार हमारे देश में कुटिल नीति के क्षेत्र में चाणक्यवाद। मैकियावली का नाम यूरोप के राजनीतिज्ञों में शताब्दियों से

कुटिलता, शठता, धोखेबाजी, राजनीतिक हथकण्डों और शायद राजनीति की हर बुरी बात का पर्यायवाची शब्द बन गया है। इस प्रकार की धारणाओं को पुष्ट करने में मैकॉले जैसे विद्वानों का भी कुछ कम हाथ नहीं है, जिन्होंने मैकियावली को शैतान का साक्षात् अवतार सिद्ध करने में कहीं से कोई कसर नहीं छोड़ी। इसके पूर्व प्रायः सभी नरेशों ने 'नरेश' (प्रिंस) के आधार पर मैकियावली को धिक्कारा। 'प्रिंस' के प्रकाशित होने के पूर्व ही उसकी हस्तलिखित प्रतिलिपियों का वितरण हुआ था। प्रायः हर सफल नरेश ने उसका अध्ययन किया। लेकिन फ्रेडरिक महान तथा अलेक्जेण्डर आदि ने मैकियावली की निन्दा भी की। फ्रेडरिक ने तो 'एण्टे मैकियावली' नाम की पुस्तक ही लिख दी जिसमें मैकियावली का विरोध किया गया था। लेकिन यह आश्चर्य की बात है कि मैकियावली का मौखिक और प्रकट विरोध करते हुए भी फ्रेडरिक ने उन सब साधनों द्वारा नरेश की हैसियत से सफलता प्राप्त की जिनकी सिफारिश मैकियावली ने 'नरेश' (प्रिंस) में की है। मैकियावली के विरुद्ध १८ वीं शताब्दी में तो इतना अधिक प्रचार था कि लोग बिना पढ़े ही मैकियावली की निन्दा कर देते थे। लेकिन १९ वीं और २० वीं शताब्दी में लार्ड एक्टन, लॉर्ड मॉर्ले, रैंके, विल्लारी आदि जैसे विद्वानों ने मैकियावली का अध्ययन किया तथा यह बतलाया कि मैकियावली के आलोचकों की बहुत सी धारणाएँ भ्रमपूर्ण हैं। मैकियावली दोषों की साकार मूर्ति नहीं है। उसका भी अपना मानवीय व्यक्तित्व है, गुण हैं और अनुदाय हैं। इस प्रकार मैकियावली के साहित्य के अध्ययन से उसके व्यक्तित्व के अपूर्ण अंशों को खोजा गया। बहुत से लोगों ने यह भी प्रश्न उठाया कि मैकियावली की ग्रन्थ रचनाओं का कारण क्या था? मैकियावली के विरोधियों ने तिरस्कारपूर्ण आलोचना करते हुए मैकियावली के उद्देश्य को अत्यन्त निम्नकोटि का बतलाया और कहा कि वह साधारण कोटि का चाटुकार था जो सामान्य मुसाहबों की भाँति राजा की खुशामद-दरामद करके पैसा कमाने का उद्देश्य पूरा करना

चाहता था। इसी सिलसिले में उसे अवसरवादी भी बतलाया गया। किन्तु, अब यह असंदिग्धतः सिद्ध हो गया है कि हम मैकियावली को ऐसे साधारण कोटि के चाटुकारों की कोटि में नहीं रख सकते। वह ऐसा देशभक्त था जिसने अपने राष्ट्रीय हित के लिए घरानों की शत्रुता को कोई महत्व न देना ही उचित समझा। इस तरह मैकियावली वर्तमान राजनीतिक विचारों के इतिहास में एक समझदार विचारक का स्थान पा चुका है।

§७. दार्शनिक या विचारक

कई आलोचकों ने मैकियावली की प्रशस्ति गाते हुए विचारक ही नहीं बहुत बड़ा दार्शनिक भी कह डाला है। एक पाठ्यपुस्तक के लेखक ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि मैकियावली दार्शनिक था और उसके सिद्धान्त हमें 'प्रिंस' नाम की पुस्तक में मिलते हैं।

लेकिन वास्तविकता यह है कि हम मैकियावली को उन दार्शनिकों की कोटि में नहीं रख सकते जिनमें प्लेटो, अरस्तू, हॉब्स, लॉक या रूसो को रखते हैं। क्यों? सबसे पहली बात तो यह है कि मैकियावली उक्त दार्शनिकों में से किसी एक की भी भाँति लेखक या सैद्धान्तिक नहीं था। वह तो ऐसा यथार्थवादी था जो जीवन में पैठा था और उसने जीवन, व्यवहार और संस्कृति की समस्याओं को हल करने का प्रयत्न किया था। दूसरे, यह बात भी पहली ही बात से संबंधित है, हमें उसके राजनीतिक विचारों, सिद्धान्तों का शास्त्रीय निरूपण करने जैसी कोई बात नहीं मिलती है। जैसा कि हम ऊपर बतला आये हैं, मैकियावली को इतिहास से बड़ा प्रेम था। इतिहास के विद्यार्थी की हैसियत से उस पर परिवर्तन-शीलता का बड़ा प्रभाव पड़ा था। यही कारण है कि उसकी इतिहास संबंधी कल्पना केवल इसी विचार तक सीमित रह गई थी कि इतिहास परिवर्तन की कहानी के अलावा कुछ नहीं है। मैकियावली ने यह जानने का भी प्रयत्न किया था कि परिवर्तन क्यों होता है? उत्तर मैकियावली के

अनुसार यह है कि परिवर्तन भलाई और बुराई के घात-प्रतिघात, क्रिया-प्रतिक्रियाओं के कारण होता है। यह कोई नयी बात नहीं है। मैकियावली के पूर्व भी कई विद्वानों ने यह कहा था कि सत्य और मिथ्या, भलाई और बुराई के बीच इस संसार में निरन्तर संघर्ष होता रहता है लेकिन मैकियावली के उत्तर में विशेषता यह है कि वह यह नहीं मानता कि अन्तिम विजय सत्य की ही होगी। वह इस दिशा में निराशावादी है। वह अपनी निराशावादिता से एक प्रकार की विचित्र यथार्थवादिता का सम्मिश्रण कर देता है। वह यह मान कर चलता है कि मनुष्य के मूल-भूत स्वभाव में कोई मौलिक परिवर्तन कभी नहीं होने वाला है। मनुष्य पहले भी अच्छा और बुरा दोनों था; आज भी है और आगे भी रहेगा। समय-समय पैगम्बर आये, अवतारों का जन्म हुआ, ईसा जैसे देवदूतों ने भी पृथ्वी पर शरीर ग्रहण किया; इन सबने मनुष्य को पापहीन बनाने की कोशिश की लेकिन इतिहास साक्षी है कि हजरत मोहम्मद, भगवान राम, भगवान बुद्ध और महात्मा ईसा के सारे बलिदान व्यर्थ गये। मनुष्य स्वभाव में कोई अनिवार्य परिवर्तन स्थायी रूप से नहीं हुआ। अधिकतर तो यही देखा गया कि बुराई की ही जीत होती है और अच्छाई पराजित होती दिखलायी पड़ती है। वस्तुतः बुराई ही सक्रिय शक्ति है। अच्छाई तो निष्क्रिय रहती है। लेकिन इसके बाद मैकियावली शान्त हो जाता है। वह प्लेटो, अरस्तू, हॉब्स, लॉक, आदि दार्शनिकों की भाँति पहले मानव स्वभाव, इसके बाद सामाजिक रचना, फिर राज्य, उसकी उत्पत्ति प्रकृति और कृत्यों आदि पर व्यवस्थित और क्रमबद्ध रीति से विचार नहीं करता। नीचे मैकियावली के विचारों को उक्त क्रम से ही उपस्थित किया जायगा लेकिन किसी का भी यह समझ लेना भूल होगा कि मैकियावली ने ये विचार अपनी किसी रचना में इसी क्रम से रखे हैं। सच तो यह है कि मैकियावली के ये सारे विचार हमें किसी एक स्थान पर नहीं मिलते। हम ज्यों-ज्यों उसकी पुस्तकों का स्वाध्याय करते हैं त्यों-त्यों प्रसंगवश उक्त विषयों पर मैकियावली के विचार छन-छन कर

हम तक पहुँचते जाते हैं। कोई भी दार्शनिक इस ढंग से अपने विचार नहीं रखता। वह तो तर्कपूर्ण क्रमबद्ध रीति से आगे बढ़ता है।

§८. अध्ययन पद्धति और रचनाएँ

मैकियावली के विचारो की चर्चा करते ही हमारे सामने यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि उनके स्रोत क्या हैं? अर्थात् हमें किन साधनों से उसके विचारों का ज्ञान होता है। स्वभावतः इस प्रश्न का उत्तर यह होगा कि "मैकियावली के विचार हमें उसकी रचनाओं, पुस्तकों या ग्रन्थों द्वारा मिलते हैं।" ये कौन-कौन से ग्रन्थ हैं? उसकी रचनाओं में नीचे लिखी पुस्तकें सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं: (१) **डिसकोर्सेज ऑन** लिवीज हिस्ट्री (लिवी द्वारा लिखित इतिहास पर प्रवचन), (२) दि आर्ट ऑव वार (युद्ध की कला), (३) दि हिस्ट्री ऑव फ्लोरेंस (फ्लोरेंस का इतिहास), (४) प्रिंस (नरेश)। पहली पुस्तक तो लिवी नाम के विद्वान द्वारा लिखित रोम के इतिहास पर मैकियावली की टिप्पणियाँ हैं। इस पुस्तक में मैकियावली ने गणतंत्रात्मक राज्यों की विशेषताएँ, उनके लाभ और उनके गुणों पर प्रकाश डाला है। दूसरी पुस्तक में सैनिक विद्या संबंधी अपने ज्ञान का प्रदर्शन मैकियावली ने किया है। तीसरी पुस्तक पोप क्लीमेण्ट सप्तम के कहने से मैकियावली ने लिखी थी। 'नरेश' (प्रिंस) चौथी पुस्तक है, जो राजनीतिक विचारों की दृष्टि से पूर्ण न होते हुए भी बहुत अधिक लोकप्रिय होने के कारण तथा अपनी व्यावहारिक राजनीतिक शिक्षाओं के कारण बड़ी महत्वपूर्ण है। सच तो यह है कि मैकियावली की सारी ख्याति इसी पुस्तक पर आधारित है। 'नरेश' में मैकियावली ने 'राजनीतिज्ञता और सत्ता का सुख्यात विश्लेषण किया है। इस पुस्तक में मैकियावली ने बतलाया है कि सत्ता किस प्रकार प्राप्त की जाती है और सत्ता प्राप्त करने के बाद उस पर नियंत्रण कैसे रखा जा सकता है।' इस दृष्टि से 'नरेश' को

इम राजनीति की मौलिक पुस्तक कह सकते हैं। 'नरेश' की रचना प्रजातंत्रवादी या गणतंत्रवादी राज्यों के पथप्रदर्शन के लिए नहीं की गई। इसकी रचना तो ऐसे राज्य की आवश्यकताओं को दृष्टि में रख कर की गई है जो अपना भाग्य किसी एक व्यक्ति के हाथ सौंप चुके हैं, चाहे वह प्राचीन युग का निरंकुश नरेश हो और फिर चाहे आधुनिक युग का तानाशाह। इस दृष्टि से 'नरेश' बुद्धि की कुशाग्रता का प्रमाण है और कूटनीति के क्षेत्र में इस जैसी ज्ञानवर्धक अन्य कोई पुस्तक नहीं है। पुस्तक की शैली सुलझी हुई और स्पष्ट है तथा एक अमेरिकन लेखक के शब्दों में मैकियावली के निष्कर्ष ऐसा शक्तिशाली प्रभाव दिखलाते हैं जैसे किसी पहलवान ने घूंसे से हमारे कानों पर भरपूर प्रहार कर दिया हो। "नरेश' (प्रिंस) की लोकप्रियता का अनुमान इसी बात से किया जा सकता है कि सन् १५३२ में पहली बार प्रकाशित होने के बाद सन् १५५२ तक इसके २५-संस्करण निकल चुके थे। लेकिन इससे यह समझ लेना भूल है कि मैकियावली के सारे राजनीतिक विचारों का प्रतिनिधित्व इसी पुस्तक में हो गया है। मैकियावली के अधिक प्रतिनिधि विचार हमें 'डिसकोर्सेज' में मिलते हैं।

मैकियावली की अध्ययन पद्धति भी महत्वपूर्ण है। वह अरस्तू की अध्ययन पद्धति से काफी मिलती-जुलती है। अरस्तू की भाँति ही मैकियावली ने भी विश्लेषणात्मक (Analytical), वैज्ञानिक (Scientific), ऐतिहासिक (Historical) और तुलनात्मक (Comparative) पद्धतियों का प्रयोग है। जहाँ मैकियावली की पद्धति अरस्तू से काफी मिलती-जुलती है, वहीं मैकियावली की अध्ययन पद्धति में अरस्तू की भाँति कुछ दोष भी हैं। अरस्तू की पद्धति में क्या दोष थे, अरस्तू मानव-मात्र की समानता में विश्वास नहीं करता था। वह यूनानियों को अन्य देशों के निवासियों की अपेक्षा ऊँचा समझता था। स्त्रियों को पुरुषों की तुलना में वह हीन मानता था। अरस्तू ने केवल नगर-राज्यों के संबंध में ही विचार किया। यह नहीं देखा कि उसकी आँखों के सामने बड़े-बड़े

साम्राज्य जन्म ले रहे थे। इसी प्रकार मैकियावली की सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि उसने बिना सूक्ष्म पर्यवेक्षण या अध्ययन किये स्थूल धारणाओं के आधार पर अपने सिद्धान्त स्थिर कर लिये। उसने इतिहास का अध्ययन तो किया लेकिन आंशिक। इतिहास से उसने वे उदाहरण या घटनाएँ तो ले लीं जो उसके मत के अनुकूल पड़ती थीं या उसकी पुष्टि करती थीं लेकिन उन घटनाओं को छोड़ दिया जो प्रतिकूल सिद्धान्तों को पुष्ट करती थीं या उसके पूर्व निर्धारित मत के विरुद्ध पड़ती थीं। इस संबंध में डनिंग का यह मत अधिक मनस्वी प्रतीत होता है कि मैकियावली की पद्धति ऐतिहासिक होने के बजाय अनुभूतिमूलक (Empirical) अधिक थी। इसका अर्थ यह है कि इतिहास से सहायता लेने के बजाय मैकियावली ने अपने अनुभवों से अधिक काम लिया। इसलिए इतिहास के पथप्रदर्शन को ग्रहण करने वाले व्यक्ति की भाँति मैकियावली में दूर-दर्शिता नहीं है। अनुभूतिमूलकता के कारण मैकियावली की दृष्टि सीमित हो गई है और स्थानीय संकीर्णता की मात्रा अधिक है। मैकियावली की अध्ययन पद्धति निगमनात्मक (Deductive) प्रणाली के विरुद्ध व्याप्तिमूलक (Inductive) है। हम मैकियावली की पद्धति को व्याप्तिमूलक इसलिए कह सकते हैं कि वह कुछ तथ्यों को संग्रह करने के बाद उनके आधार पर कुछ निष्कर्ष निकालता है या व्यावहारिक शिक्षाएँ देता है। उसकी अध्ययन पद्धति की एक विशेषता यह भी है कि वह अरस्तू की भाँति राजनीति को धर्मशास्त्र और आचारशास्त्र से अलग रखता है। मैकियावली का कहना था कि राजनीति का आचारशास्त्र से कोई संबंध नहीं है। लेकिन यहाँ मैकियावली और अरस्तू के मत एक समान नहीं हैं। अरस्तू ने यह कहीं भी नहीं घोषित किया है कि राजनीति और आचारशास्त्र का परस्पर कोई संबंध नहीं है। मैकियावली इस स्थल पर मध्ययुग के उन विचारकों से भिन्न है जो हर स्थल पर राजनीति और आचारशास्त्र को मिला कर गड़बड़-घोटाला कर देते थे। लेकिन राजनीति और आचारशास्त्र को अलग करने का यह प्रयत्न सबसे पहले मैकियावली

ने ही नहीं किया था। मार्सीलिओ ऑव पेदुआ ने मैकियावली के भी पूर्व यह प्रयत्न किया था।

इस प्रकार मैकियावली के अध्ययन के प्राथमिक स्रोतों अर्थात् उसके ग्रंथों या रचनाओं तथा अध्ययन पद्धति को समझ लेने के बाद अब हम उसके विचारों को लेंगे।

§६. मानव स्वभाव

विचारों के क्षेत्र में आने पर हमें सबसे पहले मैकियावली के मानव स्वभाव संबंधी विचारों को ग्रहण करना होगा। इसके मानव स्वभाव संबंधी विचार इतिहास के अध्ययन के फल थे। जैसा कि हम ऊपर बतला आये हैं वह इतिहास की परिवर्तनशीलता से प्रभावित था और समझता था कि परिवर्तन अच्छाई और बुराई की क्रिया-प्रक्रिया का फल है और बुराई क्रियाशील होती है। ठीक इसी तरह वह मानव स्वभाव को अच्छाई और बुराई का मिश्रण मानता है और कहता है कि मनुष्य बुराई की ओर अच्छाई के बजाय अधिक बढ़ता है। वह स्वभावतः झूठा, कृतघ्न, अनिर्भरणीय, कामचोर, महत्वाकांक्षी, अस्थिरचित्त एवं अविश्वासी होता है। मानव स्वभाव संबंधी मैकियावली की ये बातें हमें किसी एक स्थल पर नहीं मिलतीं। ज्यों-ज्यों हम उसकी रचनाओं को पढ़ते हैं त्यों-त्यों उसकी सूक्तियों या निष्कर्षों से यह बात झलकती है। उदाहरण के लिए एक स्थल पर मैकियावली ने 'नरेश' को परामर्श दिया है कि वह कभी अपने मंत्रियों या अपने पुत्रों तक पर भरोसा न करे। क्यों न करे ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए मैकियावली बतलाता है कि मनुष्य स्वभावतः कृतघ्नी होता है। इसलिए उसका अधिक विश्वास कभी नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार 'नरेश' को मैकियावली ने सलाह दी है कि वह लोगों की इस प्रवृत्ति पर निर्भर रह सकता है कि सभी व्यक्ति अपने प्राणों को बचाये रखना चाहते हैं और वे चाहते हैं कि उनकी सम्पत्ति भी सुरक्षित रहे। मनुष्य अकेला अपनी रक्षा आप नहीं कर सकता। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए वह

शासन चाहता है; शासक चाहता है। इस इच्छा के पीछे लोगों की स्वार्थ वृत्ति है। इस प्रकार मैकियावली ने मनुष्य को स्वार्थी सिद्ध किया है। मैकियावली का कहना है कि मनुष्य स्वभावतः आक्रमणचेता और लोभी होता है। वह जहाँ देखता है कि उसकी अपनी सम्पत्ति और अपने प्राण सुरक्षित हैं वहीं वह दूसरे पर आक्रमण करके उसकी धन-सम्पत्ति पर कब्जा कर लेने का प्रयत्न करता है। फलतः यदि विधि और शासन की शक्तियाँ न रहें तो मनुष्य तत्काल आपस में एक दूसरे से लड़ने लगेगा और चारों तरफ अराजकता फैल जायगी। अतएव शांति और व्यवस्था तभी बनी रह सकती है जब शासन खूब मजबूत रहे। उसके कई अजीब से निष्कर्ष इसी मानव स्वभाव से संबद्ध है। उदाहरण के लिए उसका यह कथन ले लीजिए कि व्यक्ति पितृ हत्या को एक बार क्षमा कर देता है किन्तु वह अपनी सम्पत्ति के लुटेरे को कभी माफ नहीं करता। इस कथन का मूल आधार मनुष्य की स्वार्थ वृत्ति ही है। इसमें सन्देह नहीं कि मानव-मनोविज्ञान का मैकियावली ने अच्छा विश्लेषण किया और मानव-स्वभाव संबंधी मैकियावली के विचारो को पढ़ते-पढ़ते कभी हमें ऐसा लगता है कि हम हॉब्स के विचार पढ़ रहे हैं। लेकिन मैकियावली ने यहाँ एक आधारभूत गलती यह कर दी कि वह बराबर मनुष्य के बुरे स्वभाव के पक्ष पर ही बल देता रहा। उसने मानव स्वभाव के अच्छे या भले पक्ष की अवहेलना की। परिणामतः उसके विचारों में भी एकांगता का दोष आ गया। इसीलिए वह इस परिणाम पर पहुँचा कि मनुष्य स्वभावतः बुरा है, इसलिए बल प्रयोग ही एकमात्र ऐसा साधन है जिसके द्वारा मनुष्य से कुछ काम कराया जा सकता है। ग्रीन का यह कथन कि 'राज्य का आधार बल या शक्ति नहीं (व्यक्ति की अपनी) इच्छा है' एक ऐसी सूक्ति है जो मैकियावली या उसके अनुयायियों के दिमाग में कभी समा ही नहीं सकती। वे तो केवल शक्ति और विशुद्ध शक्ति में विश्वास करते हैं। वे समझते हैं कि उस नियम का कोई अपवाद ही नहीं हो सकता।

§१०. नैतिकता और धर्म

मानव स्वभाव संबंधी विचार जान लेने के बाद अब हमें मैकियावली के नैतिकता और धर्म संबंधी विचार भी जान लेने चाहिए। बहुत से विचारकों विशेषकर प्लेटो तथा आधुनिक विज्ञानवादी (Idealists) विचारकों का कहना है कि नैतिकता मनुष्य की स्वभावगत् विशेषता है। लेकिन मैकियावली यह बात नहीं स्वीकार करता। वह इसका खण्डन करता है। उसके अनुसार पहले मनुष्य एकान्तवासी था। आवश्यकताओं से लाचार होकर सब को मिलकर समाज बनाना पड़ा। समाज में उन्होंने एक व्यक्ति को चुना और अपने व्यक्तिगत हितों की रक्षा का भार उस व्यक्ति को दे दिया। लोग चाहते थे कि उन्हें एक पथप्रदर्शक मिल जाय। यह पथप्रदर्शक उन्हें एक नरेश के रूप में मिल गया। इस प्रकार राजतंत्र की उत्पत्ति का मूल स्रोत दो भाव हैं; भय और बल या शक्ति। एक बार समाज का नेतृत्व स्वीकार करने के बाद नरेश का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह समाज को शक्तिशाली बनाये। यही नरेश का प्राथमिक और अंतिम कर्तव्य है। हर व्यक्ति का कर्तव्य वह नहीं है जो नरेश का है। इसलिए सामान्य नागरिक अपने कर्तव्यों के पालन में जिन नैतिक बंधनों को अपने आचरण की मर्यादा मानता है, वे नैतिक मर्यादाएँ नरेश के आचरण की मर्यादाएँ नहीं बन सकतीं। ऐसी दशा में नरेश के ऐसे सारे कार्य नैतिक हैं जिनसे राज्य या समाज दृढ़ बनता हो। अतएव जो आचरण साधारण नागरिक के लिए अनैतिक हो सकता है; वही कार्य यदि नरेश करता है तो वह अनैतिक नहीं कहा जा सकता; शर्त यही है कि उससे राज्य या समाज का बल बढ़ता हो। संक्षेप में मैकियावली का कहना है साधन अच्छे हों या बुरे यदि उनसे इष्ट की सिद्धि होती है तो वे उचित हैं और उन साधनों के प्रयोग का नरेश या शासक को पूर्ण अधिकार है। उदाहरण के लिए साधारण नागरिक के लिए पारस्परिक व्यवहार में झूठ बोलना बुरा है लेकिन नरेश या शासक

राज्य और समाज की रक्षा के लिए झूठ भी बोल दे तो कोई हर्ज नहीं है। यहाँ सहसा हमें गांधी जी के विचारों का स्मरण हो आता है। गांधी जी का मत मैकियावली के मत का बिलकुल उलटा था। वे बुरे साधनो द्वारा अच्छा लक्ष्य सिद्ध करने के विरोधी थे। देश की स्वतंत्रता का लक्ष्य उनकी दृष्टि से अच्छा था। वे चाहते थे कि देश शीघ्र से शीघ्र स्वाधीन हो जाय। लेकिन वे इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हत्या, लूटमार, षड्यंत्र और रक्तपात के साधनों को अपनाना उचित नहीं समझते थे। साधनों की शुद्धता भी उतनी ही आवश्यक है जितनी लक्ष्यों की। इस क्षेत्र में कौटिल्य और मैकियावली के विचारो में अपेक्षाकृत अधिक समानता है।

इस तरह हम देखते हैं कि हॉब्स की भाँति किन्तु हॉब्स के पूर्व मैकियावली ने नैतिकता का जनक नरेश या शासक को माना है। इस कथन का अभिप्राय यह है कि आचरण संबंधी जो नियम शासक या नरेश निर्धारित कर देता है; वे ही नियम नैतिक । दूसरे जो व्यक्ति नियम बनाता है और जो उस नियम को बना-बिगाड़ सकता है वह उस नियम को मानने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। मैकियावली का मत है कि बलवान होना ही गुण सम्पन्नता है और निर्बल होना ही बुराई है। वह शासक और उस द्वारा बनाये गये नियमों को ही विधि (Law) मानता है और कहता है कि समाज में उस व्यक्ति का स्थान सर्वोपरि है जो विधियाँ बनाता है और जिसमें समाज को बलवान बनाने की शक्ति है। मैकियावली यह मानकर आगे चलता है कि समाज को स्वस्थ रखना और उसे बलवान बनाये रखने का काम केवल वही नरेश या शासक सम्पादित कर सकता है जिसे विधियाँ बनाने का अधिकार है। इस तरह मैकियावली का नरेश, यदि वह शासन कला से भिज्ञ है तो राज्य की सर्वोच्च शक्ति है और वह हर प्रकार के नैतिक, विधिगत (legal) और अन्य किसी भी प्रकार के लौकिक बंधनों से मुक्त है। शासक राज्य का ही निर्माणकर्ता नहीं, अपितु राज्य के नैतिक, धार्मिक, और आर्थिक

संवासों तक का नियामक और निर्माणकर्ता है । शासक संबंधी यह कल्पना मैकियावली ने रोमन विचारकों सिसरो और पोलिबियस से ग्रहण की थी । समकालीन इटली की जो अवस्था थी उसमें बिना शक्तिशाली नरेश के इटली का काम बननेवाला नहीं था । मानव स्वभाव संबंधी मैकियावली की कल्पना भी नैतिकता—द्वैध नैतिकता की ओर ही संकेत करती है । क्योंकि यदि मनुष्य स्वभाव से स्वार्थी है तो राज्य और विधियाँ ही ऐसी दो शक्तियाँ हैं जो समाज को विशृंखलित होने से बचा सकती हैं; उसे विघटित होने से रोक सकती हैं । किन्तु मैकियावली की यह त्रुटि है कि वह अपने इस विचार को उस तर्कपूर्ण ढंग से नहीं रख सका जिससे आगे चलकर हॉब्स ने रखा । द्वैध नैतिकता के सिद्धान्त के अन्तर्गत ही जहाँ उसने एक ओर प्रजा को विनयशील, आज्ञापालक, और सेवा भाव रखने का उपदेश दिया वहीं दूसरी ओर राजा को निर्दय कृत्यों को करने के लिए तैयार रहने, हत्या करने, विष देने या अन्य कोई भी बुरा से बुरा काम करने की भी सलाह दी है; लेकिन यह शर्त लगा दी है कि उससे राज्य की रक्षा अथवा जो उद्देश्य सामने हो उसकी पूर्ति अवश्य होनी चाहिए । इसी सलाह के कारण मैकियावली को बहुत कोसा गया है; उसे शैतान बतलाया गया है और इसी आधार पर 'नरेश' की भी बहुत आलोचना हुई है । लेकिन यह सलाह शासक या नरेश को केवल 'नरेश' (प्रिंस) में ही दी गई हो, ऐसी बात नहीं है । सेबाइन ने ठीक ही लिखा है कि 'डिसकोर्सेज' भी 'नरेश' (प्रिंस) से इस मामले में पीछे नहीं । अब यह प्रश्न उठता है कि क्या कुछ ऐसे भी नरेश थे जो वस्तुतः इसी प्रकार की नैतिकता का पालन करते थे ? इस प्रश्न का निषेधात्मक पक्षीय उत्तर तो यह है कि किसी भी नरेश ने खुल्लमखुल्ला इस प्रकार के नैतिक आदर्शों का प्रचार नहीं किया; अपितु फ्रेडरिक महान जैसे शासकों ने विरोध तक किया । सकारात्मक पक्ष यह है कि सोलहवीं शताब्दी के प्रायः प्रत्येक सफल नरेश ने इसी पथ का अवलम्बन किया । इतिहास के पृष्ठों के सूक्ष्म अवलोकन से यह स्पष्ट होते देर न

लगेगी। स्पेन के राजा फर्डीनेण्ड, फ्रांस के राजा लुई चौदहवें तथा इंगलैण्ड के राजा हेनरी आठवें सभी न्यूनाधिक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने वही बातें की थीं जिन्हें मैकियावली ने लिखा है। मैकियावली ने लोकोत्तर बातों को छोड़ दिया है और उसका कहना है कि सांसारिक बातों में परलोक की बातों को नहीं लाना चाहिए। उसके सामने समस्या यह थी कि जागतिक क्षेत्र में कैसे सफलता प्राप्त की जाय और उसने सांसारिक सफलता का मार्ग रख दिया। इसमें शायद ही किसी को संदेह हो कि मैकियावली द्वारा प्रतिपादित मार्ग का कोई यदि बुद्धिमानी से अनुसरण करे तो उसे सफलता प्राप्त न हो। यहाँ हमें स्वभावतः यह जिज्ञासा होती है कि जब मैकियावली पारलौकिक बातों को सांसारिक मामलों में नहीं लाना चाहता था तो उसकी धर्म संबंधी कल्पना क्या थी।

जिन विद्यार्थियों ने मध्ययुग के राजनीतिक विचारों का अध्ययन किया है, उन्हें स्मरण होगा कि सन्त टॉमस एक्वीनाज आदि जैसे विद्वान धर्म को ही लक्ष्य और अंतिम लक्ष्य मानते थे। उनका मत था कि मनुष्य का सबसे बड़ा और सर्वोपरि उद्देश्य आत्मा को मोक्ष दिलाना। इसलिए संसार की प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक विद्या इस अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति का साधन है और इस दृष्टि से राजनीति भी धर्म के अधीन है। मैकियावली ने धर्म को साध्य या लक्ष्य न मान कर साधन माना है। धर्म को वह ऐसी श्रृंखला मानता है जिसमें समाज को बाँध कर उसे और अधिक सुदृढ़ बनाया जा सकता है। वह ऐसे धर्म को समाज के उपयुक्त नही मानता था जो उसे निर्बल बनाये। वह ईसाई धर्म का बड़ा जबर्दस्त आलोचक था। उसका कहना था कि ईसाई धर्म मनुष्य को विनयशीलता और झुकने वाला व्यक्ति बना देता है। जो नरेश सच्चा ईसाई होगा वह राज्य की रक्षा नहीं कर सकता। लेकिन उद्देश्य सिद्धि के साधन के रूप में मैकियावली ईसाई धर्म की उपयोगिता को मानता था। उसका कहना था कि ईसाई धर्म द्वारा राजा लोगों को बड़ी अच्छी तरह बेवकूफ बना सकता है। राजा को चाहिए कि वह

प्रजा को तो सच्चा ईसाई बनाये लेकिन स्वयं ऐसा न बन जाय कि सच्ची ईसाइयत उसे खा जाय।

नैतिकता और धर्म के संबंध में मैकियावली के उपरोक्त विचार किसी भी धर्मभीरु व्यक्ति को कँपा देने वाले प्रतीत हो सकते हैं। इसी आधार पर मैकियावली को शैतान का अवतार भी बतलाया गया। मैकियावली पर इस तरह के आरोप उसकी मृत्यु के बाद ही नहीं मृत्यु के पहले उसके जीवन काल में भी लगाये जाने आरंभ हो गये थे। इन आरोपों का उत्तर देते हुए एक पत्र में मैकियावली ने अपने एक मित्र को लिखा था कि 'कोई भी व्यक्ति पुस्तक पढ़ कर अनैतिक बन गया हो, यह मैंने नहीं सुना।' 'नरेश' (प्रिंस) में दी गई सलाहों का अभिप्राय यह नहीं है कि हर नरेश को अपनी सारी जीवनचर्या ही दुष्टतापूर्ण बना लेनी चाहिए; अपितु उसका मतलब यह है कि आवश्यकता पड़ने पर राज्य की रक्षा करने के लिए ऐसे अनैतिक कर्म करने के लिए भी तैयार रहना चाहिए क्योंकि सांसारिक सफलता की प्राप्ति के लिए कभी-कभी उनको करना भी आवश्यक हो जाता है। सामान्यतः राजा को सद्गुणों का आवरण नही हटाना चाहिए; लेकिन आवश्यकता पड़े तो कुछ समय के लिए दस्ताने या कोट की भाँति उन्हें भी उठा कर अलग रख देना चाहिए और जब काम हो जाय तो फिर पहन लेना चाहिए।

मैकियावली के पक्ष में इससे अधिक कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं है।

§११. राज्य

राज्य संबंधी मैकियावली के विचारों पर आते हुए हमें यह बिलकुल स्पष्टतः समझ लेना चाहिए कि राज्य की उत्पत्ति और प्रकृति संबंधी प्रश्न बिलकुल भिन्न है और राज्य-संचालन की कला बिलकुल भिन्न। मैकियावली ने सबसे अधिक ध्यान राज्य-संचालन की कला की ओर

दिया। राज्य की उत्पत्ति और प्रकृति के संबंध में उसके विचारों का या तो पता नहीं लगता और यदि लगता भी है तो वे बड़े अस्पष्ट हैं।

अरस्तू ने राज्य को प्राकृतिक संवास बतलाया है। सन्त टॉमस भी अरस्तू के इस मत से सहमत था। लेकिन मैकियावली के साथ यह कठिनाई है कि वह यह निर्णय नहीं कर पाया कि राज्य प्राकृतिक संवास है या नहीं। इसलिए तत्संबंधी उसके विचार दोहरे अर्थयुक्त हैं। कुछ स्थलों पर मैकियावली ने राज्य को कृत्रिम या अस्वाभाविक बतलाया है। उसका कहना है कि एक समय था जब लोग प्राकृतिक अवस्था में रहते थे। लेकिन इस अवस्था में मनुष्य के स्वार्थी स्वभाव के कारण निरन्तर संघर्ष हुआ करता था। इसलिए लोगों ने सुख-सुविधा के लिए नरेश को चुना। नरेश ने राज्य की स्थापना की। राज्य की निरन्तरता का कारण प्रतिरक्षा (defence) की आवश्यकता है। प्रतिरक्षा के कारणों की वजह से ही सामाजिक एकता कायम रहती है। यदि राज्यों में परस्पर लड़ाई होने का खतरा न रहे तो राज्य भी विघटित हो जायगा। इस प्रकार मैकियावली की दृष्टि से राज्य की उत्पत्ति शक्ति (Force) द्वारा हुई है।

मैकियावली का राज्योत्पत्ति संबंधी दृष्टिकोण अरस्तू से भले ही भिन्न हो किन्तु वह अरस्तू के इस कथन से सहमत है कि राज्य परिवर्तनशील हैं। वे कभी स्थायी नहीं हो पाते। इतिहास वस्तुतः राज्यों के उत्थान और पतन की लम्बी कहानी है। यह परिवर्तन एक निश्चित क्रम से होता है और इस क्रम की कड़ियों को यदि हम बराबर जोड़ते चले जायँ तो हमें वह एक वृत्त (circle) के रूप में दिखलायी पड़ेगा। राज्यों में परिवर्तन बुराई के कारण होता है। हर राज्य का अपना एक जीवन इतिहास होता है। इसको हम दो भागों में बाँट सकते हैं : स्वस्थ राज्य और अस्वस्थ राज्य। स्वस्थ राज्य का सबसे प्रमुख लक्षण यह है कि उसका बराबर विस्तार होता रहता है। इसका अर्थ यह है कि स्वस्थ राज्य वही है जो युद्धशील राज्य है। स्वस्थ राज्य में सामाजिक

ऐक्य का अभाव नही होता। वह एकता की लड़ियों में घने रूप से गुँथा रहता है। स्वस्थ राज्य के निवासी लड़ने-भिड़ने को बराबर तैयार रहते हैं। वे आपस में अपने छोटे-मोटे स्वार्थों के लिए नहीं लड़ते। मैकियावली स्वस्थ राज्य के समाज को ही नैतिक निस्स्वार्थ समाज मानता है। ऐसे समाज का अस्तित्व बिना राज्य के असंभव है।

अस्वस्थ राज्य के लक्षण स्वस्थ राज्य के बिलकुल प्रतिकूल होते हैं। मैकियावली यह नहीं मानता कि राज्य के जीवन में कोई ऐसी भी अवस्था आती है जो स्थायी रूप से बनी रहती है। या तो राज्य स्वस्थ है या फिर अस्वस्थ। इन दोनों के बीच की कोई अवस्था नहीं हो सकती। इसका यह अर्थ है कि या तो कोई राज्य निरन्तर प्रगति करता चलेगा या फिर वह पतन के मार्ग पर फिसलता हुआ नीचे गिरेगा। अस्वस्थ राज्य का सबसे पहला लक्षण यह है कि उसका विस्तार नहीं होता। वह युद्ध कर सकने की स्थिति में नहीं होता। कुछ समय बाद अस्वस्थ राज्य के अंग स्वयमेव उससे अलग होने लगते हैं। ऐसे राज्य की संस्कृति का प्रवाह रुक जाता है। वह सड़ने लगती है। अस्वस्थ राज्य का नरेश निर्बल हो जाता है। उसमें प्रजा की श्रद्धा नहीं रह जाती। अस्वस्थ राज्य में सूदखोरी की प्रवृत्ति बढ़ जाती है। संस्कृति की सड़न से समाज भी सड़ने लगता है और उसके अंग गल-गल कर अलग होने लगते हैं। ऐसे राज्य पर कोई भी विदेशी शक्ति आक्रमण करके उस पर कब्जा कर लेती है।

स्वस्थ राज्य के लक्षणों पर विचार कर लेने के बाद और फिर अस्वस्थ राज्य के लक्षण बतला देने के उपरान्त मैकियावली ने यह समझाने की चेष्टा की है कि राज्य को अस्वस्थ होने से कैसे बचाया जा सकता है।

राज्य को स्वस्थ बनाये रखने के लिये सबसे पहली आवश्यकता तो यह है कि राज्य में एक बहुत ही शक्तिशाली व्यक्ति रहे। इस शक्ति-

शाली व्यक्ति के हाथ में राज्य की सारी शक्तियाँ रहनी चाहिए। दूसरे, इस बलवान नरेश को राज्य में किसी भी प्रकार के आमूल सुधार नहीं होने देने चाहिए। आमूल सुधार राज्य के विभिन्न वर्ग की शक्तियों का सन्तुलन नष्ट कर देते हैं जिससे राज्य के बल का ह्रास हो जाता है। तीसरे ऐसे बलवान नरेश को राज्य की रक्षा और उसके विस्तार के लिए हर प्रकार के साधनों का प्रयोग करना चाहिए। दृष्टि हमेशा लक्ष्य पर होनी चाहिए। साधन के औचित्य-अनौचित्य पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है। चौथे, धर्म को सफलता प्राप्त करने का साधन समझना चाहिए। धर्म के भुलावों में अपना लक्ष्य कभी न छोड़ना चाहिए।

मकियावली का मत है कि यदि कोई नरेश इन बातों पर ध्यान रखेगा तो उसका राज्य कभी अस्वस्थ न हो पायेगा।

संक्षेप में मैकियावली का राज्य सम्बन्धी सिद्धान्त इतना सा ही है। इस सिद्धान्त को जान लेने के बाद उसके दोष स्वयमेव हमारी आँखों के सामने आ खड़े होते हैं। इस सिद्धान्त की सबसे बड़ी त्रुटि तो यह है कि मैकियावली ने अपने राज्य में नागरिक स्वाधीनता या नागरिक अधिकारों की ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया है। ध्यान तो दूर रहा उनकी चर्चा तक नहीं की है। दूसरे मैकियावली सन्तोषजनक रीति से यह सिद्ध नहीं कर पाया है कि मनुष्य या नागरिक राज्य की आज्ञाओं का पालन क्यों करते हैं। मैकियावली के मत को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य के नागरिक सर्वदा बल के भय से ही राज्य की आज्ञा मानते हैं जब कि बात वस्तुतः ऐसी नहीं है। राज्य के बल का भय तो मात्र बाह्य शक्ति है। कोई भी स्वस्थ चित्त व्यक्ति यह नहीं मान सकता कि हम राज्य की आज्ञाओं का पालन केवल भयवश या स्वार्थवश ही करते हैं। कभी-कभी राज्य की आज्ञाओं का पालन उस समय भी किया जाता है जब न तो भय की कोई बात होती है और व्यक्ति का न कोई अपना निजी स्वार्थ ही सिद्ध होता है। तीसरे, हम देखते हैं, और हम ऊपर लिख

भी आये हैं कि मैकियावली की राज्य सम्बन्धी कल्पना स्पष्ट नहीं है। उदाहरण के लिए राज्य के संप्रभुता जैसे महत्वपूर्ण तत्व की ओर मैकियावली ने कोई स्पष्ट संकेत नहीं किया है।

§१२. व्यावहारिक परामर्श

'नरेश' (प्रिंस) में शासक को मैकियावली ने बहुत से व्यावहारिक परामर्श भी दिये हैं। नरेश को सबसे पहली बात तो यह ध्यान में रखनी चाहिए कि वह सद्गुणों का गुलाम न हो जाय। सद्गुणों का स्वामी रहे। गुलाम और मालिक में यह फर्क होता है कि गुलाम चाहे वह किसी का भी हो अपनी मर्जी के मुताबिक काम नहीं कर सकता, जब कि मालिक अपनी मर्जी के मुताबिक काम करने के लिए स्वतंत्र रहता है। जो नरेश सद्गुणों का स्वामी या मालिक होगा वह अपने सद्गुणों के अनुसार जब चाहे तब आचरण करेगा और जब चाहेगा तब नहीं। लेकिन उसमें इतना विवेक अवश्य होना चाहिए कि वह यह निर्णय कर सकने में सफल हो कि किस समय सद्गुणी बनने से राज्य की रक्षा होगी और किस समय उसके विरुद्ध आचरण करने से। यदि वह यह अनुभव करता है कि किसी विशेष अवसर पर राज्य की रक्षा के कार्य में उसके सद्गुण बाधक सिद्ध हो रहे हैं तो वह बिना किसी चिन्ता के विश्वासघात कर सकता है। पाखण्ड रच सकता है। यही नहीं चाहे तो धोखा भी दे सकता है। षड्यंत्र रच कर शत्रु का नाश करा दे और फिर मक्कार बन जाय और ऐसा अभिनय करे जैसे वह कुछ जानता ही नहीं है। उसे 'मनसा वाचा कर्मणा' शुद्ध रहने की भी आवश्यकता नहीं। उसे वह काम साधने के लिए कहे कुछ, सोचे कुछ और करे कुछ। यह सब करने के लिए नरेश को सदैव तत्पर क्यों रहना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर मैकियावली मानव स्वभाव को उद्धृत करके उसकी सहायता से देता है। उसका कहना है कि मनुष्य स्वभावतः बुरा होता है। इसलिए बुराई की ओर झुकते उसे जरा भी समय नहीं लगता। स्वार्थ की सिद्धि का

प्रलोभन ऐसा होता है जिसके सामने आते ही मनुष्य स्नेह और प्रेम के सारे बन्धनों को एक क्षण में तोड़ कर फेंक देता है। प्रेम तभी होता है जब भय रहता है। 'बिनु भय होय न प्रीति।' इसलिए नरेश को बराबर सावधान रहना चाहिए। किसी का कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए। औरंगजेब यदि किसी का विश्वास नहीं करता था तो उसका ऐसा करना बिलकुल उचित था। लेकिन औरंगजेब ने सबसे बड़ी भूल यह की कि उसने अपने प्रति दूसरों के भय को घृणा में बदल दिया। मैकियावली ने इसके विरुद्ध चेतावनी दी है। नरेश को सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि भय घृणा में न बदलने पाये अन्यथा राज्य और राजा दोनों का नाश अवश्यम्भावी है। क्योंकि घृणा के उत्पन्न होते ही लोगों में नरेश या शासक के प्रति अपमान की भावना आ जाती है जो कभी भी वांछनीय नहीं है।

मैकियावली ने एक और परामर्श दिया है और वह यह कि नरेश जितने मंत्रियों से चाहे मंत्रणा करे किन्तु करे वही जो वह ठीक समझे। किसी भी मामले में किसी भी परामर्शदाता से प्रभावित हो कर उसे कोई काम नहीं करना चाहिए। हाँ, किसी कार्य को कर डालने का निश्चय कर लेने के बाद वह अनुकूल परामर्श देने वाले मंत्री को यह कह कर प्रसन्न कर सकता है कि अमुक कार्य उसने उसकी मंत्रणा के अनुसार ही किया है। यह कहना न कहना भी नरेश की अपनी इच्छा पर निर्भर करता है।

नरेश को प्रजा में अपना मान और भय बनाये रखने के लिए जो काम नहीं करने चाहिये उनमें दो यह हैं: पहला, प्रजावर्ग की स्त्रियों पर अपनी दृष्टि कभी न डाले और दूसरा प्रजा की सम्पत्ति कभी न छीने। इन दोनों या दोनों में से एक भी कार्य करने से नरेश का मान चला जाता है और लोग जान हथेली पर रखकर नरेश के ऐसे कुनिश्चयों का सामना करने के लिये तैयार हो जाते हैं। इस प्रकार के भाव से राजा का भय नहीं बना रहता। तीसरे, राजा को प्रजा की सामाजिक रुढ़ियों में कभी भी

हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। सामाजिक रूढ़ियों में हस्तक्षेप करने से जो लोग राजा के विरुद्ध होते हैं उन्हें सिर उठाने का मौका मिल जाता है और जो लोग राजा के पक्ष में होते हैं, वे भी राजा के विरुद्ध हो जाते हैं। और किन्हीं दशाओं में यदि वे विरुद्ध नहीं होते तो भी कम से कम नरेश के पक्ष में उतने बलपूर्वक नहीं बोलते जितने अन्यथा अवस्था में बोलते। चौथे, राजा या नरेश को कभी दूसरे की सहायता द्वारा प्राप्त या किराये की सेनाओं पर निर्भर नहीं करना चाहिये। हमेशा अपनी सेना का स्वयं संघ-ठन करना चाहिये। पाँचवे, सार्वजनिक मामलों में कभी किसी प्रकार की निर्बलता नरेश की ओर से नहीं दिखलायी जानी चाहिये। जनता या प्रजा को हमेशा यह भय बना रहे कि विधि भंग करने वालों को नरेश की ओर से कठोरतम दण्ड मिलेगा और उसमें किसी भी प्रकार की ढिलाई नहीं होगी। छठें, लड़ाई में लूट का जो भी माल आवे उसे चुपचाप सारा का सारा अपने खजाने में ही न भर ले; क्योंकि ऐसा करने का अर्थ सैनिकों तथा प्रजा द्वारा यह लगाया जायगा कि राजा केवल अपना उल्लू सीधा करने के लिये और अपना खजाना भरने के लिए ही युद्ध करता है और उनको अपने प्राण व्यर्थ ही गँवाने पड़ते हैं। इस प्रकार की धारणा को धो डालने का सबसे अच्छा ढङ्ग यह है कि लड़ाई में जो भी लूट का माल मिले उसे उदारतापूर्वक प्रजा और सैनिकों में बाँट दिया जाय। सातवें, जहाँ तक दण्ड देने या अप्रिय आदेशों के अनुसार काम कराने का संबंध है, नरेश को ये सब कार्य अपने अफसरों के जरिये कराने चाहिये। ऐसा करने से यदि बदनामी भी होगी तो उन अफसरों की होगी जो आदेशों के अनुसार कार्य करेंगे और कदाचित् कोई मौका ऐसा भी आ पड़ा जिसमें नरेश को पीछे हटना पड़े तो वह ऐसा दोष अफसरों के सिर पर मढ़ कर स्वयं आसानी से बच सकता है। इसके विपरीत नरेश को ऐसे सब काम स्वयं करने चाहिये जिनसे लोगों के प्रसन्न होने की संभावना हो। उदाहरण के लिए पुरस्कार और सम्मानदायी पदवियों का वितरण कार्य नरेश को स्वयं करना चाहिये। आठवें, नरेश को 'साहित्य

'संगीत विहीन' नहीं होना चाहिये। प्रजा की यह धारणा बराबर बनी रहनी चाहिये कि उसका नरेश कला और साहित्य का संरक्षक है। वह उनके विकास के लिए उत्सुक रहता है। राजा को स्वयं वाणिज्य और व्यवसाय के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिये; किन्तु यह बराबर देखते रहना चाहिये कि वाणिज्य और व्यवसाय निरन्तर उन्नत अवस्था में रहे; क्योंकि इससे राज्य समृद्ध रहता है और यदि वाणिज्य और व्यवसाय की अवनति हो गयी तो राज्य निर्धन हो जायगा और इसका कुफल नरेश को अवश्य भोगना पड़ेगा। वाणिज्य-व्यवसाय ही नहीं राजा को कृषि के विकास की योजनायें भी बनानी चाहिये। नवें, राजा को प्रजा के दिमाग को कभी खाली नहीं छोड़ना चाहिये। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि लोगों का चित्त किसी न किसी एक दिशा में कार्य करने में संलग्न रहे। प्रजा के चित्त को कब्जे में रखने के लिए शान्तिकाल में सबसे अच्छा उपाय यह है कि खूब बड़ी-बड़ी योजनायें, विकास की योजनायें, बनायी जायँ। दसवें, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में नरेश को शक्ति-सन्तुलन इस तरह बनाये रखना चाहिये क किसी भी पड़ोसी राज्य या राज्यों की अकेले य। कुछ राज्यों के साथ मिल कर इतनी शक्ति न होने पाये कि नरेश को उनके बल के सामने नत होना पड़े। इसकी सबसे अच्छी तरकीब यह है कि पड़ोसी राज्य के मामलों में बराबर हस्तक्षेप किया जाय। ग्यारहवें, राज्य की जन-संख्या कभी भी इतनी कम न होने दी जाय कि सैनिकों का अभाव राज्य में न होने पाये। बारहवें, पड़ोसी राज्यों के निवासियों को अपनी प्रजा बना लेने के बजाय राजा को चाहिये कि वह अर्थ का प्रलोभन देकर या बल का भय दिखला कर उन्हें अपना मित्र बना ले। यदि कभी राज्यों पर कब्जा करने की आवश्यकता ही पड़ जाय तो फिर उन राज्यों को अपना उपनिवेश बना लेना चाहिये और विजित प्रदेशों में अपनी फौजें छोड़ देनी चाहिये। लेकिन मैकियावली पड़ोसी राज्य की मित्रता पर 'उसे जीत लेने की अपेक्षा अधिक बल देता है। तेरहवें राजा को युद्धकाल में घेरा डालने की बजाय शत्रु से लड़ाई के मैदान में युद्ध करना चाहिये। चौदहवीं

बात यह है कि जब किसी राज्य पर कब्जा कर लिया जाय तो फिर उसके संविधान में कोई परिवर्तन विजेता द्वारा नहीं करना चाहिये।

कुल मिलाकर ये चौदह बातें हैं जो व्यावहारिक परामर्श के रूप में 'नरेश' को दी गई हैं। संक्षेप में 'नरेश' (प्रिंस) का यही सार है।

§१३. सर्वोत्तम राज्य

राज्य की उत्पत्ति और प्रकृति, राज्य-संचालन की कला तथा व्यावहारिक परामर्श देने के उपरान्त यह प्रश्न उठता है कि मैकियावली किस प्रकार के राज्य को सर्वोत्तम समझता था। 'नरेश' के पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है, जैसा कि उसका शीर्षक भी इंगित करता है, कि मैकियावली राजतंत्र को ही सर्वोत्तम समझता था। 'नरेश' (प्रिंस) के बहुत अधिक प्रचार के कारण साधारण विद्यार्थी भी यही समझता था। लेकिन किसी एक रचना से किसी व्यक्ति के मस्तिष्क का सम्पूर्ण परिचय नहीं मिल सकता। इस सूत्र के अनुसार यदि हम 'डिसकोर्सेज ऑन लिवीज हिस्ट्री' नाम की पुस्तक को पढ़ें तो इस परिणाम पर पहुँचे बिना न रहेंगे कि राजतंत्र (Monarchy) को ही मैकियावली सर्वोत्तम राज्य नहीं समझता था। इस पुस्तक में मैकियावली ने गणतंत्रात्मक राज्य (Republic) को ही अधिक अच्छा माना। मैकियावली की यह आस्था सकारण और साधारण है। गणतंत्र की ओर अपने झुकाव का सबसे पहला कारण मैकियावली ने यह बतलाया है कि राजतंत्र में केवल एक व्यक्ति या अधिक से अधिक एक परिवार ही लाभ उठाता है, जब कि गणतंत्र में राजसत्ता से हर व्यक्ति का लाभ होता है। इस बात को यों स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। राजतंत्र में राज्य संचालन का कार्य केवल एक ही व्यक्ति करता है जब कि गणतंत्र में राज्य संचालन के कार्य में हर व्यक्ति भाग लेता है। इसलिए जहाँ राजतंत्र में केवल शासक या नरेश को ही राजकार्य के संचालन का अनुभव होता है और प्रजा बिलकुल अछूती ही रह जाती है वहाँ गणतंत्र में राजकाज

चलाने का प्रशिक्षण (training) हर व्यक्ति को मिलता है। इससे सामान्य नागरिक भी राजनीतिक दृष्टि से बुद्धिमान हो जाता है। दूसरे, गणतंत्रात्मक शासन वहीं चल सकता है जहाँ लोगों का आर्थिक स्तर लगभग समान हो। अतएव यदि कोई राज्य गणतंत्रात्मक है तो यह आशा की जा सकती है कि उस राज्य के निवासियों में आर्थिक विषमता अधिक नहीं है। इसी सिलसिले में बहुत ही हलके ढंग से अर्थशास्त्र और राज्य शास्त्र के संबंधो को भी मैकियावली ने बतलाने की चेष्टा की है। लेकिन यहाँ केवल संकेत मात्र ही किया गया है। इस ओर पूर्ण रूप से ध्यान तो आगे चलकर एडमस्मिथ, रिकार्डो और जॉन स्टुअर्ट मिल आदि जैसे विद्वानों ने दिया। तीसरे, गणतंत्रात्मक राज्य में इस बात की संभावना अधिक रहती है कि वह राज्य अपनी आवश्यकतानुसार अपने आपको मोड़ ले। राजतंत्र में सचलता और नमनशीलता (Mobility and flexibility) का तुलनात्मक दृष्टि से अभाव होता है। चौथे, गणतंत्रात्मक राज्यो में विदेशों से की गई संधियाँ सामान्यतः भंग नहीं की जातीं, क्योकि संधियों की पुष्टि और उनके भंग करने के लिए समस्त नागरिको की सहमति आवश्यक होती है। राजतंत्र में ऐसी बात नहीं होती। राजतंत्र में संधियाँ एक ही व्यक्ति करता है और उनको भंग करना एक ही व्यक्ति पर निर्भर करता है। इसलिए संधि करने वाले राज्य अपेक्षाकृत गणतंत्र पर राजतंत्र के बजाय अधिक विश्वास कर सकते हैं। इस तरह मैकियावली ने गणतंत्रों को राजतंत्रो की अपेक्षा अधिक सराहा है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वह गणतंत्रों की निर्बलताओं से परिचित नहीं है। उसने गणतंत्र की क्षीणताओं पर भी प्रकाश डाला। संकटकाल में गणतंत्र की प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली द्वारा राज्य-संचालन होना संभव नहीं है। इसलिए संकट-काल का सामना करने के लिए सदैव गणतंत्रात्मक राज्य में भी अत्यन्त सशक्त व्यक्ति होना चाहिए। यही नहीं, गणतंत्रों में बहुधा बड़े सरकारी अफसरों पर किसी एक व्यक्ति का नियंत्रण नहीं होता। नियंत्रण के इस

अभाव में वे लोग अक्सर अन्यायी हो जाते हैं। अतएव सरकारी अफसरों के अन्याय को रोकने के लिए कोई न कोई ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जो अफसरों के कार्यों की जाँच-पड़ताल कर सके और उन्हें दण्ड दे सके। गणतंत्रात्मक राज्यों में दलबंदी होना स्वाभाविक है। हर दल को न केवल अपने विचार प्रकट करने की सुविधा होनी चाहिए, अपितु हर दल को विचार अभिव्यक्त करने, के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए । यदि ऐसा न किया जायगा तो असन्तोष की आग नीचे ही सुलगती रहेगी जो किसी अवसर पर विद्रोह के रूप में फूट सकती है । विद्रोह को बचाने का सबसे अच्छा उपाय है कि असन्तोष को दबाने के बजाय उसे प्रकट करने का अवसर दे दिया जाय। गणतंत्रात्मक राज्य में; और विशेषकर उस दशा में जब किसी नगर-राज्य में गणतंत्रात्मक प्रणाली हों, यह आवश्यक है कि जहाँ तक संभव हो जनसंख्या सजातीय हो। सजातीयता (Homogeneity) का लाभ यह होगा कि संघर्ष नहीं होंगे। यदि गणतंत्र में विजातीय तत्व अधिक होंगे तो उनकी संस्कृति भिन्न होगी; उनकी जातीय और सामाजिक परम्पराएँ भिन्न होंगी; जिनका परिणाम यह होगा कि विरोधी परम्पराओं और संस्कृतियों का संघर्ष होगा, अव्यवस्था फैलेगी और जिसके परिणामस्वरूप गणतंत्रात्मक राज्य विघटित हो नष्ट हो जायगा। अंतिम बात यह बतलायी गई है कि गणतंत्र का विधान मण्डल जो भी विधियाँ बनाये, वे विधियाँ देश और जाति की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि परम्पराओं के अनुकूल होनी चाहिए। यदि ऐसा न किया गया तो जनता में राज्य विरोधी तत्वों के बढ़ने में मदद मिलेगी। उदाहरण के लिए मैकियावली की दृष्टि से भारतीय गणतंत्र को हिन्दू कोड बिल जैसी विधि (Law) नहीं पारित (Pass) करनी चाहिए क्योंकि यह देश की सामाजिक परम्पराओं के प्रतिकूल है। गणतंत्रात्मक राज्य का समर्थन करते हुए मैकियावली ने बतलाया कि वह शासन अधिक स्थायी

होता है जहाँ बहुत से लोग मिल कर राजकाज चलाते हैं। राजतंत्र में राजकाज का सारा दारोमदार केवल नरेश पर ही होता है; इसलिए उसके क्षीण पड़ते ही यह खतरा पैदा हो जाता है कि सारी राजव्यवस्था ही उलट-पुलट न जाय। 'डिसकोर्सेज' में मैकियावली ने वंशानुगत शासक (Hereditary Ruler) के बजाय निर्वाचित शासकों को अधिक अच्छा माना है। उसका मत है कि उनमें उत्तरदायित्व की मात्रा अधिक होती है। मैकियावली ने यह भी मत प्रकट किया है कि गणतंत्र में राजतंत्र की अपेक्षा नागरिकों के चारित्रिक स्तर को ऊँचा करने के अवसर अधिक रहते हैं। राजकाज के साधारण मामलों में गणतंत्र के नागरिकों का निर्णय प्रायः ठीक होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मैकियावली ने भले ही द्वैध नैतिकता का समर्थन किया हो तथा और भी बहुत सी सनक भरी बातें कहीं हो लेकिन इससे उसकी विधि-सम्मत सरकार की आस्था में कोई फर्क नहीं पड़ा है। गणतंत्र और राजतंत्र का जहाँ मैकियावली ने समर्थन किया है वहीं उसने दूसरी ओर सामन्तवादी शासन और आभिजात्यतंत्र का बड़ा विरोध किया है। वह ऐसे लोगों से बहुत ही अधिक घृणा करता है जो दूसरों के परिश्रम पर गुलछर्रे उड़ाते हैं। उसने राजतंत्र का समर्थन ही इसलिए किया था जिससे सामन्तवादी वर्ग का दमन किया जा सके। यहाँ कुछ लोगों ने यह शंका प्रकट की है कि सीजर बोर्जिया भी तो एक सामन्त था; लेकिन उसकी तो मैकियावली ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। इसका उत्तर यह है कि निस्संदेह सीजर बोर्जिया सामन्तवादी वर्ग का व्यक्ति था। उसमें आभिजात्य वर्ग के कुछ दोष भी थे। लेकिन सामन्त होते हुए भी अपने दोषों के बावजूद सीजर बोर्जिया रोमना के निवासियों के लिए एक सुदृढ़ शासन प्रदान कर गया। मैकियावली का लक्ष्य चूँकि सुदृढ़ शासन की स्थापना करना था, इसलिए उसने सीजर बोर्जिया की दुर्बलताओं को जानते हुए भी

सुदृढ़ शासन स्थापित करने की एक मात्र क्षमता के कारण उसकी प्रशंसा की ।

§१४. राज्य की श्रेष्ठता

मनुष्य अपना जीवन विभिन्न समुदायों और संवासों (Groups and Associations) में बिताता है। ये समस्त समुदाय और संवास मानव मस्तिष्क की सामाजिक प्रवृत्ति की ओर ही इङ्गित करते हैं। राज्य इन समस्त समुदायों और संवासों का उत्कृष्टतम तथा सर्वोपरि रूप है। अन्य कोई संवास उससे अधिक श्रेष्ठ नहीं हो सकता। मैकियावली ने राज्य की श्रेष्ठता की यह कल्पना अरस्तू से ग्रहण की है। उसका कहना है कि यदि व्यक्ति को अपना विकास करना है तो उसे अपने व्यक्तित्व को राज्य में अधिक से अधिक विलयित कर देना चाहिये। ऐसा करने से उसकी बौद्धिक शक्तियाँ विकसित होंगी। उसकी प्रतिभा निखरेगी तथा गुण मुखरित होंगे। मैकियावली मानता है कि राज्य के प्रति सारे संवास उत्तरदायी है किन्तु राज्य किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं है। राज्य की श्रेष्ठता का समर्थन करने वाले इन्हीं विचारों ने आगे चलकर मैकियावली के बाद हॉब्स, हीगल, हिटलर और मुसोलिनी के राजदर्शन की नींव रखी। मैकियावली के विचारों की सहायता से उक्त दार्शनिकों ने यह सिद्ध कर दिया कि राज्य की अन्य मानवीय संवासों की भाँति कोई निश्चित आचारिक संहिता (Ethical Code) नहीं है।

कई अन्य विचारकों की भाँति मैकियावली ने राज्यों का नहीं अपितु शासनतंत्रों (Governments) का वर्गीकरण किया है। इस वर्गीकरण में कोई नवीनता नहीं है। अरस्तू के वर्गीकरण के अनुसार ही मैकियावली ने भी शासनतन्त्रों के ६ वर्ग किये हैं। इनमें से तीन को मैकियावली ने अच्छा माना है और तीन को भ्रष्ट। राजतन्त्र, आभिजात्यतन्त्र और लोकतन्त्र ये अच्छे स्वरूप हैं; तथा, निरंकुशतन्त्र, अयोग्य उच्चजनतन्त्र तथा समूहतन्त्र, ये शासनों के भ्रष्ट स्वरूप हैं। मैकियावली उस शासन को सर्वो-

त्तम मानता है जिसमें शासन के तीन अच्छे वर्गों के सारे गुण निहित हों। लेकिन मैकियावली किसी एक वर्ग के शासनतन्त्र से चिपका रहना पसन्द नहीं करता। उसका मत है कि समय की आवश्यकताओं के अनुसार उनमें परिवर्तन होता रहना चाहिये। कोई भी शासनतन्त्र शाश्वत नहीं है। वह राजतन्त्र को भी आनुवंशिक (Hereditary) और निर्वाचित (Elective) राजतन्त्रों में विभक्त करता है। दोनों में वह निर्वाचित राजतन्त्र को ही सर्वोत्तम मानता है। वह आभिजात्यतन्त्र और अयोग्य उच्चजनतन्त्र दोनों का समान रूप से विरोधी है। वह सामन्तवादी वर्ग को इन्हीं दोनों का भ्रष्ट रूप मानता और यह सिफारिश करता है कि राज्य की सुरक्षा और प्रतिरक्षा के लिए इस वर्ग को समाप्त कर देना चाहिए।

§ १५. संप्रभुता (Sovereignty)

संप्रभुता की कोई स्पष्ट कल्पना मैकियावली के मस्तिष्क में नहीं थी। संप्रभुता की हलकी सी रूपरेखा का ज्ञान मैकियावली को था। इसका प्रमाण यह है कि शासक की शक्ति को मैकियावली ने अविभाज्य बतलाया है। और अब पाश्चात्य राजदर्शन के विद्वानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि संप्रभुता की एक विशेषता उसका अविभाज्य होना भी है। संप्रभुता की एक दूसरी विशेषता यह भी होती है कि वह किसी भी बाह्य अथवा आन्तरिक शक्ति के प्रति उत्तरदायी नहीं होती। मैकियावली ने अपने नरेश के संबंध में भी यही कहा है कि वह राज्य की किसी भी सत्ता या विधि के सम्मुख उत्तरदायी नहीं है। वह राज्य के किसी भी संवास या राज्य से बाहर किसी भी सत्ता के आज्ञापालन के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। इसके विपरीत राज्य का प्रत्येक निवासी उसकी आज्ञा का पालन करने के लिये बाध्य होता है। लेकिन मैकियावली संप्रभुता की अन्य विशेषताओं पर कोई प्रकाश नहीं डाल पाया। संप्रभुता जैसे किसी शब्द का उपयोग उसने नहीं किया है। संप्रभुता की उसने कोई परिभाषा नहीं दी है। मैकियावली संप्रभुता की शाश्वतता, अहस्ता-

न्तरणीयता, अनुज्ञप्ति (Sanction), संवैधानिकता आदि के संबंध में सर्वथा मौन है। मैकियावली प्रतिनिधिमूलकता के सम्बन्ध में भी कुछ नहीं कहता। फिर भी शासक की शक्ति की अविभाज्यता और मर्यादा-हीनता बतला कर मैकियावली ने राष्ट्रराज्यों के आगमन की पूर्वसूचना दे दी थी। लार्ड एगडन ने मैकियावली के पूर्वानुमान की प्रशंसा की है और कहा है कि मैकियावली की मृत्यु के बाद विश्व का घटनाचक्र लगभग उसी तरह घूमा जिस तरह की भविष्यवाणी मैकियावली ने की थी। बोदाँ और हॉब्स ने संप्रभुता को राज्य का एक आवश्यक और अनिवार्य तत्व बतलाया। इन दोनों विचारकों ने मैकियावली की सर्वोच्च राजशक्ति की कल्पना की अस्पष्टता को दूर किया। उसे अपेक्षाकृत सरल, सुबोध और स्पष्ट किया। रूसो ने सामान्य इच्छा के रूप में इसका और भी अधिक विकास किया।

§१६. विधि (Law)

राज्यों की विधायिका शक्ति को मैकियावली सर्वशक्तिमान (Omni-potent) और सर्वोच्च (Supreme) शक्ति मानता है। इसी शक्ति की कल्पना में मैकियावली की विधि (Law) सम्बन्धी कल्पना भी निहित है। मैकियावली ने विधि की कोई निश्चित परिभाषा नहीं की है। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि वह नागरिक विधियों (Civic Law) के अतिरिक्त अन्य किन्हीं भी विधियों का अस्तित्त्व स्वीकार नहीं करता। इसका अर्थ यह है कि उसे केवल उन्हीं विधियों पर आस्था है जो राजा या राज्य द्वारा नागरिकों के आचरणों के नियामन के लिये बनायी जाती हैं। प्राकृतिक विधियों (Natural Laws) या दैवी विधियाँ (Divine Laws) आदि के सम्बन्ध में वह मौन रहता है। इस मौन से बुद्धिमान विद्यार्थी अनुमान कर सकता है कि वह उक्त विधियों को कोई महत्व नहीं

देता था। नागरिक विधि का कार्य समाज और राज्य के विश्रृंखलित अंगों को एकता के पाश से बाँधना है। विभिन्न वर्गों में समन्वय स्थापित करना है। अतः विधियों संबंधी मैकियावली के विचार सीमित हैं। उनमें अन्य दार्शनिकों से विराट्ता नहीं है। विधियों का स्रोत शासक है। वह विधियों को बना-बिगाड़ सकता है।

§१७. सेना

हम ऊपर बतला आये हैं कि मैकियावली को सामन्तवादी वर्ग और आभिजात्य तंत्र से बड़ी चिढ़ थी। इसका मुख्य कारण यह था कि सामन्तों से राज्य की एकता में वृद्धि नहीं होती; अपितु उससे अनैक्य ही बढ़ता है। मैकियावली ने यदि कहीं-कहीं किसी सामन्त की प्रशंसा भी की है तो वह अपवाद है; नियम नहीं। सामन्तवादी वर्ग की ही भाँति मैकियावली को तत्कालीन भाड़े की सेनाओं से युद्ध कराने की प्रथा से चिढ़ थी। सेनाओं के संघठन के संबंध में मैकियावली के अपने विचार हैं। ये विचार अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि राष्ट्र-राज्य (Nation State) के विकास में इन विचारों ने विशेष रूप से भाग लिया है।

मैकियावली के समय में इटली के निवासी तीन प्रकार की सेनाओं से परिचित थे। पहले प्रकार की सेनायें तो वे थीं जिन्हें राष्ट्रीय सेनायें (National Army) कहा जाता था। ये सेनायें रुपये-पैसे या लूट के माल के लिए युद्ध नहीं करती थीं; अपितु इनका उद्देश्य अपने देशहित की रक्षा के लिए युद्ध करना हुआ करता था। दूसरे प्रकार की सेनाओं को रियासतों की सेनाओं (State Militia) की कोटि में रखा जा सकता है। इन सेनाओं का संघठन इटली के छोटे-छोटे राज्य या छोटी-छोटी रियासतें किया करती थीं। इनका नेतृत्व रियासत का सामन्त स्वयं करता था। लेकिन बहुधा युद्धकाल में राष्ट्रीय सेनाओं या प्रतिद्वंदी रियासती सेनाओं

के सामने ये निर्बल सिद्ध होती थीं। इसलिये बहुधा परस्पर युद्ध करने वाले दल अपने पक्ष को सैनिक दृष्टि से मजबूत करने के लिए किराये की सेना (Mercenary Army) बुला लिया करते थे। मैकियावली रियासती सेनाओं को तो इसलिए निरर्थक मानता था कि वे किसी बड़े संकट का सामना करने में सदैव असफल रहती थीं। वे अधिक से अधिक रियासतों के आन्तरिक प्रशासन के मामलों में मदद कर सकती थीं। फ्रांस, स्पेन आदि देशों की राष्ट्रीय सेनाओं के सामने उनकी एक न चलती थी और किराये की सेनाओं के विरुद्ध मैकियावली इसलिए था क्योंकि इससे उस पक्ष का कभी कोई लाभ नहीं हो पाता था जो धन का लालच देकर उन्हें बुलाता था। यह तो साधारण मनोविज्ञान है कि जो सैनिक धन के लोभ के लिए लड़ता है, वह मौका पड़ने पर अपने प्राण गँवाने के लिए कभी तैयार न होगा। मैकियावली का मत था कि किराये की सेनायें गुण्डों और आवारा लोगों के ऐसे समूह के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं जो धन के लोभ के वशीभूत हो सबसे अधिक वेतन देने वाले पक्ष के साथ मिल जाती हैं; लेकिन वह किसी भी पक्ष के प्रति श्रद्धा नहीं रखतीं। सच तो यह है कि वे शत्रुपक्ष के लिए उतनी भयावह नहीं होतीं जितनी मित्रपक्ष के लिए। किराये की सेनाओं से काम चला लेने की प्रवृत्ति सोलहवीं शताब्दी के इटली में इतनी अधिक बढ़ गयी थी कि रियासतों ने अपनी सेनाओं का संघठन ही बन्द कर दिया। ये भाड़े के टट्टू सैनिक निश्शस्त्र और निरीह। गाँव तथा नगरवासियों को अपने अत्याचारों से आतंकित रखते थे किन्तु फ्रांस और स्पेन की सेनाओं से मुकाबिले का जब भी मौका आ पड़ता, इन्हें नौ दो ग्यारह होते जरा भी समय न लगता। किसी भी छोटे या बड़े राज्य के खजाने को कुछ ही दिनों में खाली कर देना इनके लिए मामूली बात थी। मैकियावली ने भाड़े की सेनाओं को दब्बूपन, लालची स्वभाव, मैदान छोड़ कर कायरों की भाँति भाग जाने की प्रवृत्ति आदि को भली-भाँति परख लिया था। इसके विपरीत मैकियावली की तेज पर्यवेक्षण शक्ति से यह भी छिपा न रहा था कि फ्रांस ने अपनी सेनाओं का राष्ट्रीयकरण

करके अङ्गरेजों को मार भगाने में कितनी जल्दी सफलता प्राप्त कर ली थी। मैकियावली ने अपने अनुभव से यह निष्कर्ष निकाला था कि जो राज्य भाड़े की सेनाओं या पड़ोसी मित्र राज्य की फौजों की मदद मात्र से कोई युद्ध जीतना चाहता है उसका सर्वनाश निश्चित है। अतएव मैकियावली ने शासक को 'नरेश' (प्रिंस) में सलाह दी है कि वह युद्ध की कला को राज्य संचालन की कला का अंग समझे। यही नहीं अपने राज्य के निवासियों को भी युद्ध की शिक्षा दे। जो राजा अपनी प्रजा को सैनिक शिक्षा नहीं देता उसे अन्त में हाथ मल कर पछताना पड़ता है। ऐसे राजा को सब कुछ खो देना पड़ता है और उसकी प्रजा को बड़े दुखों का सामना करना पड़ता है। इसलिए अपनी तथा प्रजा दोनों के जीवन और सम्पत्ति की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि एक सुसंघटित और अनुशासित सेना राजा के पास रहे और जिसमें केवल राज्य के नागरिकों को ही सैनिक के रूप में भरती किया जाय। राजा को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि उसकी सेना के पास नये से नये शस्त्रास्त्र रहें। सैनिकों को केवल शस्त्रास्त्र संचालन और प्रयोग की ही शिक्षा न दी जाय अपितु उन्हें राष्ट्र प्रेम का भी पाठ पढ़ाया जाय जिससे उनमें अपने देश के और नरेश के प्रति भक्ति और श्रद्धा की भावनायें जाग्रत हों। जिस नरेश की अपने नागरिको की देश और नरेश के प्रेम से ओत-प्रोत, नये से नये शस्त्रास्त्र युक्त, सुसंघटित और अनुशासित अपनी सेना होगी उस नरेश के राज्य में शत्रुदेश की कोई दाल न गल पायेगी।

मैकियावली के राष्ट्रीय सेना संबंधी विचार सोलहवीं शताब्दी की उदयशील राष्ट्रीयता के तत्व पर नया प्रकाश डालते हैं। राष्ट्र की रक्षा के क्षेत्र में नागरिकों और नरेश का क्या कर्तव्य है, यह मैकियावली के सेना सम्बन्धी विचारों से स्पष्ट हो जाता है। इसीलिए कुछ आलोचकों ने मैकियावली को आधुनिक युग का प्रथम राष्ट्रीय विचारक माना है। लेकिन बाद में कुछ आलोचकों के विरोध के कारण यह मत अत्यन्त

विवादास्पद हो गया है। जे० डब्लू० एलन मैकियावली को राष्ट्रीयता का पहला विचारक इसलिए मानने को तैयार नहीं हैं क्योंकि मैकियावली यह बतलाने में असफल रहा है कि राष्ट्र-राज्य का निर्माण किन-किन तत्वों से मिल कर होता है। इसमें संदेह नहीं कि मैकियावली का राष्ट्र-राज्य के तत्वों के सम्बन्ध में मौन रहना या स्पष्ट रूप से कुछ न कहना उसकी बड़ी भारी त्रुटि है; किन्तु यह भी ठीक है कि राष्ट्रीयता की प्रथम रूपरेखा, वह चाहे कितनी ही अस्पष्ट क्यों न हो सबसे पहले मैकियावली ने ही अंकित की थी। इसलिए हमें एफ० जे० सी० हैरना शॉ का यह कथन स्वीकार करना पड़ता है कि आधुनिक युग में राष्ट्रीयता का प्रथम उन्नायक मैकियावली ही था।

§१८. राजदर्शन के इतिहास में स्थिति

मैकियावली के विचारों को भली-भाँति समझ लेने के बाद अब हमें यह विचार करना होगा कि राजनीतिक विचारों के इतिहास में उसकी क्या स्थिति है। इस सम्बन्ध में हमें सबसे पहले यह देखना होगा कि उसके विचारों से क्या निष्कर्ष निकलता है। इसके बाद हम उसके विचारों से निकलने वाले निष्कर्षों की आलोचना करेंगे और अन्त में यह देखेंगे कि मैकियावली के विचारों का परिणाम क्या हुआ; अर्थात् उसके किन-किन विचारों ने किन-किन विचारकों को प्रभावित किया।

मैकियावली के राजनीतिक विचारों के अध्ययन से सबसे पहला निष्कर्ष तो हम यह निकाल सकते हैं कि राज्यशास्त्र स्वयं एक स्वतंत्र विद्या है। राजनीति भी उसी का अंग है। प्लेटो की 'रिपब्लिक' को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि आचार या नीतिशास्त्र (Ethics), धर्मशास्त्र (Metaphysics), अर्थशास्त्र (Economics), तर्कशास्त्र (Logic), राज्यशास्त्र और राजनीति (Politics) आदि सभी विद्यायें

मिली-जुली हैं। कोई एक दूसरे से भिन्न या अलग नहीं है। प्लेटो के बाद अरस्तू ने इन सब विद्याओं का विश्लेषण किया। अरस्तू ने आचार-शास्त्र (Ethics) को व्यक्ति के आचरण को नियमित करने की विद्या बतलाया। अर्थशास्त्र (Economics) को अरस्तू ने परिवार के प्रबंध करने की विद्या बतलाया और राजनीति को या राज्यशास्त्र को राज्य की व्यवस्था की विद्या बतलाया। इस प्रकार अरस्तू ने राज्यशास्त्र को सब विद्याओं से ऊँचा स्थान दिया था। लेकिन अरस्तू के बाद विभिन्न विद्याओं का वर्गीकरण फिर नष्ट हो गया। मध्ययुग के विचारकों ने राज्यशास्त्र को स्वतंत्र विद्या न मान कर उसे धर्मशास्त्र की सहायक विद्या माना। आचार-शास्त्र भी धर्मशास्त्र का पुच्छल्ला बन गया। लेकिन मध्य युग के बाद गत् ५० वर्षों से यह बारम्बार दोहराया जा रहा है कि मैकियावली ही आधुनिक राज्यशास्त्र का संस्थापक है। जर्मनी में रेएके और मीएके जैसे विद्वानों ने तथा इंगलैएड में लॉर्ड मॉर्ले तथा लार्ड एक्टन जैसे विद्वानों ने यही बात कही है। वे मैकियावली को ऐतिहासिक विश्लेषण करने वाली राज्यशास्त्रीय विचारकों की परम्परा का आधुनिक युगीन आदि गुरु समझते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मैकियावली चाहे समस्याओं को हल करने की दिशा में एक भी चरण आगे न बढ़ पाया हो किन्तु उसने समस्याओं के स्वरूप को अत्यन्त स्पष्ट रूप से हमारे सामने रख दिया। मैकियावली ने राज्यशास्त्र को न केवल स्वतंत्र स्थिति ही प्रदान की अपितु उसे नैतिकता से भी अलग कर दिया। मैकियावली ने स्वस्थ राज्य का लक्षण बतलाया कि वह बराबर अपना विस्तार करता रहता है। युद्ध अनिवार्य हैं। आधुनिक युग में हीगल ने भी यही बात कही। हीगल ने राज्य-विस्तार और युद्ध प्रगतिशील राज्य के अनिवार्य लक्षण बतलाये। सेबाइन ने बड़े सुन्दर ढङ्ग से मैकिया-वली की स्थिति का कुछ शब्दों में वर्णन किया है। सेबाइन के अनुसार मैकियावली का चरित्र और उसके विचार का वास्तविक अर्थ आधुनिक इतिहास की एक बहुत बड़ी पहेली रहा है। "उसे बहुत बड़े सनकी, भावुक देशभक्त, पक्के राष्ट्रीयतावादी, राजनीतिक जीससवादी, सच्चे प्रजातंत्रवादी

तथा निरंकुश राजाओं की कृपा द्वारा शक्ति अर्जित करने की इच्छा रखने वाले अंधे व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है।" मैकियावली के नैतिकता और सम्पत्ति संबंधी विचारों के कारण उसे सनकी बतलाया गया है। नैतिकता के विचारों में तो उसकी यह सनक है कि वह 'नरेश' को उन आचारिक बंधनों में नहीं बाँधता जिनसे प्रजा या नागरिक मात्र को बाँधता है। सम्पत्ति सम्बन्धी विचारों में भी सनक है। वह यह कि राजा प्रजा की सम्पत्ति न छीने। क्यों? इसलिये कि प्रजावर्ग के सदस्य एक बार अपने पिता की हत्या करने वाले नरेश को क्षमा कर देंगे किन्तु वे उस नरेश के वंश भर को क्षमा नहीं करेंगे जो उनकी सम्पत्ति छीन लेगा। मैकियावली के इस कथन में संभवतः उसका अपना अनुभव बोल रहा है। हम मैकियावली का जीवन परिचय देते हुये एक स्थान पर लिख आये हैं कि मैकियावली के एक पूर्वज को मेडिची का विरोध करने के अपराध स्वरूप अपना जीवन भर बंदीगृह में प्राण त्याग तक काटना पड़ा था। ऐसे मेडिची के वंशज को सारी पारिवारिक शत्रुता भुला कर मैकियावली ने अपनी 'प्रिंस' नाम की पुस्तक समर्पित कर दी। किन्तु फ्लोरेंस में गणतंत्र के पतन के बाद सम्पत्ति छीनी जाने के बाद उसे जिस प्रकार विरोधियों ने निष्कासित किया उस अपमान को मैकियावली संभवतः कभी न भूल सका। उसने यह अनुभव किया कि आदमी की मौत का दुख तो एक दिन, दो दिन, महीने, दो महीने या अधिक से अधिक साल भर तक रहेगा किन्तु धन और सम्पत्ति का अभाव ऐसी चीज है जो मनुष्य को हर समय हर कदम पर खटकता है। इसलिए उक्त कथन में यदि कोई सनक है तो वह उसकी अपनी वैसी अनुभूति के कारण है। मैकियावली ने अपने देश की दुखद अवस्था स्वयं आँखों से देखी थी और यह अनुभव किया था कि उसका एक मात्र उपचार यही है कि किसी एक व्यक्ति के हाथ में देश की बागडोर दे दी जाय और वह व्यक्ति अपने सबल हाथों से देश के विश्रृंखलित भागों को एकता की माला में पिरो दे। 'नरेश' (प्रिंस) का २६वाँ अध्याय उसकी देशभक्ति का सबसे बड़ा प्रमाण है। मैकियावली ने

शासक की अविच्छिन्न शक्ति का प्रतिपादन कर, देश की एकता के लिए आवाज उठा कर, राष्ट्रीय सेना के संघठन का नारा दे कर, विदेशियों को देश से निकालने की इच्छा प्रकट कर आधुनिक राष्ट्र-राज्य के जन्म और विकास का मार्ग प्रशस्त किया। इसलिए यदि एफ० जे० सी० हैरन शॉ जैसे विद्वान मैकियावली को पक्के राष्ट्रीयतावादी के रूप में देखते हैं तो इसमे आश्चर्य की कोई बात नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि राष्ट्रराज्य के सम्पूर्ण तत्वो का दर्शन जे० डब्लू० एलन के अनुसार मैकियावली नहीं रख सका किन्तु हमें यहाँ याद रखना पड़ेगा कि वह दार्शनिक नहीं था; मात्र विचारक था। इसलिए यदि वह समस्त तत्वों को व्यवस्थित रूप से न रख सका तो उसे दोषी ठहराना ठीक नहीं; विशेषकर उस समय जब हम यह स्वीकार कर चुके हैं कि वह दार्शनिक नहीं है। जीससवादियों और मैकियावली मे समानता यह है कि वह जीससवादियों की भाँति ही 'नरेश' को लौकिक मामलो में पूर्ण स्वतंत्रता देने का पक्षपाती है। जीसस-वादियो और मैकियावली में अन्तर यह है कि वे पारलौकिक मामलों में पोप को सबसे बड़ा अधिकारी समझते थे और राजा को पोप के अधीन मानते थे। मैकियावली यहाँ भी राजा को पोप के अधीन नहीं मानता। अपितु पोप को ही राजा की अधीनता में रखना चाहता है। इसलिये उसे राजनीतिक जीससवादी कहा गया है। मैकियावली को सच्चा प्रजातंत्रवादी सिद्ध करने वाले विचार 'डिसकोर्सेज' में उस जगह पाये जाते हैं जहाँ उसने गणतंत्र के पक्ष में अपने विचार प्रकट किये हैं और बतलाया है कि वह किस प्रकार राजतंत्र से श्रेष्ठ है। गणतंत्र को राजतंत्र की अपेक्षा अधिक स्थायी, अधिक सम्पन्न, नागरिकों के लिए अधिक हितकर बतला कर मैकियावली ने अपनी प्रजातंत्रवादी भावनाओं को अभिव्यक्त किया है। 'नरेश' में प्रकट किये विचारों के बाद जब हम 'डिसकोर्सेज' पढ़ते हैं तब हमें मैकियावली का प्रजातंत्रवादी स्वरूप ज्ञात होता है। 'नरेश' (प्रिंस) के आरंभ में लिखा गया समर्पण और २६वें अध्याय के पढ़ने के बाद हमें ऐसा लगता है जैसे उनको किसी बहुत बड़े चाटुकार ने लिखा हो।

उक्त समर्पण और अध्याय को पढ़ कर हमें फ्रांसिस बेकन का स्मरण हो आता है। बेकन ने भी जेम्स को प्रसन्न करने के लिए अपनी पुस्तकों में ऐसी बातें लिखी थीं। परन्तु चाटुकारिता के आवरण को यदि हटा दिया जाय, जिसकी वजह से हम इस परिणाम तक पहुँचते हैं कि मैकियावली गलत या सही, किसी भी साधन से मेडिची वंश के राजाओं की सेवा में पहुँच कर सत्ता और शक्ति प्राप्त करना चाहता था, तो हमें यह समझते देर न लगेगी कि उन शब्दों में एक बेचैन देशभक्त की आत्मा बोल रही है; एक दुखी राष्ट्रवादी का कण्ठ प्रतिध्वनित हो रहा है। इस तरह यह सच है कि विद्वानों ने मैकियावली के जिन विभिन्न रूपों को विभिन्न विशेषणों द्वारा अंकित करने का प्रयास किया है उनमें से हर रूप में कुछ न कुछ वास्तविकता है; किन्तु उनमें से कोई भी एक विशेषण मैकियावली के सच्चे स्वरूप को चित्रित नहीं करता। सच यह है कि मैकियावली का चरित्र बड़ा उलझनपूर्ण है। उसकी दृष्टि दूर तक देखती तो अवश्य है लेकिन बिलकुल साफ साफ नहीं देखती। उसने ऐतिहासिक ज्ञान और स्थानीय अवस्था के पर्यवेक्षणों को एक दूसरे से संबद्ध करने की चेष्टा की किन्तु उसमें वह अधिक सफल न हो सका। परिणाम यह हुआ कि वह साफ-साफ ढङ्ग से बहुत सी बातों को न कह सका। उसकी असफलता का एक कारण यह भी था कि उसकी कोई अपनी व्यवस्थित पद्धति या विचारधारा नहीं थी। सामयिक आवश्यकताओं के अनुसार उसने जो भी ठीक समझा उसी का समर्थन कर दिया। अतः अनेक जगह बर्क जैसी अस्तव्यस्तता दिखलाई पड़ती है। यदि मैकियावली ने सामयिक आवश्यकता और नीति अथवा आचार को एक दूसरे का पर्याय न समझा होता तो संभवतः इतनी कठिनाई उत्पन्न न होती और न उसके बारे में इतनी गलत धारणायें ही बनतीं। हमने ऊपर कहा है कि मैकियावली अत्यन्त दूरदर्शी था; किन्तु प्रस्तुत स्थल पर यह भी जान लेना चाहिये कि उसकी दूरदर्शिता भी एकांगी है। वह केवल राजनीति, राज्य-निर्माण कला और युद्धकला के बारे में ही सोचता, विचार करता है; लिखता है। सामाजिक प्रश्नों,

आर्थिक या धार्मिक समस्याओं की गहराइयों में उतरने की उसे न तो फुरसत है और न रुचि ही। फिर भी यह सच है कि वही एक ऐसा समकालीन विचारक था जिसने यूरोप के राजनीतिक विकास-चक्र की गति-दिशा को साफ-साफ पहचान लिया था। हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि विधियों (Laws) के क्षेत्र में मैकियावली ने बड़ी सफलतापूर्वक प्राकृतिक विधियो से अपना पिण्ड छुड़ा लिया। उसकी इस सफलता ने उसे मध्य युग के विचारकों की तुलना में अत्यन्त श्रेष्ठ स्थिति प्रदान कर दी। इतना सब होते हुये भी मैकियावली का बड़ा जबर्दस्त विरोध भी हुआ। विरोध का सबसे बड़ा कारण उसकी नैतिकता संबंधी कल्पना है। जैसा कि बतलाया जा चुका है उसकी नैतिकता की कल्पना द्वैध (Dual Conception of Morality) थी। जो आचरिक मानदण्ड नागरिक के लिए होना चाहिये वह मानदण्ड अनिवार्यतः नरेश के लिए नहीं हो सकता। आलोचकों का एक वर्ग नैतिकता की इस कल्पना से जरा भी सहमत होने के लिए प्रस्तुत न निकला। नैतिकता की द्वैध कल्पना राजनीतिक विचारो के इतिहास में कोई बिलकुल नई बात नहीं है। प्राचीन युग के राजनीतिक विचारो के इतिहास में हमें स्मरण है कि ऐसे कई यूनानी विचारक थे जिन्होंने सॉफिस्टों के युग तक नैतिकता की द्वैध कल्पना का प्रचार किया। इसका आंशिक प्रमाण हमें 'रिपब्लिक' में भी मिलता है। लेकिन इसके बाद से नैतिकता की द्वैध कल्पना का बहिष्कार कर दिया गया। यह सब इसलिए हुआ कि मैकियावली ने सामयिक आवश्यकताओं (Expediency) और आचार शास्त्र (Ethics) को, जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है एक दूसरे का पर्याय मान लिया। मैकियावली ने एक भूल और की और वह यह थी कि उसने अपने समय और आस-पास की दशा का अवलोकन किया, उससे निष्कर्ष निकाला और निष्कर्षों के आधार पर सदैव के लिए नियम स्थिर कर दिये। स्पष्टतः, यह बात गलत है। यदि मैकियावली के युग में इटली को राजतंत्रात्मक शासन की आवश्यकता थी तो इसका यह अर्थ तो नहीं कि आज

भी वहाँ राजतंत्र ही होना चाहिये; गणतंत्र (Republic) नहीं। लेकिन उसका मानव स्वभाव संबंधी यह विवेचन ठीक था कि मनुष्य राजनीतिक क्षेत्र में स्वभावतः स्वार्थी होता है। लेकिन यह सोचना गलत होगा कि मनुष्य का समस्त जीवन स्वार्थ द्वारा ही पथप्रदर्शित होता है। फिर भी राजनीतिक क्षेत्र में मानव स्वभाव की स्वार्थी प्रवृत्ति का विवेचन करके मैकियावली ने यह सिद्ध कर दिया कि वह यथार्थवादी था। इसमें संदेह नहीं कि कूटनीति (Diplomacy) मनुष्य की कुटिलताओं का ज्वलन्त प्रमाण है और कूटनीतिक क्षेत्र में राजनीतिज्ञ (Statesman) गर्हित साधनों को अपनाने से भी नहीं चूकते। परन्तु मैकियावली में सबसे बड़ा दोष यह है कि उसके निष्कर्ष एकांगी हैं। वह राजनीतिज्ञ सफल राजनीतिज्ञ नहीं कहा जा सकता जो केवल राजनीति और शासनकला तक ही अपने आपको सीमित रखे तथा सामाजिक, धार्मिक एवं अन्य प्रश्नों की ओर कोई ध्यान ही न दे। आधुनिक युग की राजनीति में ऐसी राजनीति सदैव असफल रहेगी। जो भी शासन केवल अपने आपको राजनीतिक क्षेत्र तक ही सीमित कर लेगा वह शासन निश्चित रूप से बहुत ही जल्दी अपदस्थ कर दिया जायगा। मैकियावली का ख्याल था कि नैतिक, धार्मिक और आर्थिक तत्वो को चतुर राजनीतिज्ञ द्वारा अपने पक्ष में मोड़ लिया जाना चाहिये। लेकिन यह स्वस्थ प्रवृत्ति नहीं है। वस्तुतः राजनीति की बागडोर इस प्रकार सँभाल ली जानी चाहिए कि नैतिक, आर्थिक और धार्मिक तत्वों की आवश्यकताओं की पूर्ति भी राजनीति कर सके। यही एक ऐसा मार्ग है जिससे राजनीतिज्ञ अपनी योग्यता सिद्ध कर समाज और राज्य को सुदृढ़ बना सकता है और राज्यशास्त्र की अन्य विद्याओं की तुलना में श्रेष्ठता सिद्ध कर सकता है। यही नहीं मैकियावली में सबसे बडी त्रुटि यह है कि वह धर्म के प्रति अपनी अनास्था के कारण यह न समझ पाया कि उसकी अपनी शताब्दी में ही धर्म कितना महत्वपूर्ण भाग लेने जा रहा है, क्योंकि सोलहवीं शताब्दी में ही लूथर ने अपना सुधारवादी आन्दोलन किया था जिसने एकबारगी यूरोप की राजनीतिक विचारधारा की गति-दिशा

ही बदल दी और एक बार पुनः मध्य युग के काले मेघों ने राजनीतिक क्षितिज को आवृत्त कर लिया।

मैकियावली ने अपने युग को अथवा लूथर आदि जैसे अपने उत्तराधिकारियों को बहुत कम प्रभावित किया किन्तु बोदाँ के बाद से मैकियावली के विचारों का विपुल प्रभाव यूरोप के राजदर्शन-शास्त्रियों पर देखा जा सकता है। हॉब्स ने मानव स्वभाव का जो वर्णन किया है वह बहुत कुछ मैकियावली से मिलता है। मनुष्य की प्राकृतिक अवस्था का विवरण भी बहुत कुछ उसी से मिलता-जुलता है जो मैकियावली ने दिया है। जहाँ तक राज्योत्पत्ति का संबंध है मैकियावली और कल्पनावादी विचारक (Idealist thinkers) दोनों ही सहमत हैं कि राज्य शक्ति (Force) द्वारा उत्पन्न हुआ है। कल्पनावादी विचारक और मैकियावली दोनों ही राज्य को अधिक से अधिक शक्तिशाली बनाने के पक्ष में हैं। हीगल ने राज्य को सब प्रकार के नैतिक विचारों से मुक्त रखा था। इसी प्रकार बोसांके भी राज्य को सारी शक्तियाँ दे देने का पक्षपाती था। राज्य विस्तार की कल्पना फासिस्टों और नाजीवादियों को अत्यन्त अनुकूल प्रतीत हुई थी। मुसोलिनी ने एबीसीनिया पर और हिटलर ने पौलैएड पर आक्रमण इसी दृष्टि से किया था। मुसोलिनी ने तो अपने विद्यार्थी जीवन में मैकियावली के विचारों को ही अपने शोध का विषय चुना था। हिटलर नित्य सोते समय 'नरेश' (प्रिंस) का स्वाध्याय करता था। मैकियावली की भाँति हिटलर ने राज्य की सजातीयता पर विशेष बल दिया। मुसोलिनी ने राष्ट्रीय एकता को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना। इनके अलावा रिशलू (Richelieu), रानी क्रिश्चियाना (स्वीडन), फ्रेडरिक महान, बिस्मार्क (जर्मनी) और क्लीमेंशू (Clemenceau) आदि जैसे राजनीतिज्ञों और नरेशों की लम्बी पंक्ति है जिन्होंने व्यावहारिक राजनीति में मैकियावली को ही अपना आदर्श माना था। लेनिन और स्टालिन तक ने विरोधियों के

दमन में और राज्य को मजबूत बनाने के मामले में मैकियावली के आदर्शों का ही अनुकरण किया। शुद्धीकरण (Purge) विरोधियों का सफाया करने का ही एक ढंग है। उक्त सारे राजनीतिज्ञों का यही विश्वास है कि व्यक्ति के उद्धार का मार्ग राज्य को सबलतम रूप प्रदान करने ही में है। किन्तु जैसा कहा जा चुका है मैकियावली के विचारों को सोलहवीं शताब्दी में बहुत कम सम्मान मिला। मैकियावली को किसी विचारक ने एक ऐसा टापू बतलाया है जो समुद्र तट से कुछ दूरी पर रहता हुआ तट के आगमन की सूचना देता है। इसी प्रकार यदि मध्य युग को समुद्र मान लिया जाय और आधुनिक युग को तट तो मैकियावली के विचार वे टापू हैं जो तटवर्ती भूमि के आने की सूचना देते हैं। यह रूपक इसलिए ठीक है, क्योंकि मैकियावली की मौत के बाद सोलहवीं शताब्दी मे सुधारवादी आन्दोलन के रूप में एक बार मध्य युग पुनः लौट आया। मैकियावली की बहुत आलोचना की गयी है। न केवल उन लोगो द्वारा जो उसके आदर्शों को नैतिकता के प्रतिकूल समझते थे; अपितु उन लोगों ने भी की जो अन्दर ही अन्दर उसके आदर्शों का लोहा मानते थे किन्तु उनमें इतना साहस न था कि वे सबके सामने मैकियावली की नैतिकता के मानने की घोषणा कर सकते। कुछ लोगों ने मैकियावली को बिना समझे भी आलोचना की। लेकिन १६ वीं और २० वीं शताब्दी के आरंभ में मैकियावली का महत्व समझा गया। यह महत्व समझाने का श्रेय तीन अंग्रेज विद्वानों को है। लॉर्ड मैकाले का नाम इनमें सबसे पहले आता है। इसके बाद लॉर्ड मॉर्ले का तथा लॉर्ड एक्टन का। इन तीनों विद्वानों ने मैकियावली के सम्बन्ध में काफी शोध कार्य किया और कई निबंध लिखे। इन विद्वानों ने मैकियावली की महानता सिद्ध की किन्तु उन्होंने केवल महानता सिद्ध करने के प्रयत्न में मैकियावली की एकांगी व्याख्या ही नही की; प्रशस्ति मात्र ही नहीं की अपितु आलोचना करके मैकियावली के दोषों पर भी प्रकाश डाला। इन विद्वानों के

अनुसार मैक्रियावली के विचारों में नीचे लिखी त्रुटियाँ हैं : मानव स्वभाव सम्बन्धी मैकियावली की व्याख्या गलत है क्योंकि मानव स्वभावतः स्वार्थी ही स्वार्थी नहीं होता; उसमें निस्वार्थ सेवा करने की भी प्रवृत्ति होती है। यही भूल हॉब्स ने भी की। मनुष्य न तो अच्छा होता है और न बुरा ही बुरा। वह अच्छे-बुरे का सम्मिश्रण है। ऐसी अवस्था में यदि कोई भी निष्कर्ष मनुष्य के स्वभाव के केवल एक ही पक्ष को ध्यान में रख कर निकाले जायेंगे तो निश्चय ही वे एकांगी, अपूर्ण और गलत भी होंगे। मैकियावली ने मानव स्वभाव की बुराइयों पर उसकी अच्छाइयों की तुलना में अधिक ध्यान दिया। इसलिये उसके विचारो में उक्त त्रुटियाँ दिखलायी पड़ती हैं। मैकियावली की अध्ययन पद्धति भी त्रुटिपूर्ण है। मैकियावली की रचनाएँ पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि उसने ऐतिहासिक पद्धति का अनुकरण किया है। ऐतिहासिक पद्धति का अर्थ है कि इतिहास का अध्ययन करने के बाद उसकी घटनाओं के क्रम से इतिहास की गति-दिशा का अनुमान लगाया जाय और उन अनुमानों के आधार पर कुछ नियम बनाये जायँ और नियमों के आधार पर सामयिक घटना चक्र का विश्लेषण किया जाय और संभव हो तो समस्याओं के हल की ओर इंगित किया जाय। इस प्रकार की पद्धति जियाम बेटिस्टोवीको, माण्टेस्क्यू, बर्क आदि ने अपनायी है। लेकिन मैकियावली इस पद्धति का अनुकरण नहीं करता। वह समसामयिक अवस्थाओं का पहले पर्यवेक्षण करता है और उसके बाद अपनी समझ से समस्याओं का हल निर्धारित कर लेता है और फिर उसकी पुष्टि ऐतिहासिक घटनाओं या व्यक्तित्वों के आचरण द्वारा करता है। यह पद्धति ऐतिहासिक नहीं कही जा सकती है। इस पद्धति को अनुभूतिमूलक कहना ठीक होगा और डनिंग ने यही कहा भी है। मैकियावली में तीसरा दोष यह है कि उसने ऐसे लेखकों के कथनों द्वारा अपने मत की पुष्टि करने की चेष्टा की है जिनके कथन स्वयं अपनी जगह पर प्रमाणित नहीं माने जाते। ऐसी दशा में उसके

निष्कर्षों की अवमानना स्वाभाविक है। यदि मैकियावली ने उन लेखकों की रचनाओं का आलोचनात्मक अध्ययन किया होता जिनके कथनों द्वारा उसने अपने मत की पुष्टि की है तो वह इस दोष से बड़ी सुविधापूर्वक अपनी रक्षा करने में सफल हो गया होता। मैकियावली में चौथा दोष यह है कि वह वस्तुस्थिति का गवेषणात्मक अध्ययन नहीं करता। सरसरी दृष्टि से स्थिति का अवलोकन करने के बाद उसकी जो भी धारणाएँ बन जाती हैं, बस उन्हीं धारणाओं के आधार पर वह अपने सुझाव दे देता है। सामान्य और राह चलते नागरिक की दृष्टि से तो यह ठीक है; किन्तु राज्यशास्त्र और राजनीति का गंभीर विद्यार्थी ऐसे सरसरी तौर पर किये गये निश्चयों के अनुसार एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता। पाँचवाँ दोष यह है कि मैकियावली के विचारों में शंकाओं और संदिग्ध तथा अस्पष्ट स्थलों का अभाव नहीं है। उदाहरण के लिए, वह राष्ट्रराज्य तो चाहता है लेकिन उसके क्या क्या तत्व होंगे यह बात बिलकुल अस्पष्ट ही रह जाती है। लेकिन कुछ ऐसी बातों के लिए भी मैकियावली की आलोचना की जाती है जिन्हें उसने बिलकुल नहीं कहा था। उदाहरण के लिए मैकियावली द्वारा चित्रित 'नरेश' के स्वरूप पर टिप्पणी करते हुए आलोचकों ने कहा है कि मैकियावली के अनुसार राजा को आततायी (Tyrant) होना चाहिए। यह बात बिलकुल गलत है। मैकियावली ने यह कभी नहीं कहा या चाहा कि नरेश आततायी बने। इस सम्बन्ध में उसने यदि कहा भी है तो वही जिससे वह आततायी न बन पाये। मैकियावली ने चेतावनी दी है कि राजा को प्रजा की घृणा का पात्र बनने से बचना चाहिए। इसका सबसे अच्छा उपाय है कि वह न तो प्रजा की सम्पत्ति अपहृत करे और न राज्य में बसने वाले परिवारों की स्त्रियों पर कुदृष्टि डाले। ये परामर्श राजा को आततायी बनने से बचने के लिए दिये गये हैं; आततायी बनने के लिए नहीं। उसपर अनैतिकता का प्रचार करने का भी आरोप लगाया गया है। किन्तु यह अभियोग भी गलत और निराधार

है। उसने प्रजा को अनैतिक होने का उपदेश तो किसी भी स्थल पर दिया ही नहीं है; राजा को अवश्य सलाह दी है कि वह नैतिक बंधनों को न माने। इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि राजा अनैतिक हो जाय। इसका अर्थ केवल इतना है कि राज्य की रक्षा के लिए यदि आवश्यक हो तो राजा को अनैतिक साधनों के प्रयोग से भी डरना नहीं चाहिये। इहलोक में सफलता प्राप्त करने के लिए राजा को परलोक दण्ड की आशंका से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन इसका यह भी तात्पर्य नहीं है कि राजा का सम्पूर्ण जीवन ही अनैतिकतामय है। नैतिकता का बाना तो परिधान की भाँति अन्य लोगों की तरह नरेश के आचरण पर भी होना ही चाहिए। कभी-कभी जब जरूरत हो तो नैतिकता के आदर्शों को भी सफलता के लिए दस्ताने या कोट की भाँति उतार देने की क्षमता नरेश में होनी चाहिए। यह बात एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगी। सोमनाथ के मन्दिर पर महमूद गजनवी ने जब आक्रमण किया तो राजपूतों के प्रहारों से अपनी सेना को बचाने के लिए उसने गायों को आगे कर दिया। गौरक्षक राजपूत गायों के सामने आ जाने के कारण दुश्मन की सेनाओं के हमले का जवाब न दे सके। मैकियावली के पथ प्रदर्शन को यदि माना जाय तो राजपूतों को उस समय यह समझ लेना चाहिए था कि गायें सामने हैं ही नहीं और शत्रु की सेना को गाजरमूली की तरह काट कर फेंक देना चाहिए था। मैकियावली का यह कथन ठीक है कि मनुष्य नैतिक या अनैतिक स्वभाव से होता है। पुस्तकों को पढ़ कर कोई अनैतिक नहीं बनता। अन्त में मैकियावली की रक्षा के लिए हमें यह कहना ही पड़ेगा कि वह देशभक्त था। वह विदेशियों से अपने देश को मुक्त करना चाहता था। मेजिनी, गैरीबाल्डी केवूर तथा विक्टर इमैनुअल से लेकर मुसोलिनी तक ने मैकियावली को प्रथम देशभक्त की उपाधि दी है। वह चाहता था कि लोग सात्विक जीवन बितायें और उसने स्वयं अपना जीवन इसी तरह बिताया भी। धर्म के प्रति उसका रुख न तो अधार्मिक था और न

धर्म विरोधी। उसने पोप तथा ईसाई धर्म की आलोचना अवश्य की। लेकिन ध्यान से देखा जाय तो ईसाई धर्म की जितनी भी आलोचना उसने की वह वस्तुतः ईसाई धर्म की आलोचना नहीं थी। वह आलोचना थी पोप की, जो धार्मिक क्षेत्र की आड़ में राजनीति में घुस आये थे और अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिये इटली की रियासतों को आपस में लड़ाते थे और कभी फ्रांस को बुलाते थे तो कभी स्पेन को प्रोत्साहित करते थे और इस प्रकार इटली के एकीकरण के मार्ग में बाधक बने हुये थे। सी० सी० मैक्सी का निम्नलिखित अवतरण मैकियावली के विचारों का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है: "उसने राजनीति की नैतिकता को भ्रष्ट नहीं किया—उसे भ्रष्ट करने का कार्य तो शताब्दियों पूर्व किया जा चुका था। लेकिन उसने जिस निर्ममतापूर्ण निष्पक्षता से उन पवित्र षड्यंत्रों का पर्दाफाश किया जो धार्मिक मंत्रोच्चार द्वारा बड़े-बड़े स्थानों में रचे जाते थे वह प्रशंसा योग्य है। उसे सच्चे और पक्के देशभक्त तथा आधुनिक राष्ट्रवाद के नेता होने का श्रेय भी दिया जाना चाहिए। सैद्धान्तिकता के प्रतिकूल व्यावहारिक राजनीति पर भावुकतापूर्ण बल देकर उसने निस्संदेह राजनीतिक विचारों को मध्ययुगीन स्कॉलास्टिक अस्पष्टतापाद से बचा लिया और इस कारण उसे यदि महान कार्यकारणवादियों में सबसे बड़ा न भी माना जाय तो भी यह तो कहना ही होगा कि वह प्रथम कार्यकारणवादी (Pragmatist) था।

§१६. अनुदाय (Contributions)

मैकियावली के अनुदायों (Contributions) की ओर ऊपर काफी संकेत किया जा चुका है। संक्षेप में उनका यहाँ भी विवरण दिया जा रहा है। उसका सबसे पहला अनुदाय तो यह है कि उसने आधुनिक युग की राजनीति को वह स्थान दिया जो उसे आज प्राप्त है। राजनीति को अरस्तू के लुप्त हो जाने के बाद से मैकियावली के पूर्व तक मध्य युग

के विचारक धर्मशास्त्र के अन्तर्गत मानते थे। मैकियावली ने धर्मशास्त्र की अवहेलना की और इस हद तक की कि धर्म द्वारा निकट भविष्य में होने वाले क्रान्तिकारी परिवर्तनों तक को न देखने का दोषी होना स्वीकार कर लिया; परन्तु राजनीति को धर्म के पंजे से छुड़ा लिया। मैकियावली का दूसरा अनुदाय है मानव स्वभाव संबंधी सिद्धान्त। यह सिद्धान्त मैकियावली की यथार्थवादिता पर प्रकाश डालता है। यह सच है कि वह त्रुटिपूर्ण है किन्तु उसमें जो कुछ भी ठीक है वह अति आधुनिक है। इस सिद्धान्त से दो परिणाम निकलते हैं। पहला तो यह कि मनुष्य राज्य और समाज बनने के पूर्व एक प्रकार की प्राकृतिक अवस्था में था जो दुख और कष्ट की अवस्था थी और राज्य का संघठन इस अवस्था की निवृत्ति के लिए हुआ। यह बात हॉब्स ने मानी। दूसरा परिणाम यह निकलता है कि मनुष्य दुख से छुटकारा पाने के लिए और सुख की उपलब्धि के लिए ही सारे काम करता है। यही बात बेन्थम ने भी कही थी। बेन्थम ने कहा था मनुष्य दो संप्रभु स्वामियों के अधीन रहता है 'सुख और दुख।' मैकियावली का तीसरा अनुदाय है अध्ययन-पद्धति के क्षेत्र में। इसमें सन्देह नहीं कि मैकियावली की अध्ययन-पद्धति ऐतिहासिक नहीं थी। लेकिन वह अनुभूतिमूलक (Empiric) थी। अनुभूतिमूलक पद्धति का पोषण लॉक, ह्यूम, बेन्थम, मिल आदि ने किया। सामयिक आवश्यकताओं (Expediency) के अनुसार काम करने के सिद्धान्त का समर्थन और सबल प्रतिपादन तो बर्क ने भी किया था। मैकियावली का चौथा अनुदाय व्यक्तिवाद के क्षेत्र में है। स्पष्टतः उसने व्यक्तिवाद की चर्चा कहीं नहीं की है। लेकिन ईसाई लेखकों और मैकियावली का अन्तर इस बात से स्पष्ट है कि जहाँ उसके पूर्ववर्ती जो कुछ भी सोचते और लिखते थे उसका लक्ष्य समाज होता था वहीं मैकियावली ने राज्य की सर्वोच्चता बताते हुए नरेश के लिए व्यक्ति की सम्पत्ति आदि छीनने का निषेध कर दिया। इसी आधार पर आगे चल कर व्यक्तिवाद जैसे एक स्वतंत्र सिद्धान्त का मैकियावली के उत्तराधिकारियों ने निरूपण ही कर

डाला। लॉक ने जीवन रक्षा तथा सम्पत्ति रक्षा आदि के पक्ष में जो तर्क दिये हैं उनमें मैकियावली का अपरोक्ष प्रभाव दिखलायी पड़ता है। मैकियावली का पाँचवाँ अनुदाय है उसका नैतिकता संबंधी सिद्धान्त। उसने राज्यशास्त्र की नैतिकता को सामाजिक और धार्मिक नैतिकता से सर्वथा अलग कर दिया। इस प्रकार मैकियावली को लौकिक राजनीति (Secular Politics) की सृष्टि का श्रेय दिया गया और यह उचित भी है। मैकियावली का लौकिक राजनीति संबंधी दृष्टिकोण आज सभी राज्य मानते हैं। धर्मयुक्त राजनीति का सिद्धान्त मानने वाले देशों की संख्या आज उँगली पर गिनने लायक है। मैकियावली ने शासक को काल और पात्र के अनुसार आचरण करने की स्वतंत्रता देकर उपयोगितावादी नैतिकता को भी जन्म दे डाला। मैकियावली का छठा अनुदाय है राज्य की उत्पत्ति और प्रकृति के क्षेत्र में। उसके पूर्व राज्योत्पत्ति का दैवी सिद्धान्त ही सर्वमान्य था। लेकिन मैकियावली ने राज्य को कृत्रिम या मानव कृत संस्था बतला कर उसे विशुद्ध लौकिक संवास (Secular Association) सिद्ध कर दिया और दैवी सिद्धान्त के कारण जो पारलौकिक तत्व मिश्रित हो गये थे उनको निकाल फेंका। राज्य कृत्रिम है और वह मनुष्यकृत है; इस सिद्धान्त को आगे चलकर हॉब्स, लॉक, रूसो आदि ने और भी विकसित किया। मैकियावली ने राज्य को 'सर्वशक्तिमान लौकिक, राष्ट्रीय, स्वतंत्र अस्तित्ववान और ऐकिक' बतलाया। राज्य की इस कल्पना को आज प्रायः सभी देश मानते हैं। मैकियावली का सातवाँ अनुदाय उसकी विधि (Law) संबंधी वह कल्पना है जिसमें उसने अन्य किसी भी प्रकार की विधियों को कोई महत्व न देकर नागरिक विधियों (Civil Laws) को ही उच्चतम माना है। मैकियावली के इस दृष्टिकोण को हॉब्स ने विस्तार से दार्शनिक रूप देकर प्रतिपादित किया। हीगल और बोसांके ने भी राज्य की विधियों को सर्वोच्च माना है। मैकियावली के बाद से प्राकृतिक विधियो का महत्व बहुत कम हो गया।

मैकियावली को राष्ट्रीय देशभक्त के रूप में सदैव स्मरण रखा जायगा। यह सच है कि मैकियावली के समय में इटली का राष्ट्रीय एकीकरण नहीं हो सका किन्तु बाद में जब अन्य देशभक्तों के प्रयत्नों से इटली स्वतंत्र हुआ तो समवेत् स्वर से उन लोगों ने मैकियावली के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की।

नरेश

(प्रिंस)

अध्याय १

विविध प्रकार के शासनतंत्र और उनकी स्थापना की पद्धतियाँ

सभी राज्यों में निवास करने वाली मनुष्य जाति पर या तो गणतंत्रों का आधिपत्य होता है अथवा राजतंत्रों का। राजतंत्र या तो वंशानुगत क्रम से चलते हैं अर्थात् एक ही परिवार के व्यक्तियों में से कोई एक सदस्य पीढ़ी दर पीढ़ी से शासक होता चला जाता है या फिर वे नवस्थापित होते हैं। नवस्थापित राजतंत्र या तो बिल्कुल ही नये होते हैं जैसा कि मिलान[1] के फ्रांसेस्को स्फोरजा का वंश था या वे नये सदस्य होते हैं जिनको कोई नरेश किसी राज्य विशेष को अपने प्रदेश का स्थायी अंग बना लेने के बाद नियुक्त करता है, जिस प्रकार स्पेन के राजा के लिये नेपिल्स[2] का राज्य है। इस प्रकार से जो भी राज्य प्राप्त किया जाता है— वह या तो किसी दूसरे नरेश के शासन के अन्तर्गत रहने का अभ्यासी होता है या फिर स्वतंत्र होता है और जिसे कोई नरेश अपनी सैन्यशक्ति के बल से अपने कब्जे में लाता है। कभी-कभी दूसरों के राज्य किसी नरेश को भाग्यवश या अपनी विशेष योग्यता के कारण भी मिल जाते हैं।

---

[1]मध्य इटली का एक प्रसिद्ध नगर।

[2]इटली के दक्षिणी समुद्र तट पर स्थित एक व्यापारिक बन्दरगाह।

अध्याय २

वंशानुगत राजतंत्र

मैं यहाँ गणतंत्रों की चर्चा नहीं करूँगा क्योंकि इनके सम्बन्ध में एक अन्य स्थल पर मैं विस्तारपूर्वक चर्चा कर चुका हूँ।[1] मैं यहाँ केवल राजतंत्रों के विषय में चर्चा करूँगा और बतलाऊँगा कि विभिन्न प्रकार के राजतंत्रों में किस प्रकार शासन किया जाता है और उनके जीवन की किस प्रकार रक्षा की जाती है। सबसे पहली बात तो यह है कि जो राज्य किसी राजवंश के शासन के अन्तर्गत बहुत दिनों तक रह चुका होता है उस पर शासन करने में उस राज्य की अपेक्षा अत्यल्प कठिनाइयाँ होती हैं जो कभी भी किसी राजतत्र के शासनान्तर्गत नहीं रहा होता है; क्योंकि ऐसी अवस्था में इतना ही पर्याप्त होता है कि उन मर्यादाओं और परम्पराओं का उल्लंघन न किया जाय जो पीढ़ी दर पीढ़ी से चली आ रही हों। ऐसी अवस्था में कोई किसी अप्रत्याशित परिस्थिति का सामना करने के लिये पहले से तैयारियाँ भी कर सकता है। इन दशाओं में सामान्य क्षमता और योग्यता वाला नरेश भी अपना राज्य तब तक बनाये रख सकता है जब तक कोई बहुत ही बड़ी शक्ति उसे पदच्युत न कर दे। इतने पर भी यदि नया शासक जरा सी भी गलती कर देगा तो पुराना राजा उस गलती का लाभ उठा कर अपना राज्य पुनः प्राप्त कर सकता है।

---

[1] गणतंत्रों के संबंध में मैकियावली की पुस्तक 'डिसकोर्सेज' में विस्तारपूर्वक चर्चा की गयी है। यहाँ मैकियावली का अभिप्राय उसी पुस्तक से है।

उदाहरण के लिए हम लोग इटली के ड्यूक ऑफ फेरेरा का नाम ले सकते हैं। वेनिशियनों ने ड्यूक पर सन् १४८४ में आक्रमण किया और इसके बाद सन् १५१० में पोप जूलियस ने पुनः आक्रमण किया। दोनों ही बार ड्यूक अपने प्रदेश की रक्षा करने में केवल इसीलिए सफल हो गया कि उस क्षेत्र पर उसका अधिकार पूर्वजों से चला आ रहा था। किसी भी ऐसे नरेश को जो किसी राज्य का न्यायोचित शासक हो अपनी प्रजा को असन्तुष्ट करने की अपेक्षाकृत कम आवश्यकता पड़ती है और ऐसा करने के बहुत कम कारण भी उपस्थित होते हैं। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि उस नरेश से उसकी प्रजा अधिक प्रेम करे और यदि उस नरेश में कोई ऐसे दुर्गुण नहीं जिनकी वजह से उससे घृणा की जाने लगे तो यह भी स्वाभाविक ही है कि राजा के प्रति प्रजा का मोह उत्पन्न हो जाय और लम्बे अरसे के शासन काल में कटु स्मृतियों को भुला दिया जाय। किन्तु जब किसी नये नरेश का शासन स्थापित होता है तो बहुत से परिवर्तन होते हैं और फिर एक परिवर्तन के बाद दूसरे परिवर्तन का मार्ग तो स्वयं ही खुल जाता है।

सारांश

स्वतंत्र राज्यों पर शासन करना उन राज्यों की अपेक्षा कठिन होता है जो पहिले ही किसी शासनान्तर्गत रह चुके होते हैं। किसी के अधीन रह चुकने वाले राज्यों का शासनकार्य साधारण योग्यता का नरेश भी चला सकता है लेकिन स्वतंत्र रह चुकने वाले नये राज्यों के संबंध में यह नहीं कहा जा सकता।

अध्याय ३

मिश्रित राजतंत्र

वस्तुतः सबसे अधिक कठिनाइयाँ नये राजतत्र के सम्मुख आती हैं। पहिली कठिनाई यह है—यदि राजतंत्र बिल्कुल ही नया नहीं है और यदि वह किसी मिश्रित राज्य का सदस्य है तो उसमें सभी नये राज्यों की भाँति अव्यवस्था संबंधी कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं जिसका कारण यह होता है। मनुष्य अपने स्वामी को इसलिए बदलता है कि उसकी अवस्था में सुधार हो। अपनी स्थिति के सुधार के लिए ही वह ऐसा करता है लेकिन जब वह यह देखता है कि उसकी अवस्था पहले से भी अधिक खराब हो गयी है और वह ठगा गया है तो वह अपने नये शासक के भी विरुद्ध शस्त्र ग्रहण कर लेता है। यह भी एक अत्यन्त स्वाभाविक कारण का परिणाम है। वह कारण यह है कि जब कोई शासक किसी प्रदेश पर कब्जा करता है तो अपनी सफलता के लिए वह तथा उसके सैनिक ऐसे बहुत से कार्य करने को बाध्य होते हैं जिससे उस प्रदेश के निवासियों को हानि होती है।

अतः, आपके वे सब लोग शत्रु हो जाते हैं जिनको आपके संबंधित प्रदेश पर आधिपत्य स्थापित करते समय क्षति पहुँची है। आप उन लोगों से भी मैत्री नहीं बनाये रख सकते जिन लोगों ने आपको संबंधित क्षेत्र पर कब्जा करने में सहायता की थी क्योंकि आप उनकी समस्त आशाओं-आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं कर सकते हैं और न आप उनके विरुद्ध कठोर कार्रवाइयाँ ही कर सकते हैं क्योंकि तब आप उनके प्रति कृतज्ञता के भार से दबे होते हैं। इसका कारण भी है और वह यह कि आपकी सेनाएँ चाहे कितनी ही शक्तिशालिनी क्यों न हों आपको

अपने मनोनुकूल प्रदेश को जीतने के लिए हमेशा उस प्रदेश के निवासियों को अनुकूल बनाना होगा। फ्रांस के लुई १२वें के हाथ में मिलान बिना किसी कठिनाई के आ गया था लेकिन इन्हीं कारणों से वह राज्य फ्रांस के हाथ से निकल गया। लूडोविको की फौजों ने पुनः मिलान पर कब्जा कर लिया। हालाँकि मिलानवासियों ने फ्रांस की फौजों के लिए नगर के दरवाजे स्वयं ही खोल दिये थे लेकिन जब उन्होंने देखा कि फ्रांस के नरेश भी उनकी स्थिति को उन्नत नहीं कर सके और उन्हें वे लाभ नहीं हुए जिनकी वे चिरकाल से आशा कर रहे थे तो फिर वे उन कठिनाइयों और तकलीफों को न बरदाश्त कर सके जो स्वभावतः नये शासक के आरंभिक शासनकाल में प्रजा को होती हैं।

यह सच है कि विद्रोही प्रदेशों को पुनः जीत लेने के बाद वे जल्दी ही आसानी के साथ हाथ से नहीं निकल जाते क्योंकि विद्रोही क्षेत्र का वह शासक जो एक बार खोये हुए क्षेत्र पर पुनः कब्जा करता है। अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए इस बात से बचता है कि उन लोगों को भी दण्डित करे जिन्होंने पहले उसके खिलाफ बगावत का झण्डा खड़ा किया था। वह संदिग्ध व्यक्तियों के इरादों का भी भण्डाफोड़ नहीं करता। इसके अतिरिक्त निर्बल स्थानों पर भी अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने की चेष्टा नहीं करता। इसलिए यह स्वाभाविक था कि ड्यूक लूडोविको के सीमा पर दिखलायी पड़ते ही मिलान फ्रांस के हाथ से निकल जाता। दूसरी बार फ्रांस को भी तभी हटाया जा सका जब सब लोग उसके शासन के विरुद्ध हो गये और उसकी सेनाओं को परास्त करके इटली के बाहर निकाल दिया गया। यह सब उन्हीं कारणों से हुआ जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। कुछ भी हो, मिलान पर फ्रांस ने दो बार कब्जा किया और दोनों ही बार वह फ्रान्स से छीन लिया गया। पहली बार फ्रान्स की हार के सामान्य कारणों पर हम विचार कर ही चुके हैं। अब हमें देखना है कि दूसरी बार फ्रान्स की हार के क्या कारण थे और वह दूसरी बार पराजय से किस प्रकार बच सकता था। फ्रान्स के

नरेश के स्थान पर यदि अन्य कोई शासक होता तो वह क्या विजित क्षेत्र की रक्षा के लिये क्या कार्रवाइयाँ करता जिन्हें फ्रान्स ने समय रहते नहीं किया। सब से पहले तो यह जान लेना चाहिये कि जिस राज्य पर कब्जा किया जाता है वह जातीयता या राष्ट्रीयता और भाषा की दृष्टि से उस राज्य से भिन्न हो सकता है, जो कब्जा करता है। यदि यह भिन्नता नहीं होती तो विजित राज्य को कब्जे में बनाये रखने में बड़ी सुविधा होती है विशेषकर उस समय जब कि विजित क्षेत्र कभी स्वतंत्र नहीं रहा हो। ऐसे क्षेत्रों पर स्थायी रूप से अपना अधिकार बनाये रखने के लिये विजयी राजा को चाहिये कि वह उस क्षेत्र के पराजित शासकों के परिवार तथा वंशजों को समाप्त कर दे। इसके अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में प्रजा के कार्य-व्यापार में कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये और सब कुछ पूर्ववत् बना रहने देना चाहिये क्योंकि प्रथाओं में (राष्ट्रीय समानता होने के कारण) कोई असमानता नहीं होती—इसलिये लोग जल्दी ही अपने नये शासकों के अन्तर्गत शान्तिपूर्वक रहने लगते हैं, जैसा कि बरगण्डी, ब्रिटानी, गेस्कनी और नॉरमण्डी आदि के बारे में हुआ और जिन्हें फ्रान्स से संयुक्त हुए इतने दिन हो गये हैं। इन प्रदेशों के निवासियों की भाषा अवश्य कुछ भिन्न है, फिर भी लोगों की सामाजिक प्रथाएँ आपस में एक दूसरे से खूब मिलती-जुलती हैं। इस वजह से उनकी एक साथ खूब मजे से निभती जाती है। जो भी इस प्रकार बाहरी क्षेत्रों पर कब्जा करना चाहता है और अपने आधिपत्य को बनाये रखना चाहता है—उसे दो बातें ध्यान में रखनी चाहिये। पहली तो यह कि पुराने शासकों के वंशज बिल्कुल समाप्त कर दिये जाएँ और दूसरी यह है कि उस प्रदेश की विधियाँ या करों में कोई हेर-फेर और संशोधन न किया जाय। यदि ऐसा किया गया तो थोड़े ही समय में वे प्रदेश नये राज्य से इस प्रकार संबद्ध हो जायँगे कि नये और पुराने प्रदेश के निवासियों में कोई फर्क ही नहीं रह जायगा। नये तथा पुराने प्रदेश दोनों मिल कर एक राज्य हो जायँगे।

लेकिन जब किसी विजित प्रदेश की भाषा, विधियाँ और प्रथाएँ विजयी राज्य से भिन्न होती हैं तो कठिनाइयों को दूर करना अपेक्षाकृत बड़ा दुष्कर हो जाता है। ऐसे क्षेत्रों पर आधिपत्य रखने के लिये विपुल धन और कठोर परिश्रम की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे प्रदेश पर कब्जा बनाये रखने का एक उत्तम साधन तो यह है कि विजित शासक स्वयं उस क्षेत्र में जाकर रहने लगे। ऐसा करने से विजित प्रदेश का कब्जे में बना रहना अपेक्षाकृत अधिक सुगम और निश्चित हो जायगा। टर्कों ने यूनान पर कब्जा बनाये रखने के लिए ऐसा ही किया था। उन लोगों ने यूनान पर अपना आधिपत्य बनाए रखने के लिए जो कार्रवाइयाँ की थीं—वे सब उतनी सफल न होतीं यदि वे स्वयं वहाँ जाकर न रहे होते। घटनास्थल के समीप रहने से सबसे बड़ा लाभ तो यह होता है कि जहाँ अव्यवस्था उत्पन्न हुई कि उसको दूर करने के लिए तत्काल प्रयत्न किये जा सकते हैं लेकिन दूर रहने पर उनके बारे में उस समय ज्ञात होता है जब कि रोग असाध्य हो गया होता है। इसके अलावा, विजयी शासक के अफसरों को उस प्रदेश में अत्याचार करने का मौका नहीं मिलता। प्रजा स्वयं नरेश के पास जाकर न्याय पा लेती है जिससे उसे सन्तोष हो जाता है। जब प्रजा का यह विश्वास हो जाता है कि शासक को उनकी चिन्ता है तो उसकी राजभक्ति और भी जाग उठती है। यदि प्रजा राजभक्त नहीं भी हुई तो तो भी वह नये शासक के उपस्थित रहने के कारण उससे बराबर भयभीत रहती है। कोई वाह्य शक्ति यदि उस क्षेत्र पर अपना दाँत गड़ाये भी होगी तो भी उसका ऐसा करने का साहस नये शासक की उपस्थिति में न होगा। सारांश यह है कि जब तक नया शासक विजित क्षेत्र में स्वयं रहेगा तब तक उसके हाथ से जीते हुए प्रदेश का निकल जाना बड़ा कठिन है।

दूसरा और इससे अच्छा उपाय यह है कि विजित प्रदेश के दो एक महत्वपूर्ण स्थानों पर अपने यहाँ के निवासियों के उपनिवेश बसा दिये

जायँ। ऐसा करना इसलिए आवश्यक है क्योंकि उपनिवेशों के अभाव में विजयी शासक को उक्त क्षेत्र में सशस्त्र सेना रखनी पड़ेगी जिसका बड़ा गुरु व्ययभार शासक को वहन करना पड़ेगा। इसके विपरीत उपनिवेश बसाने में शासक को बहुत कम या लगभग नहीं के बराबर व्यय करना पड़ेगा। वह अपने यहाँ के निवासियों को बसाने के लिए वहाँ के मूल वासियों को हटा दे और मूलनिवासी चूँकि संख्या में कम, गरीब और असंगठित होंगे—इसलिए बलवान शासक का कुछ भी बिगाड़ न सकेंगे। शेष निवासियों को कोई हानि नहीं पहुँची होगी—अतएव, उनको आसानी से शान्त किया जा सकता है। ऐसे लोग राजविरोधी कार्य करने से भी डरेंगे और सोचेंगे कि कहीं उनके साथ भी वैसा ही व्यवहार न किया जाय जैसा कुछ लोगों के साथ किया जा चुका है। सारांश यह है कि ऐसे उपनिवेशों के निर्माण में कुछ भी व्यय न होगा और क्षतिग्रस्त व्यक्ति जैसा कि मैं ऊपर बतला चुका हूँ कोई शरारत भी न कर पायेंगे। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि या तो लोगों के प्रति स्नेह प्रकट किया जाय या फिर उनका उन्मूलन कर दिया जाय। यदि उनको छोटी-छोटी हानियाँ पहुँचायी जायँगी तो वे उनका बदला ले सकते हैं लेकिन बड़ी हानियों का बदला लेने की सामर्थ्य उनमें नहीं हो सकती। इसलिए हम लोगों को किसी का नुकसान करते समय यह ध्यान रखना पड़ेगा कि प्रतिहिंसा या बदले का कोई खतरा न रहे। लेकिन यदि कोई उपनिवेश बसाने के बजाय सेनाएँ रखता है तो उसे खर्च अधिक करना पड़ेगा और विजित प्रदेश से होने वाली आय का अधिकांश भाग शान्ति और व्यवस्था बनाए रखने की मद में ही खर्च हो जायगा और इस प्रकार विजय अभियान से बजाय लाभ के हानि ही अधिक होगी। दूसरे यदि किसी प्रदेश के निवासियों के सिर पर अपने नरेश की सेना के बजाय विदेशी सेना रहेगी तो वहाँ के लोगों को भी बराबर व्यथा होती रहेगी। विदेशी सेना के रहने से होनेवाली असुविधाओं को सब अनुभव करते हैं। अतः नये

शासक के सब लोग शत्रु हो जाते हैं। ये शत्रु बराबर शरारत करते रह सकते हैं। यह सत्य है कि वे हार गये होते हैं लेकिन यह न भूलना चाहिए कि वे अपने घर में होते हैं। अतः हर दृष्टि से उपनिवेश लाभ-दायी होते हैं और सेनाएँ अनुपयोगी होती हैं।

और भी, विदेशी प्रदेश के शासक को ऐसे छोटे और निर्बल पड़ोसी राज्यों का रक्षक तथा नेता बन जाना चाहिये जो बड़ी राज्य-शक्तियों से अपनी रक्षा न कर पाते हों। जो पड़ोसी राज्य शक्तिशाली हों—उनकी शक्ति को बराबर कम करते रहने की चेष्टा करते रहना चाहिये। इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि उन पर कोई ऐसी शक्ति आक्रमण न कर पाये जो विजयी शासक की अपनी शक्ति से अति बलवान हो। कुछ समय बाद यह होने लगेगा कि वे पड़ोसी राज्य जो अपने प्रति-द्वन्द्वियों की महत्वाकांक्षाओं से असंतुष्ट होंगे या किसी अन्य कारणवश भयभीत होंगे, विजयी शासक को स्वयं अनुरोध करके अपने यहाँ बुलाने लगेंगे जिस प्रकार एटोलियनों ने रोमनों को यूनान में बुलाया था। इसके बाद रोमन जहाँ-जहाँ भी गए उनको हमेशा वहाँ-वहाँ के मूलवासी ही निमन्त्रित करते गये। यह नियम है कि जब कोई शक्तिशाली विदेशी किसी प्रदेश विशेष में प्रविष्ट होता है तो सभी अपेक्षाकृत निर्बल निवासी सिमट कर उस विदेशी शासक के भक्त बन जाते हैं। इस कार्य में मुख्यतः ईर्ष्या की वह भावना भी कार्य करती है जो सामान्यतः हर व्यक्ति के हृदय में अपने ऊपर शासन करने वाले के विरुद्ध जाग जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि विदेशी शासक को छोटे-मोटे राज्यों के नरेशों को अपने पक्ष में मिलाने में कोई कठिनाई नहीं होती। वे अपनी इच्छा से उससे आकर मिल जाते हैं। नये राजा को केवल इतनी ही सावधानी रखनी चाहिए कि वे छोटे-छोटे राज्य परस्पर मिल कर बहुत अधिक शक्ति न प्राप्त कर लें। इसके बाद वह अपने सहायकों तथा अपनी सेना की मदद से उन राज्यों का आसानी से दमन कर सकता है, जो बलवान हों और उस क्षेत्र में अपनी स्थिति को

एक मध्यस्थ के रूप में बराबर सुरक्षित रख सकता है। जो शासक इस प्रकार शासन नहीं करेगा वह यदि नये प्रदेशों पर कब्जा करने में सफल भी हो गया तो भी उन्हें खो देगा और जब तक वे प्रदेश उसके हाथ में रहेंगे तब तक उसे अनन्त कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा।

रोमन जब भी किसी नये प्रदेश पर कब्जा करते थे तो वे हमेशा इसी नीति का अनुकरण करते थे। वे अपने उपनिवेश स्थापित करते थे। बिना अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाये या उसका प्रयोग किये अपने से कम बलवान राज्यों को अपने पक्ष में मिला लेते थे। जो सबसे अधिक बलवान होते थे और शक्ति में उनकी बराबरी करते थे उनका दमन कर डालते थे और अपने पक्ष के राज्यों के शासकों पर अपनी किसी प्रतिद्वन्द्वी विदेशी शक्ति का प्रभाव नहीं पड़ने देते थे। इस सम्बन्ध में मैं केवल यूनान का उदाहरण दूँगा। रोमनों ने एकिअनो और एटोलियनों से मैत्री कर के मेसीडोनिनों को नीचा दिखा दिया। लेकिन इसके साथ ही उन्होने एकिअनों और एटोलियनो को अपना क्षेत्र बढ़ाने का भी कोई मौका नहीं दिया। साथ ही उन्होंने एटोलियनों और एकिअनो के सारे प्रयत्नों के बावजूद फिलिप से मित्रता भी करने का अवसर नहीं दिया। एएटीकोस को भी उन्होने उसकी शक्ति के बावजूद किसी प्रदेश का स्वामी नहीं होने दिया।

रोमनों ने यूनान में जो कुछ किया वही प्रत्येक बुद्धिमान नरेश को करना चाहिये था जो न केवल वर्तमान बल्कि भावी संघर्षों की भी कल्पना कर सकते हैं और जो उन राज्यों में अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाये रखने के लिये पहले से ही परिश्रमपूर्वक मोर्चेबन्दी कर डालते हैं। क्योंकि जिस आपत्ति की कल्पना पहले से ही की जा सकती हो उसके खिलाफ तैयारी भी मुसीबत आने के पहले ही की जा सकती है लेकिन यदि कोई तब तक प्रतीक्षा करता रहे जब तक रोग सिर पर ही न आये और इसके बाद फिर व्याधि की औषधि तलाश करने निकले तो

औषधि मिलने तक रोग काबू के बाहर हो सकता है जैसा कि कुछ ज्वरों के संबन्ध में चिकित्सक कहते हैं। प्रारंभ से ही लम्बे ज्वरों की चिकित्सा करना आसान होता है लेकिन प्रारम्भिक अवस्था में कठिनाई यह पड़ती है कि उनको पहचाना नहीं जा सकता और जब उनके लक्षण स्पष्ट हो जाते हैं तो फिर उनकी चिकित्सा करना आसान नहीं रह जाता। ठीक यही बातें राज्यों के संबंध में भी लागू होती हैं। किसी दूर प्रदेश में क्या हो रहा है—इसकी कल्पना कुछ ही बुद्धिमान व्यक्ति कर सकते हैं और वे सुविधापूर्वक वहाँ उत्पन्न होने वाली बुराइयों का उन्मूलन कर देते हैं। लेकिन जब इस प्रकार का ज्ञान न हो सके और किसी सुदूर प्रदेश में कोई बुराई उत्पन्न हो कर बराबर बढ़ती चली जाय तो जब शासक को उसका पता चलेगा तब वह उसके काबू के बाहर चली गयी होगी। ऐसी अवस्था में उस बुराई को दूर करने का उपाय खोज निकालना बड़ा ही कठिन होता है। रोमनों में यही खूबी थी कि वे दूर रहते हुए भी अव्यवस्था-जनित दोषों को भाँप लेने के अभ्यासी होते थे। इसलिए जहाँ उन्हें कोई दोष प्रतीत हुआ वहीं जड़ से उसे साफ कर देते थे। उसे बढ़ने का मौका कदापि न देते थे जिससे युद्ध छेड़ने की आवश्यकता पड़ जाय। वे यह भी जानते थे कि युद्ध से बचा नहीं जा सकता। युद्ध को टालने का यही परिणाम हो सकता है कि उससे दूसरा पक्ष लाभ उठा ले। उन्होंने एण्टीकोस और फिलिप के विरुद्ध इसलिये यूनान में युद्ध छेड़ दिया जिससे उन्हें वही लड़ाई यूनानियो से इटली में न लड़नी पड़ी। वे यदि चाहते तो एण्टीकोस और फिलिप से युद्ध न करते। लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्होंने विलम्ब का लाभ उठाने की चेष्टा भी नहीं की। जैसी सलाह आजकल के बुद्धिमान बहुधा देते हैं। उन्हें अपनी बुद्धिमत्ता और सद्गुण सम्पन्नता पर विश्वास था। वे जानते थे कि समय के साथ सब कुछ आता है। समय बिता देने से कभी लाभ भी हो सकता है और कभी बुराई भी पैदा हो सकती है।

लेकिन अब हमें फ्रांस का प्रसंग पुनः छेड़ना चाहिए और देखना चाहिए कि क्या फ्रांस ने भी इसी तरह की कोई बात की थी ? मैं चार्ल्स की बात न करूँगा, केवल लुई के ही कृत्यों की चर्चा करूँगा क्योंकि वे सर्वविदित हैं। लुई का इटली पर आधिपत्य भी अपेक्षाकृत अधिक काल तक रहा। यदि लुई के कार्यों के इतिहास का ज्ञान आपको हो तो आप देखेंगे—उसने ऐसे सारे काम किये जिनको उसे अपने साम्राज्य की रक्षा की दृष्टि से बिल्कुल न करना चाहिए था। राजा लुई को वेनेशियनो ने अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए निमन्त्रित किया था। वेनेशियन लुई के आने से अपना यह लाभ देखते थे कि वे आधे लम्बार्डी पर कब्जा कर सकेंगे। मैं राजा लुई को इटली पर आक्रमण करने के लिए दोषी नहीं ठहराता और न उसने इटली में आकर यहाँ के लोगों के साथ जो कुछ किया उसके लिए ही दोषी समझता हूँ। राजा चार्ल्स ने जो कुछ किया था उसकी वजह से लुई के लिए इटली में आने के सारे रास्ते बन्द हो गए थे। इसलिए उसे जो भी मौका मिला, जिसने भी मैत्री के लिए हाथ बढ़ाया, उसने विवश होकर उससे ही मैत्री की। यदि उसने कुछ भयंकर भूलें न की होतीं तो वह अपनी योजना में बहुत अंशों तक सफल भी हो जाता।

लुई के लम्बार्डी पर कब्जा कर लेने से उसे वह प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त हो गयी जिसे चार्ल्स ने खो दिया था। जिनोआ नतमस्तक हो गया। फ्लोरेंसवासी लुई के मित्र हो गये। मार्क्विस आफ मेण्टुआ, फेरेरा और बेण्टीवोग्ली के ड्यूकों, लेडी ऑफ फॉरली, फानेजा, पेसारो, रिमनी, कैमेरिनो और पियमबीनो के लॉर्डो, ल्यूका, पीसा सायना के निवासियों आदि सभी ने लुई से मित्रता करने की इच्छा प्रकट की। वेनेशियनों ने उस समय लम्बार्डी के कुछ शहरों को प्राप्त करने की अपनी उतावली के परिणामों का अनुभव किया होगा। तब वे यह समझे होंगे कि जो राजा दो तिहाई से अधिक इटली को अपना साम्राज्य बना चुका है उससे वे कुछ नगर कैसे प्राप्त कर सकेंगे।

अब सोचिये, यदि लुई ने उन नियमों का पालन किया होता जिनकी चर्चा हम ऊपर कर आये हैं तो उसे इटली में अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करने में कितनी सहायता मिली होती। यदि उसने अपने सभी मित्रों को मुट्ठी में रखा होता, जो बहुसंख्यक थे और साथ ही निर्बल भी थे और जो एक ओर वेनिशियनों से डरते थे और दूसरी ओर चर्च से, तो उसे किसी भी अकेले शत्रु का सामना करने में शायद ही कोई कठिनाई होती चाहे वह कितना ही बलवान क्यों न होता। लेकिन मिलान में प्रविष्ट होने के पूर्व ही लुई ने उक्त सब नियमों के विरुद्ध कार्य करना आरम्भ कर दिया था। उसने सबसे पहली बात तो यह की कि पोप एलेक्जेण्डर को रोमना पर कब्जा कर लेने में सहायता दी। लुई ने यह नहीं विचार किया कि इस मार्ग को अपना कर जो उनकी शरण में आये हैं वह उन मित्रों को ठुकरा रहा है तथा अपनी ही स्थिति को निर्बल बना रहा है गिरजा की आध्यात्मिक सत्ता को राजसत्ता की शक्तियाँ देकर उसे और मजबूत बना रहा है। आरम्भ में ही गलती कर देने की वजह से अपनी एक गलती को ढकने के लिए उसे अन्य भूलें भी करने के लिए विवश होना पड़ा। उसे पोप एलेक्जेण्डर की महत्वाकांक्षाओं को नियन्त्रित करने तथा टस्कनी का शासक न बनने के लिए लुई को स्वयं इटली आना पड़ा। लुई को गिरजा की शक्ति बढ़ाकर अपने मित्रों को खोकर ही जैसे संतोष न हुआ हो उसने नेपिल्स के राज्य का स्पेन के साथ बँटवारा कर लिया। कहाँ तो वह इटली का कर्ता-धर्ता स्वयं बन बैठा था—कहाँ वह एक ऐसे साथी को और ले आया जो इटली में उसकी बराबरी की स्थिति का ही दावा करने लगा। इससे उक्त राज्य में जो लोग लुई की गलतियों से असतुष्ट थे उनको ऐसी शक्ति तक पहुँचने का मौका मिल गया जहाँ वे फ्रांस के विरुद्ध जहर उगल सकें। यही नहीं, उसने नेपिल्स के उस नरेश को तो पदच्युत कर दिया जो सदैव फ्रांस के प्रति सहायक बना रहता और उसके स्थान पर एक ऐसे

राजा को सिंहासन पर बैठाया जिसने लुई को मौका पाते ही राज्य से मार भगाया।

सम्पत्ति प्राप्त करने की आकांक्षा अत्यन्त स्वाभाविक और सामान्य सी चीज है, और जब कोई अपनी इस इच्छा की पूर्ति सफलतापूर्वक कर लेता है तो उसकी सदैव प्रशंसा की जाती है, निन्दा नहीं; लेकिन जब कोई सम्पत्ति प्राप्त नहीं कर सकता और फिर जो उसे हर मूल्य पर प्राप्त करना चाहता है तो वह सचमुच ऐसा काम करता है जिसकी जितनी भी बुराई की जाय, कम है। यदि फ्रांस अपनी सैनिक शक्ति द्वारा नेपिल्स पर कब्जा कर सकता था तो उसे ऐसा अवश्य करना चाहिए था लेकिन यदि वह ऐसा नहीं कर सकता था तो उसे इस कार्य में कोई भाग न लेना चाहिए था। वेनिशियनों के साथ मिलकर फ्रांस ने लम्बार्डी का जो विभाजन किया था, यदि उसे क्षम्य भी समझा जाय तो भी स्पेन के साथ मिलकर नेपिल्स का राज्य का जो विभाजन फ्रांस ने किया था वह सर्वथा निन्दा के योग्य है क्योंकि उसकी कोई आवश्यकता नहीं थी।

इस प्रकार लुई ने पाँच गलतियाँ की, जो ये हैं: उसने छोटी शक्तियों को बुरी तरह रौंद डाला। पोप की शक्ति बढ़ा दी। अपने क्षेत्र में एक बहुत शक्तिशाली विदेशी शक्ति को ले आया। वह इटली में आकर स्वयं नहीं रहा और न उसने अपना कोई उपनिवेश ही विजित क्षेत्र में बसाया। यदि वह रहा होता तो ये गलतियाँ भी उसे हानि न पहुँचातीं बशर्ते उसने छठी भूल भी न की होती। लुई की छठी गलती यह थी कि उसने वेनिशियनों का राज्य छीन लिया। यदि लुई ने इटली में ही पोप की शक्ति को न बढ़ा दिया होता और वह स्पेन जैसी शक्ति को बाहर से न ले आया होता तो ऐसा करना आवश्यक होता किन्तु उक्त दो कार्य वह पहले ही कर चुका था, अतएव वेनिशियनों को दबाना गलती हुई। लुई को वेनीशियनों का नाश कदापि न होने देना चाहिये था क्योंकि यदि वे मजबूत बने रहते तो अन्य लोगों का

लम्बार्डी पर कब्जा कर लेने का साहस न होता क्योंकि वेनीशियन ऐसी किसी योजना के प्रति सहमति न प्रकट करते जिससे लम्बार्डी पर उनका अधिकार न रहता और फिर अन्य शक्तियाँ भी यह पसन्द नहीं करतीं कि वे लम्बार्डी को फ्रांस से छीनकर वेनिस के हवाले कर दें। दूसरे उनकी वेनिस तथा फ्रांस दोनों पर आक्रमण करने की हिम्मत भी न पड़ती।

यदि कोई यह कहता कि राजा लुई ने एलेक्जेण्डर को रोमना और स्पेन को नेपिल्स के आधे राज्य पर युद्ध को टालने की वजह से कब्जा कर लेने दिया तो मैं कहूँगा कि युद्ध को टालने के लिए अवस्था कभी न उत्पन्न होने देनी चाहिए क्योंकि ऐसा करने से युद्ध बच नहीं सकता बल्कि कुछ समय के लिए टल जाता है जिसकी वजह से हानि ही होती है। और यदि कोई राजा के उस वादे की दुहाई दें जो उन्होंने पोप से किया था (लुई ने कहा था कि यदि पोप उसका विवाह संबंध विच्छेद करा देंगे और रोहेन को कार्डिनल बना देंगे तो पोप की साम्राज्य वृद्धि की इच्छा की पूर्ति वह कर देगा।) तो मैं वह उत्तर दूँगा जो आगे चल कर नरेशों के धर्म के संबंध में मैंने कहा है। मैंने यह भी बतलाया है कि उन्हें किस प्रकार अपने धर्म का पालन करना चाहिये। इस प्रकार राजा लुई को लम्बार्डी से हाथ धोना पड़ा—क्योंकि उसने उन नियमों का पालन नहीं किया था जो उसे करने चाहिए थे और जिन नियमों को उन लोगों ने स्थिर किया था जिन्होंने बड़े-बड़े राज्य जीते थे और जीत कर उन पर अपना आधिपत्य बनाये रखा था। साम्राज्यों का निर्माण करना और उनकी रक्षा करना कोई जादू का तमाशा नहीं है, वरन् बड़ा ही कठिन कार्य है जिसमें बड़े विवेक से काम करना पड़ता है। जिन दिनों पोप एलेक्जेण्डर का पुत्र वेलेण्टाइन जिसको सामान्यतः सीजर बोर्जिया के नाम से लोग जानते हैं रोमना में पदारूढ़ था तब मैंने नाण्टीज में रोहन के कार्डिनल से इस संबध में बातचीत की थी। रोहन के कार्डिनल ने मुझसे कहा था कि इटालियनों को युद्ध करना

नहीं आता। मैंने इसका उत्तर यह दिया कि फ्रांसीसी राजनीति नहीं समझते क्योंकि यदि वे राजनीति समझते होते तो वे गिरजा को कभी भी इतना अधिक शक्तिशाली न होने देते। अनुभव साक्षी है कि इटली और स्पेन दोनों स्थानों में फ्राँस ने गिरजे की शक्ति को बढ़ाया और गिरजा की शक्ति ही फ्रांस के नाश का कारण बनी। इससे यह एक सामान्य नियम बनाया जा सकता है और जिसका अपवाद बहुत कम मिलेगा कि जो भी किसी सत्ता को स्वयं शक्तिशाली बनाता है उसका नाश उसी शक्ति द्वारा होता है; क्योंकि उस सत्ता को शक्तिशाली बनाने में या तो चतुराई से काम लिया जाता है या शक्ति से और नयी सत्ता हमेशा इन दोनों को ही संदेह की दृष्टि से देखती है।

सारांश

नवस्थापित राजतंत्र के सामने बहुत सी कठिनाइयाँ होती हैं और उसके बहुत से शत्रु भी होते हैं। बहुत सी कठिनाइयों और शत्रुओं को दूर करने का एक उपाय यह है कि नरेश अपनी राजधानी ही उस क्षेत्र में बना ले। इसके अलावा नये राज्य में अपनी बस्तियाँ भी बसा देनी चाहिये। इस सुरक्षा के साथ ही मितव्ययिता भी होती है। नये नरेश को अपने प्रतिद्वंद्वी नरेश के विरुद्ध अपने निर्बल पड़ोसी राज्यों से मित्रता करनी चाहिए। यदि आरंभ में छोटे युद्ध से काम चलता हो तो भविष्य में बड़े युद्ध को बचाने के लिए उसे करने से कभी नहीं डरना चाहिए।

अध्याय ४

सिकन्दर द्वारा विजित डेरियस के साम्राज्य की प्रजा ने सिकन्दर की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारियों के विरुद्ध विद्रोह क्यों नहीं किया ?

किसी भी नये राज्य को कब्जे में रखने में जो दिक्कतें पैदा होती हैं उनकी कल्पना करके कुछ लोग यह आश्चर्य कर सकते हैं कि सिकन्दर महान् कुछ ही वर्षों में समग्र एशिया का स्वामी किस प्रकार बन बैठा। जिस समय उसकी मृत्यु हुई थी उस समय तक स्वयं सिकन्दर विजित प्रदेशों के शासन की बागडोर ठीक ढग से सँभाल नहीं पाया था। ऐसी अवस्था में यह माना जा सकत है कि उसकी मृत्यु के बाद समूचा राज्य विद्रोह कर बैठा होगा। तब भी (इतिहास साक्षी है) सिकन्दर के उत्तराधिकारियों ने विजित प्रदेशों पर अपना आधिपत्य बनाये रखा और उन्हें उन कठिनाइयों के अलावा अन्य कोई कठिनाई नहीं हुई जो उनमें आपस की महत्वाकांक्षाओं-जनित मतभेदों के कारण उत्पन्न हुई थीं।

इतिहास जिन साम्राज्यों से परिचित है उन सबका प्रशासन निम्न-लिखित दो प्रकारों में से किसी एक प्रकार से किया जाता रहा है—या तो नरेश और उसके कर्मचारी मिल कर शासन करते हैं या फिर नरेश और सामन्त मिल कर राजकाज सँभालते हैं। कर्मचारियों की नियुक्ति और उनका सेवाकाल तो सम्बन्धित नरेश की कृपादृष्टि पर निर्भर करता है और उनकी स्थिति अमात्यों या मन्त्रियों की भाँति रहती है जब कि सामन्तों की नियुक्ति नरेश की कृपा पर निर्भर नहीं करती, वह वंशानुगत परम्परा और रक्त की प्राचीनता के आधार पर चलती है। ऐसे सामन्तों

की अपनी रियासतें होती हैं और अपनी प्रजा होती है। यह प्रजा उन सामन्तों को ही अपना स्वामी मानती है और यह भी स्वाभाविक है कि वह अपने स्वामियों से प्रेम करे। जिन राज्यों के नरेश अपने कर्मचारियों की सहायता से राजकाज करते हैं उस राज्य में नरेश की अपनी सत्ता अधिक प्रबल होती है क्योंकि फिर पूरे राज्य में उसकी बराबरी करने वाला या उससे ऊँची स्थिति का दावा करने वाला अन्य कोई व्यक्ति नहीं होता। नरेश के अतिरिक्त यदि अन्य किसी व्यक्ति की आज्ञाओं का पालन भी किया जाता है तो केवल इसलिए कि वे नरेश के अमात्य या नरेश द्वारा नियुक्त कोई अधिकारी हैं। इन अमात्यों या अधिकारियों से किसी प्रजाजन को कोई विशेष प्रेम नहीं होता।

समकालीन इतिहास में से उक्त दो प्रकार के शासनों के उदाहरण के रूप में टर्क और फ्रांस के राजा के शासनो को लिया जा सकता है। समस्त टर्किश राजतन्त्र का शासन एक शासक द्वारा किया जाता है और अन्य समस्त अधिकारी टर्क राजा के कर्मचारी होते हैं। टर्क राजा ने अपने समस्त राज्य को कुछ भागों में विभाजित कर दिया है। इन प्रान्तों को 'संगियाकेट्स' कहा जाता है और इनके शासन के लिए राजा स्वयं प्रशासको को नियुक्त करता है। इन प्रशासकों को वह अपनी इच्छानुसार हटाता है या निर्दिष्ट पदों पर बने रहने देता है। लेकिन फ्रांस के राजा के चारों ओर बहुत से ऐसे प्राचीन सामन्त रहते हैं जिनकी अपनी प्रजा भी होती है और जो उनसे प्रेम भी करती है। इन सामन्तों के कुछ अपने विशेषाधिकार भी होते हैं। इन विशेषाधिकारों को नरेश बिना खतरा मोल लिये छीन भी नहीं सकता। जो भी इन दो राज्यों पर गौर करेगा, वह देखेगा कि टर्क साम्राज्य पर कब्जा करना कितना कठिन है; लेकिन यदि एक बार कोई उसे जीत ले तो उस पर कब्जा बनाए रखना बड़ा ही आसान है। इसके विपरीत, बहुत सी बातों में फ्रांसीसी राज्य को आरंभ में जीतना तो बड़ा आसान होगा लेकिन उस पर आधिपत्य बनाये रखना अत्यधिक कठिन होगा।

टर्किश राज्य को जीतने में जो कठिनाइयाँ होंगी उनके कारण निम्नलिखित हैं । पहला तो यह कि आक्रमणकारी को टर्किश राज्य में राजतंत्र से संबंधित ऐसा कोई भी व्यक्ति मिलना मुश्किल है जो उसे निमंत्रित करे और न आक्रमणकारी को यही आशा करनी चाहिये। राजतंत्र के निकटवर्ती कोई व्यक्ति प्रजा को विद्रोह के लिए भड़का कर आक्रमणकर्त्ता के लिये सुविधाएँ पैदा कर देगा। क्योंकि उस राज्य में सभी दास तथा राजा पर ही निर्भर रहने वाले व्यक्ति होंगे—इसलिये उनको किसी भी प्रकार पथभ्रष्ट करना बड़ा कठिन होगा और यदि उनको किसी भी प्रकार मिला भी लिया गया तो भी उनसे लाभदायी परिणाम होने की कोई आशा नहीं करनी चाहिये। ऐसे मिलाये गये व्यक्ति के साथ प्रजा के पीछे चलने की आशा अत्यल्प है । अतएव टर्क साम्राज्य पर आक्रमण करने वाली शक्ति को अपनी ही शक्ति पर अधिक भरोसा करना होगा और इस बात के लिये तैयार रहना होगा कि वह समूची संघटित टर्क राज्य की सेना का एकाकी मुकाबिला कर सके। उसे अन्य लोगों द्वारा किये जाने वाले विद्रोहों अथवा अव्यवस्थाओं का कतई कोई भरोसा नहीं करना चाहिये । लेकिन यदि एक बार आक्रमणकारी विजय प्राप्त कर लेता है, युद्ध में टर्क नरेश तथा उसकी सेनाओं को पूर्णतः पराजित कर देता है और ऐसा बना देता है कि उसके पास सेना संचय करने की भी शक्ति बिल्कुल न रह जाय तो फिर विजेता को नरेश के परिवार के बचे-खुचे व्यक्तियों को छोड़कर अन्य किसी से डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि वह पराजित नरेश के परिवार के सभी सदस्यों को भी समाप्त कर देता है तो फिर उसे किसी से डरने की आवश्यकता नहीं है। शेष व्यक्ति विजयी के सम्मुख नत-मस्तक हो जायेंगे। वे पुराने राजवंश के अवशेषों के भी मिटा दिये जाने के कारण फिर पुराने शासन की प्रतिष्ठा के लिए प्रयत्न छोड़ देंगे और फिर जनता भी उनकी कोई बात न मानेगी क्योंकि उसकी अपनी कोई भी स्वतंत्र स्थिति न होगी।

लेकिन फ्रांस जैसे राज्य का मामला बिल्कुल दूसरा है। फ्रांस में कोई भी आक्रमणकारी किसी भी सामन्त को अपने साथ मिलाने के बाद राज्य में आसानी से घुस सकता है क्योंकि बहुत से सामन्तों में से कोई न कोई असंतुष्ट सामन्त सदैव मिल सकता है और परिवर्तनाकांक्षी हो सकता है। ऐसा सामन्त आक्रमणकारी शक्ति का मार्ग स्वच्छ कर देगा और आरम्भ में विजय भी दिला देगा; लेकिन बाद में यदि विजित प्रदेश पर आधिपत्य बनाये रखने की कोशिश की गयी तो अनन्त कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जायँगी। जिन लोगों ने आपकी सहायता की है—वे भी कठिनाइयाँ पैदा करेंगे और वे भी जिनको आपने दबाया है। ऐसे राज्य में केवल संबंधित नरेश के परिवार के ही उन्मूलन से भी काम न चलेगा क्योंकि कोई न कोई ऐसा सामन्तसमूह बराबर बना रहेगा जो विजेता के विरुद्ध होने वाली क्रान्तियों का नेतृत्व करने के लिये तैयार रहेगा। आप न तो उन सामन्तो को मरवा सकते हैं और न उनको संतुष्ट ही कर सक-ते हैं और ऐसी अवस्था में जहाँ पहला विद्रोह हुआ, विजित प्रदेश आपके हाथ से निकल जायगा।

अब आप यदि विचार करेंगे तो आपकी समझ में आ जायगा कि डेरियस के शासन की क्या प्रकृति थी। डेरियस का शासन टर्क-साम्राज्य की भाँति था और इसलिए सिकन्दर को पहली ही बार में आक्रमण करके सपूर्ण राजतन्त्र को उलट देना पड़ा। डेरियस की मृत्यु और पराजय के उपरान्त उसका राज्य सिकन्दर के उत्तराधिकारियों के लिये सुरक्षित हो गया। और यदि सिकन्दर के उत्तराधिकारी परस्पर संघटित रहे होते तो वे शान्तिकाल में भी उस राज्य का उपभोग करते रह सकते थे क्योंकि बाद में जो भी कठिनाइयाँ उत्पन्न हुई वे सब उन्हीं की अपनी पैदा की हुई थीं। लेकिन फ्रांस जैसे किसी राज्य को जीत कर उसे आसानी से कब्जे में बनाये रखना सर्वथा असंभव है। फ्रांस, स्पेन और यूनान निरन्तर रोमनों के विरुद्ध लगातार विद्रोह करते रहे क्योंकि उक्त राज्यों में छोटी-छोटी बहुत-सी रियासतें थीं। यही कारण है कि रोमनों

को उक्त राज्यों पर हुई विजयों के स्थायित्व पर उन रियासतों के रहते कभी भी विश्वास न हुआ। लेकिन जब वे समाप्त हो गयीं तो रोमन उक्त राज्यों के अविवादास्पद एवं असंदिग्ध स्वामी बन बैठे। जब रोमनों का पतन हुआ और उनमें आपस में ही फूट पड़ गयी तो प्रत्येक रोमन अधिकारी जो जिस प्रदेश में था अपने यहाँ के शासितों की मदद पर पूर्णतः विश्वास कर सका और उसे वह मदद मिली भी क्योंकि प्राचीन शासक-वंशों की समाप्ति के बाद रोमन ही एकमात्र ऐसे लोग थे जिनको जनता शासक मानती थी। इन सब बातों को दृष्टि में रखते हुए जिस सुविधा के साथ सिकन्दर एशिया पर कब्जा बनाये रख सका, उससे किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिए। इसी प्रकार पाइरस (Pyrrhus) आदि जैसे प्रदेशों पर कब्जा रखने में जो असुविधा अन्य लोगों को हुई उस पर भी किसी को विस्मय न होना चाहिए। इसमें विजेता की योग्यता-अयोग्यता का प्रश्न उतना नहीं है जितना परिस्थितियों की असमानता का।

सारांश

जिन राज्यों में केवल नरेश ही शासन करते हैं, उनके नरेशों के हाथ में बड़ी शक्ति रहती है और उन्हें परास्त करना बड़ा कठिन होता है। लेकिन एक बार परास्त करने के बाद और उनके वंश का उन्मूलन कर देने के बाद कोई खतरा नहीं रहता। डेरियस के संबंध में यही बात लागू होती है। सिकन्दर ने एक बार जब उसे हरा दिया तो फिर सिकन्दर के उत्तराधिकारियों के विरुद्ध किसी ने विद्रोह नहीं किया। लेकिन जिन राज्यों में सामन्तों की सहायता से शासन किया जाता है उनमें आरंभिक अवस्था में तो विजय प्राप्त हो जाती है लेकिन बाद में असहनीय कठिनाइयाँ पैर टिकना मुश्किल कर देती हैं।

अध्याय ५

उन नगरों या राज्यों की शासन करने की रीति जो विदित होने के पूर्व अपनी विधियों (Laws) के शासनान्तर्गत ही रहते थे।

जब किसी ऐसे राज्य पर कब्जा करके शासन करना पड़े, जो स्वतंत्र रहा हो और जिसका शासन उस राज्य द्वारा बनायी गयी विधियों के अन्तर्गत ही होता रहा हो तो उस पर राज्य करने के तीन तरीके हैं। पहला तो यह कि उस राज्य को लूटपाट कर सम्पत्तिहीन बना दे; दूसरे वहाँ जाकर स्वयं रहने लगे; तीसरा यह कि उन राज्यों के निवासियों को उनकी अपनी ही विधियो के अन्तर्गत शासित होने दे, उनसे नजराना ले ले और देश में कुछ ऐसे व्यक्तियों की सरकार या शासनतंत्र स्थापित कर दे जो सदैव आपके प्रति मैत्री का भाव प्रकट करते रहें। क्योंकि यह शासनतंत्र नरेश द्वारा बनाया गया होगा और यह जानता समझता रहेगा कि वह बिना सम्बन्धित नरेश की कृपा, मैत्री और संरक्षण के जीवित नहीं रह सकता, इसलिए वह हरचन्द यही कोशिश करेगा कि नरेश और उसके सम्बन्ध किसी भी प्रकार बिगड़ने न पायें। यही नहीं, किसी भी स्वतंत्रताभ्यासी राज्य को कब्जे में रखने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि उसका शासन कुछ ऐसे व्यक्तियों के हाथों में सौंप दिया जाय जो वहीं के नागरिक हों और विजेता नरेश के प्रति मैत्री भाव रखते हों।

स्पार्टा और रोमनों का उदाहरण हमारे सामने है। स्पार्टावासियों ने एथेन्स और थेबीज को जीता और वहाँ कुछ व्यक्तियों के एक वर्ग का शासनतंत्र स्थापित कर दिया। लेकिन शीघ्र ही ये दोनों नगरराज्य स्पार्टा-वासियों के हाथ से निकल गये। रोमनों ने केपुआ (Capua)

कार्थेज (Carthage) और न्यूमेण्टिया (Numantia) को न केवल युद्ध में ही परास्त कर दिया बल्कि खूब अच्छी तरह लूटा भी। इसका नतीजा यह हुआ कि उक्त नगर-राज्य रोमनों के ही हाथ में रह गये। रोमनों ने भी पहले यही चाहा था कि स्पार्टावासियों की भाँति वे भी यूनान के नगर-राज्यों को इस प्रकार का स्वायत्त शासन प्रदान कर दें जिससे वे अपनी विधियों के अनुसार ही अपना शासन करते रहें लेकिन वे इसमें सफल नहीं हुए। नतीजा यह हुआ कि उन्हें कई प्रान्तों के अनेक नगरों को तहस-नहस कर डालना पड़ा जिससे शेष भाग पर उनका कब्जा बना रह सके। सच तो यह है कि नाश कर डालने के अतिरिक्त रोमनों के पास अन्य कोई चारा ही नहीं था जिससे वे यूनान की रक्षा रोमन साम्राज्य के एक अंग के रूप में कर पाते। जो भी किसी स्वतन्त्र नगर राज्य का शासक होने के बाद उसको नष्ट-भ्रष्ट नहीं कर डालता उसे समझ लेना चाहिये कि उक्त राज्य अवश्य ही उसका नाश कर डालेगा क्योंकि उक्त राज्य के निवासी स्वतंत्रता और प्राचीन परम्पराओं के नाम पर मौका मिलते ही विद्रोह कर बैठेंगे। स्वतंत्रता की भावना और प्राचीन परम्पराओं की स्मृति का अन्त न तो अधिक समय के बीत जाने से होता है और न इससे कि नये शासन से उन्हें कितने लाभ हुए हैं। कोई चाहे कुछ भी करे और उस राज्य के निवासियों की भलाई के लिए चाहे जितना करे, यदि विजेता शासक वहाँ के निवासियों के समूह और बस्तियों को छिन्न-भिन्न कर के नष्ट-भ्रष्ट नहीं कर देता तो वे अतीत की उस कीर्ति और उन परम्पराओं को भूल ही नहीं सकते और जैसे ही कोई संकट उपस्थित होगा उनको विद्रोह के लिए कोई भी भड़का सकता है। फ्लोरेन्सवासियों ने पीसा को इतने दिन दासता में रखा लेकिन उक्त नीति का पालन नहीं किया जिसका नतीजा यह हुआ कि पीसा ने मौका पाते ही विद्रोह करके अपनी छिनी स्वतंत्रता वापस प्राप्त कर ली। लेकिन जब कोई नगर या प्रान्त किसी नरेश के अन्तर्गत रहने का अभ्यासी हो जाता है और पराजित राज्य

के नरेश का वंश समाप्त हो जाता है तो एक ओर तो उस राज्य के निवासी आज्ञापालन के अभ्यस्त हो जाते हैं और दूसरी ओर उनके पुराने शासक के किसी वंशज के न होने तथा अपने में से ही किसी एक को शासक चुनने की एकता न होने के और यह न जानने के कारण कि स्वतंत्र होकर किस प्रकार रहा जाता है, विजेता उन पर आसानी से अपना कब्जा बनाये रख सकता है। लेकिन गणतंत्रों में अपेक्षाकृत अधिक जीवन होता है, अधिक घृणा की भावना होती है और उनमें प्रतिहिंसा की भावना भी अधिक होती है। ऐसे गणतंत्र प्राचीन स्वतंत्रता की स्मृति को भुला नहीं पाते और भुला भी नहीं सकते। अतः उन पर आधिपत्य बनाये रखने का सुनिश्चित साधन यह है कि या तो उनको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया जाय अथवा वहाँ विजेता नरेश स्वयं जा कर रहने लगे।

सारांश

स्वतंत्र राज्यों को अधिकार में बनाये रखने की तीन रीतियाँ हैं---पहली उनको लूट लेना, दूसरी विजित प्रदेश में राजधानी बना लेना और तीसरी विजित क्षेत्र को उसकी अपनी विधियों के शासनान्तर्गत बने रहने देना। जो नरेश तीसरी रीति से अपना आधिपत्य नवविजित राज्य पर बनाये रखने की कोशिश करता है, वह उसे खो देता है। इसलिए स्वतंत्र गणतंत्रों को कब्जे में बनाये रखने की पहली या दूसरी रीति ही सर्वोत्तम है।

———

अध्याय ६

अपने बाहुबल और योग्यता से प्राप्त किये गये नये राज्यों के संबंध में

नये उपनिवेशों या राज्यों के संबंध में बात करते हुए यदि मैं बड़े-बड़े नरेशों तथा राज्यों के उदाहरण दूँ तो इसमें किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिये क्योंकि लोग दूसरों के पदचिन्हों का ही अनुसरण करते हैं और अपने कार्यों में दूसरे की ही नकल करते हैं। हमेशा दूसरों का पूरी तरह अनुकरण न कर सकने के कारण, आदर्श को पूरी तरह ढालने की अक्षमता की वजह से, हर बुद्धिमान व्यक्ति हमेशा सामान्य व्यक्तियों के बजाय महापुरुषों के चरित्रों को आदर्श बनाता है जिससे यदि वह उस महापुरुष का पूरी तरह अनुकरण न कर सके तो भी आदर्श की महानता का कुछ अंश उसके चरित्र में आ जाय। वे व्यक्ति एक बुद्धिमान धनुर्धर की भाँति जब यह देखते हैं कि उनका लक्ष्य अत्यन्त दूर है और उनका बाण सीधे मारे जाने पर इच्छित लक्ष्य को न वेध सकेगा तो वे बाण का लक्ष्य ऊँचाई की अनुपात से न छोड़कर ऊपर की तरफ लक्ष्य से काफी ऊँचा छोड़ते हैं। उस समय उनका उद्देश्य यह नहीं होता कि बाण उस ऊँचाई तक पहुँचे जिसकी तरफ इंगित करके उसे छोड़ा गया है वरन् ऊँचे जाकर उस लक्ष्य पर गिरे जिसकी सिद्धि उन्हें अभीष्ट है।

तो मेरा कहना यह है कि नये राज्यों में जहाँ का शासन-भार किसी नये नरेश के कंधों पर आ पड़ा हो; उसे सँभालना उस नरेश की योग्यता के अनुपात ही में न्यूनाधिक सरल या कठिन होता है जो किसी नये प्रदेश पर अपना आधिपत्य स्थापित करता है। और चूँकि किसी

सामान्य व्यक्ति के नरेश हो जाने का अर्थ यह पहले ही मान लेना होता है कि या तो वह व्यक्ति बहुत ही योग्य है अथवा उसका भाग्य बड़ा प्रबल है—इसलिए दोनों ही दशाओं में उसकी कठिनाइयाँ एक सीमा तक कम हो जायँगी। फिर भी यह देखा गया है कि जिन लोगों का भाग्य बहुत बलवान नहीं होता वे भी राज्य की रक्षा अत्यन्त उत्तम रीति से कर लेते हैं। इस कार्य में और भी सहायता मिल सकती है, यदि नरेश अपने ही प्रदेश में निवास कर लेने का निश्चय कर ले और उस प्रदेश के अतिरिक्त उसका अन्यत्र कोई राज्य न हो। लेकिन यदि हम उन नरेशों का लें जिन्होंने अपनी गद्दियों को अपनी योग्यता के बलबूते पर प्राप्त किया है, भाग्य के बल पर नहीं, तो उनमें मैं मोजेज (Moses), साइरस (Cyrus), रोमुलस (Romulus) थीसस (Thesus) आदि जैसे लोगों के नाम लूँगा। हालाँकि बाद के तीन नरेशों की परम्परा में मोजेज का नाम पहले नहीं लिया जाना चाहिये क्योंकि उसने केवल उस आदेश की पूर्ति की थी जो उसे ईश्वर से मिला था, फिर भी वह प्रशंसा योग्य है क्योंकि वह ईश्वर से आदेश प्राप्त कर सका। किन्तु जहाँ तक साइरस तथा अन्य लोगों का संबंध है, जिन्होंने या तो राज्यों को जीता या नवीन साम्राज्यों की नींव रखी, यदि हम उनके चरित्रों को देखें तो उनके कार्यों में हम बहुत सी प्रशंसा-योग्य बातें पायेंगे और यदि उनके विशिष्ट कार्यों और पद्धतियों की परीक्षा की जाय तो वे मोजेज के कार्यों तथा व्यवहारों से बहुत अधिक भिन्न लगेंगे, हालाँकि मोजेज को ईश्वर जैसा स्वामी प्राप्त था। यदि हम इन लोगों की जीवनियों का अवलोकन करें तो ज्ञात होगा कि वे अपनी महानता के लिए अपने किसी भाग्य-नक्षत्र के ऋणी नहीं थे वरन् उन अवसरों के ऋणी थे जिनकी वजह से वे हर वस्तु को अपनी इच्छानुसार स्वरूप दे सके और यदि उन्हें वह अवसर न मिला होता तो उनकी शक्तियाँ व्यर्थ जातीं और बिना शक्ति वाले व्यक्ति को यदि वे अवसर मिलते तो वे अवसर व्यर्थ जाते।

अतः यह आवश्यक था कि मोजेज इजरायल के लोगों को मिश्र में

दासता के पाश में बँधा पाता और उन्हे मिश्रवासियों द्वारा दबाये जाने की बात कहता जिससे वे सब दासता से मुक्ति पाने के लिए मोजेज के अनुयायी होने के लिए तैयार हो जाते। यह भी आवश्यक था कि रोमुलस एलबा (Alba) में न रह पाता और जन्म के बाद ही किसी एकांत स्थल में छोड़ दिया जाता जिससे वह रोम का राजा और रोमन राष्ट्र का संस्थापक बनता। यह भी जरूरी था कि साइरस मेडीज (Medes) के साम्राज्य से फारसवासियों को असंतुष्ट पाता और मेडीज दीर्घकाल की शांति के कारण निर्बल और पुरुषोचित वीरता के कार्यों को करने योग्य न रह गया होता। थीसस अपनी योग्यता न दिखला पाता यदि एथेन्सवासी विघटित न रहे होते। अतएव, उक्त अवसरों ने उन व्यक्तियों को ऐसे मौके दिये जिनसे वे अपने गुणों द्वारा पूरा-पूरा लाभ उठा सकते। अपने देश की गौरववृद्धि कर पाते और उसकी श्री-समृद्धि बढ़ा पाते।

जो अपनी योग्यता के बलबूते पर नये राज्य स्थापित कर उनके स्वामी बनते हैं, जैसा कि उक्त नरेशों के संबंध में हुआ है, उन्हें आरम्भ में तो कठिनाई होती है लेकिन वे इसके बाद राज्य की रक्षा बड़ी आसानी से कर लेते हैं। इनको उपनिवेशों या राज्यों को प्राप्त करने में जो कठिनाइयाँ उत्पन्न हुई होंगी वे मुख्यत: उन नये नियमों और व्यवस्थाओं के लागू करने की वजह से हुई होंगी जिनके बिना राज्य का सुरक्षित रहना असंभव था। यह भली-भाँति समझ लेना चाहिये कि नयी व्यवस्थाओं को लागू करना जितना कठिन होता है, उनकी सफलता जितनी संदिग्ध होती है और उनको व्यवहार में लाना जितना भयावह होता है उतना अन्य कोई कार्य नहीं होता। व्यक्ति सुधार करता है उससे वे सब व्यक्ति शत्रु होते हैं जो प्राचीन व्यवस्था से लाभ उठा रहे होते हैं। इस शत्रुता का आंशिक कारण प्रतिद्वन्द्वियों का भय भी होता है जिनके अनुकूल विधियाँ बन गयी होती हैं और आंशिक कारण मानव जाति का नयी व्यवस्थाओं के प्रति अविश्वास का भाव होता है। यह सामान्य मानव स्वभाव होता है कि वह किसी भी नई चीज में उस समय

तक विश्वास नहीं करता जब तक उसका लाभदायी अनुभव उसे नहीं हो जाता। अतः हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि एक ओर तो सुधारक पर प्राचीन व्यवस्था के हिमायती सुधारक की आलोचना और निंदा करने के हर अवसर का लाभ उठा कर उस पर आक्रमण करते हैं और दूसरी ओर अन्य लोग सुधारक का आधे चित्त से समर्थन करते हैं क्योंकि उन्हें नयी योजनाओं और व्यवस्था की सफलता पर स्वयं विश्वास नहीं होता। इन दोनों के बीच सुधारक की स्थिति सचमुच बहुत ही खतरों से भरी होती है। फिर भी इस प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार करने के लिये, यह जानने के लिये कि ये नयी व्यवस्थाएँ स्वतंत्र हैं या नहीं, या वे अपनी सफलता के लिए दूसरों पर निर्भर करती हैं, अर्थात् उन व्यवस्थाओं को व्यवहार में लागू करने के लिए दूसरों की खुशामद करनी पड़ती है या उनको वे बातें मानने के लिए लाचार करना पड़ता है। प्रथम अवस्था में स्वभावतः उनका फल बुरा होता है और उनसे कोई लाभ नहीं होता। लेकिन जब कोई नयी व्यवस्था आत्मनिर्भर होती है और उनको लागू करने वाला बल प्रयोग कर सकता है तो वे शायद ही कभी असफल होती हैं। यही कारण है कि समस्त सशस्त्र पैगम्बरों को सफलता मिली और शस्त्रहीन पैगम्बर असफल रहे; क्योंकि मनुष्यों के स्वभाव के संबंध में ऊपर जो बातें कही गयी हैं उनके अतिरिक्त एक बात यह भी है कि किसी भी व्यक्ति को एक वस्तु के लिए आग्रह करके अस्थायी रूप से राजी किया जा सकता है लेकिन उस रजामन्दी को बनाये रखना कठिन होता है। इसलिये कुछ ऐसी व्यवस्था करना जरूरी होता है जिससे यदि लोग एक बार राजी हो जाने के बाद पुनः वह बात न मानें तो उन्हें बल प्रयोग द्वारा इस बात को मानने के लिये विवश किया जा सके। मोजेज, साइरस, रोमुलस और थीसस आदि यदि निःशस्त्र होते तो शायद अपने संविधानों को कभी भी लागू न करवा पाते। असफलता का एक उदाहरण समकालीन घटनाओं में से ही दिया जा सकता है। फ्रा जीरोलामो सेवोनारोला (Fra Girolamo Savonarola)

अपने नये नियमों को जनता में उसके प्रति अविश्वास होते ही पालन न करा सका और उसके पास ऐसी कोई शक्ति न थी जिसके प्रयोग द्वारा वह अविश्वासियों में उन नियमों के प्रति बिश्वास करा सकता। ऐसे व्यक्तियों को अपना मार्ग बनाने में बड़ी दिक्कतो का सामना करना पड़ता है। उनको सभी खतरों का खुले में सामना करके अपनी योग्यता के बल से उन खतरों पर विजय प्राप्त करनी पड़ती है। लेकिन जब वे उन खतरों पर एक बार विजय प्राप्त कर लेते हैं तो फिर उनका सम्मान होने लगता है। एक बार ईर्ष्यालु व्यक्तियों को नीचा दिखलाने के उपरान्त वे शक्तिशाली और सुरक्षित रहते हैं और सम्मान तथा सुख का जीवन व्यतीत करते हैं।

मैंने ऊपर बड़े-बड़े आदर्शों की चर्चा की है। अब अपेक्षाकृत कुछ छोटे आदर्शों की भी चर्चा कर दी जाय। लेकिन इन से भी उतना ही लाभ उठाया जा सकता है जितना बड़े आदर्शों से। ऐसे व्यक्तियों में सबसे पहला नाम हीरो ऑफ सायराक्यूज (Hero of Syracuse) का आता है। वह एक सामान्य व्यक्ति था लेकिन अपनी योग्यता के बलबूते पर सायराक्यूज का नरेश बन बैठा। उसे अपने भाग्य से कोई सहायता न मिली। केवल ऐसी परिस्थितियाँ मिलती गयीं जिनका वह लगातार फायदा उठाता चला गया। सायराक्यूजवासी दलित और उत्पीड़ित थे। उन्होंने उसे अपना नेता चुन लिया। नेता चुन लिये जाने के बाद वह अपने बाहुबल से ही सायराक्यूज का राजा बन बैठा। जब वह सामान्य व्यक्ति था तभी उसके गुणों के संबंध में यह कहा जाता था कि वह राजा बनने के लिए ही उत्पन्न हुआ है। उसमें किसी भी ऐसे गुण का अभाव नहीं था जो राजा के लिये आवश्यक हो और उसमें न हो। उसने पुराने ढग की सेनाओं को समाप्त कर दिया और नई सेना बनाई। पुरानी मित्रताओं को छोड़ दिया और नये लोगों से मैत्री संबंध स्थापित किये। चूँकि उसने अपने मनोनुकूल मित्र तथा सैनिक चुने थे इसलिये उनके आधार पर उसने अपने राज्य की रचना

की। इसमें संदेह नहीं कि उच्च आसन तक पहुँचने में उसे बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा लेकिन जब वह उच्चतम स्थिति तक पहुँच गया तो उसे उसी स्थिति में बने रहने में बहुत ही कम कठिनाई अनुभव हुई।

सारांश

जो नरेश अपने बाहुबल तथा योग्यता से राज्य प्राप्त करते हैं उन्हें आरंभ में तो अवश्य ही बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है लेकिन बाद में वे अपनी अर्जित सम्पत्ति की रक्षा अत्यन्त सरलतापूर्वक कर लेते हैं। लेकिन विजय प्राप्त करने का और विजि.. क्षेत्रों को कब्जे में बनाये रखने का सबसे अच्छा तरीका बल-प्रयोग है। बल का प्रयोग करने से नरेश को हिचकना नहीं चाहिए।

अध्याय ७

अन्य व्यक्तियों के बल या भाग्य से प्राप्त नये राज्यों के संबंध में

जो लोग साधारण नागरिक की स्थिति से केवल प्रारब्धवश नरेश हो जाते हैं उनको अपनी उन्नति में स्वल्प कठिनाइयाँ होती हैं लेकिन अपनी स्थिति को बनाये रखने में बड़ी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। प्रारंभ में तो वे कठिनाइयों को निर्बाध गति से लाँघते चले जाते हैं लेकिन एक बार जहाँ वे उच्चासन पर पहुँचे कि सारी मुसीबतें सामूहिक रूप से उनके सिर पर आ टूटती हैं। ऐसे लोग वे होते हैं जिनको अपने धन की वजह से राज्य मिल जाता है या कोई कृपा कर उन्हें किसी प्रान्त या राज्य का एक भाग इनाम के तौर पर दे देता है, जैसा यूनान में, आयोनिया के नगरों में हेलेसपॉण्ट में कई लोगों के साथ हुआ। इनको डेरियस ने अपनी रक्षा के लिए और यशलाभ के लिए नरेश बना दिया था। ऐसे भी कई सम्राट मिलते हैं जो पहले सामान्य नागरिक थे लेकिन बाद में सेना को उन्होंने धन के बल से खरीद लिया और सत्ता प्राप्त कर ली। इस प्रकार के लोगों का उत्थान केवल उन लोगों की सद्भावना और भाग्य पर निर्भर करता है जो उनकी ऊपर उठने में सहायता करते हैं। लेकिन दूसरों की सद्भावना और भाग्य दोनों ही बड़े अस्थिर और चंचल होते हैं। ऐसे लोग न तो यह जानते हैं और न जान ही सकते हैं, कि वे किस प्रकार अपनी स्थिति को सुस्थिर बनायें क्योंकि जो व्यक्ति अत्यन्त ही प्रतिभासम्पन्न न होगा और सदैव सामान्य नागरिक की भाँति ही जिसने जीवन बिताया होगा—वह यह जान ही न पायेगा कि आदेश किस प्रकार दिये जायँ। वह उस

ऊँची स्थिति में भी न बना रह सकेगा क्योंकि ऐसी कोई शक्ति उसके साथ न होगी जो उससे मैत्री का भाव रखती हो या उसके प्रति अत्यन्त आस्था रखती हो। इसके अतिरिक्त जो राज्य त्वरा में स्थापित किये जाते हैं, उनकी जड़ें अन्य जल्दी पैदा होने और बढ़नेवाली चीजों की तरह, गहरी नहीं हो पातीं और न विस्तृत अंचल में ही फैल पाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जहाँ तूफान का पहला झोंका आया वे उखड़ कर गिर जाते हैं। हाँ, ऐसे राज्यों की अवश्य तूफानों में भी रक्षा हो जाती है, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, जिनके कर्णधार सामान्य स्थिति के व्यक्ति रहते हुए भी अत्यन्त प्रतिभासम्पन्न होते हैं। ये प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति तत्काल ही उन प्रदेशों की रक्षा के लिए भी ऐसी कार्रवाइयाँ कर लेते हैं जो उनके पास खुदा की ओर से छप्पर फाड़कर पहुँच जाते हैं। वे व्यक्ति नरेश होने के बाद ऐसे मौलिक प्रबंध करते हैं जो अन्य लोग नरेश होने के पहले करते हैं।

योग्यता या भाग्यवशात् नरेश हो जाने के जो दो उपाय हैं उनके मैं दो उदाहरण दूँगा। ये उदाहरण हमारे ही समय के हैं। एक तो इनमें से है फ्रांसेस्को स्फोरजा का और दूसरा सीजर बोर्जिया का। फ्रान्सेस्को उचित साधनों और अपनी योग्यता के कारण अत्यन्त सामान्य नागरिक से मिलन का ड्यूक हो गया और जो कुछ उसने हजारों कठिनाइयों, विघ्नों और बाधाओं को जीत कर प्राप्त किया उसकी रक्षा करने में उसे बहुत कम कष्ट हुआ। इसके विपरीत सीजर बोर्जिया ने जो वेलेण्टाइन के ड्यूक के नाम से प्रसिद्ध है, राजगद्दी अपने पिता के प्रभाव से पायी। इसका परिणाम यह हुआ कि जैसे ही उसके पिता का प्रभाव समाप्त हुआ, वैसे ही उसका राजपाट भी विलुप्त हो गया, हालाँकि उसने दूसरों की कृपा और शस्त्र-बल से प्राप्त अपने राज्य की रक्षा के लिये वे सब उपाय किये थे जो किसी भी बुद्धिमान व्यक्ति को करने चाहिए थे। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, अत्यन्त बुद्धिमान व्यक्ति जो काम राज्य स्थापित कर लेने के पूर्व नहीं कर पाते वे उसे

अपनी नींव मजबूत कर लेने के लिये बाद में भी कर सकते हैं, हालाँकि वे ऐसा करने में कुछ खतरे जरूर उठाते हैं। तब अगर कोई ड्यूक की पद्धति पर विचार करे तो वह इस परिणाम पर पहुँचेगा कि उसने भविष्य में अपने राज्य को सुस्थिर आधार प्रदान करने के लिए कितना परिश्रम किया था। इस स्थल पर मैं उन पद्धतियों की परीक्षा करना अप्रासंगिक नहीं समझता। किसी भी नये नरेश के लिये इससे अच्छी कोई बात नहीं हो सकती कि वह उन कार्यों को आदर्श मानकर तदनुसार आगे बढ़े क्योंकि यदि ड्यूक के कुछ प्रयत्न असफल रहे तो इसका कारण यह न था कि उसके प्रयत्नों में कोई त्रुटि या अशुद्धि थी। यदि ध्यान से देखा जाय तो उसमें भाग्य का दोष ही अधिक प्रतीत होगा।

ड्यूक के राजविस्तार की योजना के आगे बढ़ाने में उसके पुत्र एलेक्जेण्डर षष्ठम (Alexander VI) बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। पहली बात तो यह थी कि वह अपने आपको ऐसे किसी भी राज्य का शासक होने में अयोग्य पाने लगा जो किसी गिरजा के अन्तर्गत न हो। वह जानता था कि मिलन के ड्यूक और वेनिशियन इस बात के लिए राजी न होंगे कि वह पोप के नगरों पर कब्जा कर ले। इसका कारण यह था कि फेञ्जा (Faenza) और रिमनो (Rimini) पहले से ही वेनिशियनों के संरक्षण के अंतर्गत थे। इसके अलावा उसने यह भी देखा कि इटली की वे सेनायें जो उसकी सेवा कर सकती थीं ऐसे लोगों के हाथों में थीं जो पोप की महानता से घबड़ाती थीं। इसलिये वह उनकी सहायता पर निर्भर नहीं कर सकता था। ये सारी फौजें ओर्सिनी (Orsini) और कोलोना (Colonna) तथा उनके साथियों की कमान में थीं। अतः उसके लिए यह आवश्यक हो गया कि वह तत्कालीन परिस्थितियों तथा व्यवस्था में इस प्रकार हस्तक्षेप करता जिससे इटली का कम से कम एक भाग सुरक्षित रूप से उसके कब्जे में आ जाता। ऐसा करना उसके लिए सरल भी था। वेनिशियनों ने अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये फ्रांसीसियों को इटली

आने का निमंत्रण दे दिया था जिसका उसने तनिक भी विरोध नहीं किया वरन् राजा लुई (King Louis) के प्रथम विवाह संबंध का विच्छेद करा के फ्रांसीसियों को अपनी ओर मिला लिया। इस प्रकार राजा लुई वेनिशियनों की सहायता और ऐलेक्जेण्डर की सहमति से इटली में आ गया। वह अभी मिलन तक पहुँचा भी न था कि पोप ने उससे सेनायें प्राप्त करके रोमना (Romagna) पर कब्जा कर लिया। जब ड्यूक ने रोमना पर कब्जा कर लिया और कोलोना (Colonna) को हरा दिया तो ड्यूक के सामने. रोमना को अपने कब्जे में बनाये रखने तथा आगे बढ़ने में दो विघ्नें दिखलायी पड़ीं : पहलो विघ्न तो सेनाओं सम्बन्धी थी और दूसरी थी फ्रांस की इच्छा सम्बन्धी। पोप को यह विश्वास न था कि उसकी सेना उसकी आज्ञाओं के अनुसार कार्य करेगी। इसके अलावा उसे भय था कि कहीं ओर्सिनी की सैनिक शक्ति, जिसकी बदौलत उसने कोलोना को हराया था उसे न केवल धोखा ही दिया जाय वरन् जो कुछ उसने जीता है उसमें से भी हिस्सा न माँगने लगे। पोप को यह भी भय था कि कहीं राजा लुई भी ऐसा न करे। पोप यह देख चुका था कि फेञ्जा पर कब्जा कर लेने के बाद जब बोलना (Bologna) पर आक्रमण किया गया तो ओर्सिनी की सेनायें कितनी पीछे रह गयी थीं। जहाँ राजा लुई की इच्छा का सम्बन्ध है, उसका भी संकेत उसके इस कृत्य से मिल गया था कि उसने अरबिनो के ड्यूक (Duke of Urbino) के प्रदेश पर कब्जा कर लेने के बाद किस प्रकार टस्कनी पर आक्रमण करने से उसे रोक लिया था। इस पर ड्यूक ने निश्चय कर लिया कि वह दूसरों के धन और शस्त्रबल पर निर्भर नहीं करेगा। इसके बाद ड्यूक ने सबसे पहला काम यह किया कि ओर्सिनी और कोलोना के दलों को रोम में शक्तिहीन कर दिया। उसने उक्त दोनों व्यक्तियों के दलों के अनुयायियों को बड़ी-बड़ी रकमें दीं और उन्हें अपनी सेना में तथा कार्यालयों में उनकी योग्यता तथा पदों के अनुसार ऊँची जगहों पर

नियुक्त कर दिया जिससे कुछ ही महीनों के अन्दर उनकी अपने दलों के प्रति रुचि समाप्त हो जाय और वे एकाग्रतापूर्वक ड्यूक का ही हित-चिन्तन करने लगें। इसके उपरान्त ड्यूक ऐसे मौके की प्रतीक्षा करने लगा जिसके आते ही वह ओर्सिनी के दल के सरदार को नीचा दिखला कर पराजित कर सके और उनका दमन कर सके। कोलोना-परिवार का उन्मूलन तो वह पहले ही कर चुका था। अतः, जब मौका आया तो ड्यूक ने उसका पूरा लाभ उठाया। ड्यूक को इस प्रकार अपनी शक्ति बढ़ाते हुए देख ओर्सिनी को ड्यूक और गिरजा की बढ़ती हुई महत्ता से आशका होने लगी और उसे प्रतीत हुआ कि ड्यूक का बलवान होना उसके नाश का द्योतक है। फलतः उसने पेरुजिनो (Perugino) के मेजिओन (Magione) नाम के स्थान पर एक सम्मेलन आयोजित किया। तभी अरबिनो के ड्यूक ने विद्रोह कर दिया और रोमना में भी उपद्रव होने लगे किन्तु फ्रांसीसियों की सहायता से उन सब को ड्यूक ने दबा दिया। इस सबसे ड्यूक की प्रतिष्ठा पुनः ज्यो की त्यो हो गयी। परन्तु अब ड्यूक ने न तो फ्रांस का विश्वास किया और न विदेशी फौजों का, जिससे उनकी मित्रता की आवश्यकता न रह गयी तथा निश्चय कर लिया कि वह यथापूर्व स्थिति बनाये रखेगा। अपने लक्ष्यों का परित्याग ड्यूक ने इस प्रकार किया कि ओर्सिनी ने ड्यूक के साथ संधि कर ली। ओर्सिनी का प्रतिनिधित्व सीन्योर पालो (Signor Paulo) कर रहे थे। सीन्योर पालों के सभी संदेहों को ड्यूक ने अत्यन्त शिष्टतापूर्वक दूर कर दिया और उनको इतने वस्त्र, इतना धन, घोड़े आदि दिये कि वे सिनगेगालिया (Sinigaglia) चले आये जहाँ ड्यूक ने उनको पकड़ लिया। इस प्रकार ड्यूक ने अपने विरोधी दलों के नेताओं का दमन कर डाला और उनके अनुयायियों को अपना मित्र बना कर अपने राज्य के लिए बड़ी अच्छी नींव डाल ली। ड्यूक के कब्जे में अब अरबिनों और रोमनो के प्रदेश भली-भाँति आ गये थे और वहाँ के निवासी भी ड्यूक के शासन के फायदों को अनुभव करने लगे थे।

और इसके बाद ड्यूक के कार्यों का यह अंश भी उल्लेख योग्य है; इसलिए मैं इसकी चर्चा करना भी नहीं भूलूँगा। जब ड्यूक ने रोमना पर कब्जा किया तो सारा का सारा प्रान्त डकैतियों, लूटमार एवं अव्यवस्था का केन्द्रस्थल था। ड्यूक के पूर्व के रोमना के सारे शासक अत्यन्त निर्बल थे जिन्होंने प्रजा का शासन करने के बजाय उसे लूटकर नंगा कर देना ही अपना कर्तव्य समझा था। इसका फल हुआ था कि लोग संगठित होने के बजाय विघटित अधिक हो गये थे। इन सब बातो को ड्यूक ने भली भाँति समझ लिया और निर्णय किया कि रोमना में ऐसा शासन स्थापित किया जाय जो सब तरह से अच्छा हो और लोग उसकी आज्ञाओं का पालन करने लगें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ड्यूक ने मेसर रेमिरो डी ओरको (Messer Remirro de Orco) को नियुक्त किया। यह व्यक्ति अत्यन्त क्रूर होने के साथ ही बहुत योग्य भी था। ओरको को ड्यूक ने रोमना के शासन का पूर्ण उत्तरदायित्व सौंप दिया। इस व्यक्ति ने थोड़े से ही समय में सारे प्रदेश को व्यवस्थित और सुसंघठित कर दिया। यह हो जाने के बाद एक ही व्यक्ति के हाथ में बहुत अधिक शक्ति केन्द्रित कर देना उचित न समझ कर वहाँ एक न्यायालय स्थापित कर दिया और एक अत्यन्त उत्तम व्यक्ति को उसका अध्यक्ष (न्यायाधीश) बना दिया। नगर के व्यक्तियों ने इस न्यायालय में अपने एडवोकेट नियुक्त किये। ऐसा करना इसलिए भी आवश्यक था क्योंकि एक व्यक्ति का शासन अप्रिय भी हो सकता है। और चूँकि ड्यूक यह जानता था कि ओरको की सख्ती से कहीं-कहीं उसके प्रति घृणा का भाव पैदा होने लगा है, इसलिए उसने यह प्रकट करने का निश्चय किया कि यदि कहीं कुछ लोगों के साथ कठोरता का व्यवहार भी हुआ है तो वह उसके आदेशों के अन्तर्गत नहीं हुआ वरन् उसके एक अमात्य के क्रूर स्वभाव के कारण हुआ है। और जैसे ही उसे अवसर मिला उसने ओरको के दो टुकड़े करवा के उसके शव को एक दिन तड़के ही सेसना (Cesena) के एक

सार्वजनिक स्थान में खुला रखवा दिया। श्रोरको के कटे हुए शरीर के बगल में ही एक काठ का टुकड़ा था जिस पर रक्त में सराबोर चाकू रखा हुआ था। इस दृश्य की भयंकरता से लोगों में आश्चर्य भी फैला और उन्हें सन्तोष भी हुआ। अस्तु।

अब ड्यूक पर्याप्त शक्तिशाली हो गया था। इसके साथ ही उसके सामने जो खतरे मुँह बाये खड़े थे—वे भी कम हो गये। उसने पास-पड़ोस की ऐसी सारी सैनिक-शक्तियों का दमन कर डाला था जिनसे उसे क्षति पहुँचने की सभावना थी। इस प्रकार अपने आपको सुरक्षित बनाकर ड्यूक ने अब फ्रांस को खुश करने की तरफ ध्यान दिया। ऐसा करना आवश्यक था क्योंकि ऐसा न किया जाता तो संभव था कि उसके राज्य का भविष्य सुरक्षित न रहता। वह यह भी समझ गया था कि राजा लुई ने अपनी भूल अनुभव कर ली है और भविष्य में वह अब कोई सहायता उसे न देगा। फलतः ड्यूक ने फ्रांस के साथ नये सिरे से मैत्री संधि करने की ठानी और फ्रांसीसियों से उस समय बातचीत आरंभ की जब स्पेनियर्डों के विरुद्ध वे नेपिल्स पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहे थे। स्पेनियर्डों ने उस समय गेटा (Gaeta) नाम के स्थान में फ्रांसीसियों को घेर रखा था। वह फ्रांसीसियों को अपना मित्र बना लेना चाहता था। वह अपने प्रयत्नों में कृतकार्य भी हो जाता लेकिन उसकी मृत्यु हो गयी।

ड्यूक ने सारे कार्य अपनी वर्तमान कठिनाइयों को हल करने के लिये किये थे। भविष्य के लिये उसने यह सोचा था कि संभवतः उसके स्थान पर नियुक्त होने वाला गिरजा का नया उत्तराधिकारी उसके प्रति मैत्री का भाव न रखे और गिरजा से वह सम्पत्ति छिनवा दे जो उसने गिरजा के लिये प्राप्त की थी। अतः उस सम्पत्ति की रक्षा के लिये उसने चार उपाय किये। पहला कार्य तो उसने यह किया कि उन समस्त राजपरिवारों का प्रत्येक वंशज चुन-चुन कर मरवा डाला जिनके राज्य को उसने जीता

और लूटा था। दूसरे उसने रोमन सरदारों से मैत्री कर ली जिससे वह भावी पोप को नियंत्रण में रख सके। तीसरे, उसने महाविद्यालय को अधिक से अधिक अपने नियंत्रण में रखा। चौथे, उसने ऐसी शक्ति प्राप्त कर ली कि पोप के मरने के पूर्व वही ऐसा व्यक्ति हो जो आक्रमणों के प्रथम वार को झेल सके। अपने मरने के पूर्व ड्यूक ने तीन कार्य पूरे कर डाले थे और चौथा भी करीब-करीब कर डाला था। जहाँ तक पराजित राजाओं का संबंध है जितने भी राजाओं और उनके स्वजनों को वह पा सका उन सबको उसने मार डाला। बचने वालों की संख्या बहुत कम थी। उसने अपने दल के लिये रोमन सामन्तों की मैत्री प्राप्त कर ली और महाविद्यालय में उसका बड़ा प्रभाव था। जहाँ तक नये राज्यों का संबंध है उसने टस्कनी का लार्ड होना तय किया। पेरूजिया और पियोमबीनो (Perugia & Piombino) पर उसका अधिकार पहले से ही था। पीसा (Pisa) का वह संरक्षक हो गया। जिस समय उसकी मृत्यु हुई उस समय फ्रान्सीसियों से भयभीत होने का कोई कारण शेष न था क्योंकि स्पेनियर्डों ने फ्रान्सीसियों से नेपिल्स का राज्य इस प्रकार छीन लिया था कि दोनों ही पक्ष स्पेन से मैत्री करने के लिये विवश हो गये थे। जब ड्यूक ने पीसा पर कब्जा कर लिया तो ल्यूका (Lucca) और सीयना (Siena) ने तत्काल आत्मसमर्पण कर दिया। कुछ तो इस वजह से कि वे फ्लोरेन्सवासियों से घृणा करने लगे थे और कुछ इस वजह से कि वे डरते थे। फ्लोरेन्सवासियों के पास उक्त क्षेत्रों को कब्जे में रखने के लिये कोई साधन न थे। अतः यदि वह सफल हो गया होता, जैसाकि पहले हुआ था, तो जिस वर्ष उसकी मृत्यु हुई उसी वर्ष वह इतनी शक्ति प्राप्त कर लेता और यश प्राप्त कर लेता कि वह बिना किसी पर निर्भर किये अपनी ही शक्ति और योग्यता के बल पर स्वतंत्रतापूर्वक रहने लगता। लेकिन सीजर बोर्सिया के म्यान से तलवार निकालने के पाँच वर्ष बाद ही एलेक्जेण्डर की मृत्यु हो गयी। उसके पास केवल रोमना का राज्य रह गया था। उसकी अन्य सारी

योजनाएँ अधर में झूल रही थीं। वह स्वय घातक रोग से पीड़ित था और दोनों ओर से उसे दो बहुत ही शक्तिशाली और आक्रमणोन्मुखी सेनाओं ने घेर रखा था। लेकिन ड्यूक की वीरता तथा योग्यता ऐसी थी, वह मनुष्यों को जीतना और उन्हें हराना इतनी भली-भाँति जानता था और उसने अत्यन्त लघुकाल ही में अपने राज्य की इतनी गहरी नींव रख दी थी कि यदि उसके सिर पर वे सेनायें न रही होतीं या वह स्वस्थ होता तो वह हर कठिनाई पर विजय प्राप्त कर लेता। उसके राज्य की नींव कितनी गहरी थी—यह इसीसे अनुमान लगाया जा सकता है कि रोमना ने उसकी प्रतीक्षा एक मास तक की। राम में हालाँकि वह अर्धमृत अवस्था में था लेकिन वह अन्त तक सुरक्षित रहा। हालाँकि बागलिओनी (Baglioni), विटेलो (Vitelli) और ओर्सिनी (Orsini) तीनों एक साथ में रोम में घुसे लेकिन उन्होंने उसके एक भी अनुयायी को विश्वासघाती नहीं पाया। हालाँकि वह किसी को पोप बनाने में सफल न हो सका लेकिन वह इन अर्थों में तो कम से कम बहुत ही योग्य था कि वह जिसको पोप न बनाना चाहता था वह पोप न बन सका। लेकिन यदि वह एलेक्जेण्डर की मृत्यु के समय स्वस्थ रहा होता तो वह जैसा चाहता था वैसा अवश्य कर लेता। जिस दिन पोप जूलियस द्वितीय (Pope Julius II) का निर्वाचन हुआ था उस दिन उसने मुझसे कहा था कि उसने उन समस्त संभावनाओं पर विचार कर लिया है जो उसके पिता की मृत्यु के बाद हो सकती हैं और उसने हर संभावित स्थिति का सामना करने की तैयारी कर ली है। बस, वह केवल इतना ही नहीं जानता था कि अपने पिता की मृत्यु पर ही वह भी काल का ग्रास बन जायगा।

इस प्रकार ड्यूक के समस्त कार्यों का सिंहावलोकन कर लेने के बाद मैं उनमें ऐसी कोई भी बात नहीं पाता हूँ जिसके लिए उसे दोषी ठहरा सकूँ। इसके विपरीत मैं यह अनुभव करता हूँ और जैसा कि ऊपर लिख भी चुका हूँ, मैं उन सब व्यक्तियों में उसे आदर्श मानता हूँ जो दूसरों के

धन और सैन्य बल के सहारे आगे बढ़े हैं। ड्यूक में जैसा साहस था, जैसी महत्वाकांक्षा थी, उसे देखते हुए उसने जो कुछ किया उसके प्रतिकूल वह कुछ भी कर ही नहीं सकता था। उसकी योजनाओं के असफल होने का एक मात्र कारण एलेक्जेण्डर की सीमित आयु और उसकी अपनी अस्वस्थता थी। जो भी अपने नये राज्य में शत्रुओं से अपनी रक्षा करना चाहता है, मित्रों को बनाना चाहता है, बल या षड्यंत्र से विजय लाभ करना चाहता है, प्रजा का प्रियदर्शी बनने के साथ ही यह भी चाहता है कि लोग उससे डरें, यह चाहता है कि सैनिक उसके पीछे चलें और उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखें, जो हानि पहुँचाने वाले शत्रुओं का नाश करना चाहता है, पुरानी परम्पराओं के स्थान पर नयी प्रणालियाँ चलाना चाहता है, कठोर होने के साथ ही सदय होना चाहता है, महान् बनने के साथ उदार बनना चाहता है, पुरानी सेनाओं को दबा कर नयी सेना बनाने की इच्छा रखता है, बड़े-बड़े नरेशों और सामन्तों से इस प्रकार की मैत्री रखना चाहता है कि वे उसकी सहायता तो सहर्ष करें लेकिन उसे हानि पहुँचाते डरें, ऐसे व्यक्ति को ड्यूक के अतिरिक्त अन्य कोई बात कही जा सकती है तो वह केवल उतनी ही है कि उसने पोप जूलियस द्वितीय के रूप में जिस आदमी को चुना वह ठीक न था। जैसा ऊपर कहा जा चुका है यदि वह अपने इच्छित व्यक्ति को पोप की गद्दी पर आसीन न कर सका तो यह भी सच है कि वह जिसे न चाहता था वह व्यक्ति पोप न बन सका। उसे किसी भी कार्डिनल को पोप न होने देना चाहिये था जिसे उसने क्षति पहुँचायी थी या जो पोप हो जाने के बाद भय के कारण उसके विरुद्ध हो जाता क्योंकि लोग हानि तभी पहुँचाते हैं जब वे या तो भयभीत होते हैं या घृणा करते हैं। जिन व्यक्तियों को उसने हानि पहुँचायी थी उनमें अन्य लोगों के साथ सान पीट्रो (San Pietro) कोलोना (Colonna) सान जार्जिओ (San Giorgio), और एसकेनियो (Ascanio) थे। अन्य कोई भी व्यक्ति, रोहन (Rohan) और स्पेनियर्डों को छोड़ कर, यदि पोप बनाया जाता तो उसे ड्यूक से

डरना पड़ता। रोहन तो इसलिए भय न खाता क्योंकि वह फ्रांस के राजा का सम्बन्धी था और पेनियर्ड इसलिए न डरते क्योंकि ड्यूक पर उनके बड़े अहसान थे। अतः ड्यूक को चाहिये था कि वह स्पेनियर्डों में से किसी को पोप निर्वाचित करता। यदि वह ऐसा न कर सकता था तो उसे चाहिये था कि वह रोहन को पोप निर्वाचित करा देता। सानपीट्रो एड विरुकुला को उसे पोप न बनने देना चाहिए था। जो लोग भी यह सोचते हैं कि ऊँचे पद पर किसी आदमी को बैठा देने से वह पुरानी बातों को भूल जायगा, वे बड़ी भूल करते हैं। इसलिये, ड्यूक ने पोप को चुनने में गलती की और यही गलती उसके नाश का कारण सिद्ध हुई।

सारांश

इस अध्याय में मैकियावली ने बतलाया है कि चतुर तथा योग्य नरेश किस प्रकार दूसरों की सहायता का उपयोग अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिए कर सकते हैं। उसने बतलाया है कि कूटनीति की सहायता से नये राज्य की रक्षा किस प्रकार करनी चाहिये। नये राज्य के शत्रुओं का नाश कैसे करना चाहिये। ऐसे मित्र किस प्रकार प्राप्त करना चाहिये जो मदद ही कर सकें और हानि न पहुँचा सकें। प्रजा से अपने मनोनुकूल काम किस प्रकार कराया जाय। सेना को स्वामिभक्त कैसे रखा जाय। इसके साथ ही मैकिया-वली ने यह भी बतलाया है कि जिस व्यक्ति को एक बार हानि पहुँचा दी जाय उसे अपने हितों की रक्षा के लिए किसी को भी आगे क्यों नहीं बढ़ने देना चाहिए।

अध्याय ८

उनके सम्बन्ध में जो राजा की गद्दी खल नीति द्वारा प्राप्त करते हैं।

लेकिन अभी राजा बनने के दो ऐसे उपाय और हैं जिनको पूरी तरह न तो यही कहा जा सकता है कि वे योग्यता से सम्बन्धित हैं और न यही कहा जा सकता है कि वे अवसर, भाग्य या संयोग वश प्राप्त हो जाते हैं। फिर भी हम उनकी गणतंत्रों पर विचार करते समय अवहेलना नहीं कर सकते। ये हैं जब कोई दुष्टता या खलतापूर्ण उपायों से नरेश बन बैठता है या जब कोई सामान्य नागरिक अपने साथी नागरिकों की सहायता से राजा बन जाता है। खलतापूर्ण उपायों से राजा बनने का प्रयोग जिन्होने किया उनका मैं दो उदाहरण दूँगा। एक तो प्राचीन और दूसरा आधुनिक। इन उदाहरणो को देने के पूर्व मैं उक्त साधन के गुण-दोषों का कोई विवेचन न करूँगा क्योंकि जो उनकी नकल करना चाहते हैं उनको वे उदाहरण बतला देने ही पर्याप्त होंगे।

सिसिली वासी एगेथोक्लीज (Agathocles) अत्यन्त सामान्य स्थिति का व्यक्ति था। वह नीच कुल का था फिर भी सायराक्यूज का नरेश बन बैठा। वह एक कुम्हार का लड़का था और उसने अपना सारा जीवन आवारों की तरह बिताया था। दुष्टता उसके स्वभाव में बस गयी थी। लेकिन उसके दुष्ट स्वभाव में भी मानसिक सक्रियता और शारीरिक बल का कुछ ऐसा विलक्षण समन्वय हुआ था कि वह सेना में भरती हो गया और सेना में पदोन्नति पाता हुआ सायराक्यूज का प्रेटर बन गया। इस पद पर नियुक्त होने के बाद और यह निश्चय कर लेने के उपरान्त कि वह राजा बनेगा उसने वह पद हिंसा द्वारा

श्रौर बिना किसी सहायता के प्राप्त करना तय कर लिया। उसने अपनी यह योजना कार्थेजवासी हैमिलकार (Hamilcar) को बतला दी जो उस समय उसकी सेनाओं से इटली में युद्ध कर रहा था। इसके बाद उसने एक दिन प्रातःकाल सायराक्यूज के निवासियों और राज्य-परिषद को यह कह कर बुलाया कि उसे गणतंत्र के राजकाज के बारे में कुछ आवश्यक परामर्श करना है और जब सब एकत्रित हो गये तो उसने एक संकेत की सहायता से सायराक्यूज के समस्त धनी व्यक्तियों और राज्य-परिषद के समस्त सदस्यों को अपने सैनिकों द्वारा मरवा डाला। इसके बाद वह राजसिंहासनासीन हो गया और नरेश बनने में उसे किसी नागरिक उपद्रव का सामना नहीं करना पड़ा। हालाँकि कार्थेसवासियों ने उसे दो बार हरा दिया और अन्त में एक बार घेर भी लिया तो भी वह न केवल अपना नगर ही बचाने में समर्थ हो गया अपितु शहर की रक्षा के लिए सेना का एक भाग छोड़कर शेष को साथ लेकर उसने अफ्रीका पर आक्रमण कर दिया और वहाँ से लौट कर कुछ ही समय में उसने सायराक्यूज को घेरे से मुक्त करा लिया और कार्थेजवासियों के लिए ऐसी मुसीबतें खड़ी कर दी कि उन्हें विवश होकर उससे सन्धि करनी पड़ी। कार्थेजवासियों को इस सन्धि के फलस्वरूप अफ्रीका पर ही सन्तोष करना पड़ा और सिसली को एगेथाक्लीज के लिए छोड़ देना पड़ा। जो भी इस व्यक्ति के कार्यों और गुणों पर विचार करेगा वह देखेगा कि आरम्भ में उसने किस प्रकार सेना में रह कर बड़े से बड़े खतरों का सामना किया और कितनी कठिनाइयों से वह नरेश के पद तक पहुँचा और नरेश हो जाने के बाद भी उसे अपनी स्थिति सुदृढ़ बनाये रखने के लिए कई बार घोर दुस्साहसिक कृत्य करने पड़े जो किसी भी प्रकार बड़े से बड़े खतरों से खाली नहीं थे। अपने सहयोगी नागरिकों को मरवा डालना, मित्रों को धोखा देना, धर्महीन होना, निर्दयी होना आदि ऐसी बातें हैं जिनको गुण नहीं कहा जा सकता और उक्त साधनों से किसी को शक्ति भले ही प्राप्त हो जाय, वह यशस्वी

नहीं बन सकता। यदि एगेथोक्लीज पर आनेवाले संकटों को देखा जाय और उनका जिस प्रकार उसने सामना किया था और तरह-तरह के विघ्नों और बाधाओं को जीतने में जिस क्षमता को उसने प्रदर्शित किया उसे देखते हुए कोई भी यह नहीं कह सकता कि वह किसी बड़े से बड़े सरदार से कम योग्य था। फिर भी उसने जो बर्बरतापूर्ण निर्दय कृत्य किये, जो अमानवीय कार्य किये, जो अत्याचार किये उन्हें देखते हुए कोई भी यह नहीं कह सकता कि उसे अत्यन्त कीर्तिवान महापुरुषों की श्रेणी में रखा जाय। उसने जो कुछ प्राप्त किया उसके सम्बन्ध में हम यह भी नहीं कह सकते कि वह उसने अपने भाग्य के बल से या किसी अन्य गुण से प्राप्त किया।

हमारे अपने ही काल में जब एलेक्जेण्डर षष्ठ पोप थे तो ओलिवरोत्तो डा फर्मो (Oliverotto da Fermo) नाम के एक बालक के पिता की मृत्यु हो गयी और उसे अपने मामा जियोवानी फोगलियानी (Giovanni Fogliani) के पास रहना पड़ा। फोगलियानी ने उसे पालपोस कर बड़ा किया और तरुण अवस्था में ही सैनिक बना कर रखे जाने के लिए पाओलो पिटेली के साथ कर दिया जिससे सैनिक जीवन की कठिनाइयाँ उसे उच्च सैनिक पद के योग्य बना दें। पाओलो की मृत्यु के बाद ओलिवरोत्तो उसके भाई विटेलोजो के साथ युद्ध करता रहा। अपनी बुद्धिमत्ता तथा शारीरिक और मानसिक सक्रियता के कारण वह अत्यन्त लघुकाल में सेनापति हो गया। लेकिन उसने दूसरों के अन्तर्गत कार्य करने में अपने को दास स्थिति में अनुभव किया, इसलिए उसने फर्मों के कुछ नागरिकों की सहायता से, जिन्होंने अपने देश की स्वतन्त्रता के बजाय दासता को अधिक अच्छा समझा, यह तय किया कि विटेली की अनुकूल दृष्टि से फर्मों पर कब्जा कर लिया जाय; फलतः उसने अपने मामा फोगलियानी को एक पत्र लिखा। इस पत्र में उसने लिखा कि अपने घर से निकले अब उसे काफी दिन हो गये हैं, इसलिए वह वापस आना चाहता है और अपना नगर देखना

चाहता है। जहाँ तक सम्भव होगा वह अपनी रियासत का भी निरीक्षण करेगा। और चूँकि अभी तक उसने बराबर कीर्तिलाभ के लिए ही इतना परिश्रम किया है, इसलिए वह अपने सहयोगी नागरिकों को यह दिखलाने के लिए कि उसने अपना समय यों ही नहीं गँवाया है, अपने साथ सौ घुड़सवार भी लायेगा। ये घुड़सवार उसके दोस्त और अनुयायी होंगे। उसे आशा है कि उसका तथा उसके साथियों का फर्मों के नागरिक अत्यन्त सम्मानपूर्वक स्वागत करेंगे। फोगलियानी ने ऐसी व्यवस्था कर दी जिससे उसके भांजे का अधिक से अधिक सम्मानपूर्वक स्वागत किया जाय और स्वयं भी किसी शिष्टाचार के प्रकट करने में कोई शिथिलता नहीं दिखलायी। फोगलियानी ने ओलिवरोत्तो को तथा उसके सारे साथियों को अपने यहाँ ठहराया। कुछ दिन ओलिवरोत्तो ने अपने दुष्टता-पूर्ण कार्य के लिए आवश्यक प्रबन्ध करने में बिता दिये। इसके बाद एक दिन उसने एक बड़ी भारी दावत का आयोजन किया जिसमें फोगलियानी सहित फर्मो नगर के सब अधिकारियों और बड़े-बड़े धनी नागरिकों को निमंत्रित किया गया। दावत के बाद मनोरञ्जन के कार्यक्रम भी हुए। इसके बाद ओलिवरोत्तो ने बड़े कलात्मक ढंग से कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्नों पर बातचीत छेड़ दी और पोप एलेक्जेण्डर तथा उनके पुत्र सीजर बोर्जिया की महानता की बड़ाई करना आरम्भ कर दिया। उसने उनके सभी कार्यों की प्रशंसा की। ओलिवरोत्तो के इस भाषण के उत्तर में फोगलियानी ने भी एक वक्तृता दी। अन्य लोगों ने भी ऐसा किया। तभी ओलिवरोत्तो उठ खड़ा हुआ और बोला कि हम लोगों को ये सब बातें इस तरह सार्वजनिक रूप से न करके घर के अन्दर करनी चाहिए। यह कह कर वह एक कमरे में चला गया। उसके पीछे अन्य सब लोग भी उस कमरे में चले गये। सब अतिथि जैसे ही बैठे थे कि छिपे हुए स्थानों से सैनिक निकल पड़े और उन्होंने जियोवानी फोगलियानी सहित सभी लोगों को मार डाला। इस हत्या-काण्ड के बाद ओलिवरोत्तो अपने घोड़े पर चढ़ कर शहर में

चला गया और उसमें महादण्ड नायक (Chief Magistrate) को उसके महल में ही जाकर कैद कर लिया ; नतीजा यह हुआ कि अन्य सभी कर्मचारी और अधिकारियो ने भयवश ओलिवरोत्तो की आज्ञाओ का पालन शुरू कर दिया। ओलिवरोत्तो ने अपना शासन स्थापित कर स्वयं राजा की गद्दी सँभाल ली। जो लोग उसे हानि पहुँचा सकते थे, उनको तो उसने मरवा ही डाला था, इसलिए वह ऐसी नागरिक और सैनिक व्यवस्था करने में सफल हो गया जिससे न केवल वह फर्मो में ही सुरक्षित हो गया बल्कि आसपास के नगरों के शासक और नागरिक भी उससे डरने लगे। ओलिवरोत्तो को भी एगेथोक्लीज की भाँति ही अपदस्थ करना कठिन होता यदि वह सीजर बोर्जिया के धोखे में न आ गया होता। ओर्सिनी और विटेली को सीजर बोर्जिया ने सिनगेगलिया से जब पकड़ लिया था तो उन्हीं के साथ ओलिवरोत्तो भी पकड़ लिया गया। यह घटना फर्मो के हत्याकाण्ड के एक वर्ष बाद की है। उसी के साथ विटेलोज्जो भी पकड़ा गया था जोकि अत्याचारपूर्ण कार्य में ओलिवरोत्तो का गुरू था। ओलिवरोत्तो और विटेलोज्जो दोनों को सीजर बोर्जिया ने मरवा डाला था।

कुछ लोगो को यह आश्चर्य हो सकता है कि एथेथोक्लीज तथा उस जैसे अन्य व्यक्ति किस प्रकार इतनी बड़ी दगाबाजी तथा अत्याचार करने के बाद भी अपने राज्य में सुरक्षित रह सके और अपने राज्य की भी वाह्य शत्रुओं से रक्षा करने में सफल हो गये तथा उनकी प्रजा ने उन लोगों के विरुद्ध कोई षड्यत्र नहीं किया, हालाँकि ऐसे भी उदाहरण हैं जिनमें लोगों को अपने राज्य से अत्याचारों की वजह से शांतिकाल में ही हाथ धो लेना पड़ा, युद्धकाल की अनिश्चयात्मक परिस्थितियों की बात मैं नहीं करता। मैं समझता हूँ यह चीज इस बात पर निर्भर करती है कि क्रूरताओं का शोषण अच्छी तरह किया जाता है या बुरी तरह। क्रूरताओं का अच्छा उपयोग तब कहा जायगा (यदि बुराई में

भी अच्छी बुराई के शब्द के प्रयोग की अनुमति मुझे दी जाय तो) जब वे केवल एक बार किसी उच्चासन को प्राप्त करने के लिए की जायँ। एक बार इष्ट सिद्धि हो जाने के बाद फिर उनका प्रयोग न किया जाय और फिर उनके स्थान पर केवल ऐसे कार्य किये जायँ जिससे प्रजा को लाभ ही लाभ हो। वे क्रूर कार्य बुरे होते हैं जो समय के साथ घटने के बजाय बढ़ते ही जाते हैं। जो पूर्वोक्त पद्धति का अनुकरण करते हैं वे कुछ हद तक अपना लोक-परलोक दोनों सँभाल लेते हैं; जैसा एगेथोक्लीज ने किया था। जो इसके बाद वाली पद्धति के अनुसार चलते हैं उनके लिए अपनी स्थिति सँभालना असम्भव हो जाता है।

अतः, यह ध्यान रखने योग्य बात है कि जब किसी को किसी राज्य पर कब्जा करना हो तो विजेता को जो क्रूरताएँ या अत्याचार करने हों वे एक साथ कर डालने चाहिये जिससे उन्हें नित्यप्रति करने की आवश्यकता न रह जाय। जैसे ही राज्य प्राप्त हो जाय विजेता को अपनी नीति बदल देनी चाहिये और प्रजा के साथ सद्व्यवहार करके ऐसी व्यवस्था कर लेनी चाहिए जिससे लोग होने वाले लाभों को ही याद रखें और पिछली बातों को भूल जायँ। जो इसके विपरीत कार्य करेगा या तो डर की वजह से अथवा बुरे सलाहकारों की वजह से, उसे हमेशा एक हाथ में चाकू लेकर खड़ा रहना पड़ेगा और वह अपनी प्रजा के सहयोग पर कभी निर्भर न रह सकेगा क्योंकि प्रजा नित्य होनेवाले अत्याचारों के कारण उस पर निर्भर न रह सकेगी। जो कुछ भी नुकसान पहुँचाना हो, वह एक साथ पहुँचा देना चाहिए। चूँकि ऐसा एक ही बार होगा इसलिए लोगों को बुरा भी अधिक समय तक न लगेगा। लोगों को फायदा धीरे-धीरे पहुँचाना चाहिए जिससे वे नरेश के गुणों का बखान कर-करके उनका उपभोग करें। इसके अतिरिक्त राजा को इस तरह रहना चाहिए कि अच्छी या बुरी कोई भी घटना या दुर्घटना उसे उसके निर्दिष्ट पथ से विचलित न कर सके। यदि आप किसी

दुर्घटना के होने के बाद सहायता करते हैं तो उसका कोई लाभ आपको न होगा क्योंकि लोग समझेंगे कि वह सहायता आपको लाचार होकर करनी पड़ी है ।

सारांश

मैकियावली ने इस अध्याय में अपने मुख्य भाव की एक बार पुनः पुष्टि की है । उसका मुख्य भाव है राज्य प्राप्त करना और उसकी रक्षा । राज्य प्राप्त करने के कई तरीकों को बता देने के बाद उसने इस अध्याय में यह बतलाया है कि दुष्टतापूर्ण कार्यों से भी राज्य लाभ हो सकता है; किन्तु यह दुष्टता एक ही बार करनी चाहिये । राजा के लिए बार-बार की क्रूरता क्षम्य नहीं है । राज्य प्राप्त करने के बाद चाहे वह धोखेबाजी से ही क्यों न प्राप्त किया राजा को प्रजा का हित चिन्तन इस प्रकार करना चाहिये कि वह पिछली बातें भूल जायँ ।

अध्याय ९

नगर-राज्यों के संबंध में

अब हम ऐसे नरेशों के संबंध में विचार करेंगे जो अपराधों या असह्य हिंसा के साधनों द्वारा राजा नहीं होता वरन् अपने सहयोगी नागरिकों के अनुकूल होने से राजा निर्वाचित होता है। ऐसे राज्यों को हम नगर-राज्य कह सकते हैं। नगर-राज्यों में यह स्थिति प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को अपनी योग्यता या भाग्य या धन पर ही सर्वथा निर्भर नहीं रहना पड़ता बल्कि चालाकी और धन दोनों से काम लेना पड़ता है। उक्त राज्य में राजा वही बन पाता है जो लोकप्रिय हो या आभिजात्यवर्ग जिसके पक्ष में हो। हर नगर-राज्य में दो दल होते हैं जो एक दूसरे का विरोध करते हैं। इन दलों की उत्पत्ति जनता की इस इच्छा में निहित होती है कि कोई बड़ा व्यक्ति उनको दबा न सके और दूसरा दल ऐसे बड़े-बड़े आदमियों का होता है जो नागरिकों को दबा कर उन पर शासन करना चाहता है। इन दो विरोधी स्वार्थों के संघर्ष के परिणाम तीन रूपों में हमारे सामने आते हैं जो इस प्रकार हैं: निरंकुश शासन, स्वतंत्रता या सब कुछ करने की छुट्टी। निरकुंश शासन की स्थापना या तो जनता करती है या सामन्तवर्ग के लोग। इस प्रकार का शासन कौन स्थापित करेगा यह उभय पक्षों की सापेक्षिक स्थिति और अवसरों पर निर्भर करता है क्योंकि जब सामन्तवर्ग के लोग यह देखते हैं कि वे जनता का प्रतिरोध नहीं कर सकते तो वे अपने में से ही किसी एक व्यक्ति को नरेश बना देते हैं जिससे नरेश की उच्चतम स्थिति की आड़ में छिप कर वे अपनी योजनाओं को क्रियान्वित कर सकें। दूसरी ओर जब जनता यह देखती है कि वह सामन्तवर्ग को अपने काबू में नहीं रख

पा रही तो वह प्रयत्न करके एक को राजा बना कर उसे अपना नेता मान लेती है और उस राजा की सत्ता की आड़ में अपनी और अपने हितों की रक्षा करती है। जो व्यक्ति सामन्तवर्ग की ओर से नरेश बनाया जाता है उसे प्रजा या नागरिको की तरफ से बनाये गये नरेश की तुलना में अपनी स्थिति की रक्षा में अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसका कारण यह है कि सामन्तवर्ग द्वारा बनाये गये नरेश के चारो ओर ऐसे व्यक्ति रहते हैं कि जो अपने आपको नरेश के बराबर समझते हैं, जिसका नतीजा यह होता है कि नरेश जैसा चाहता है, वैसा हर किसी को आदेश दे कर करा नहीं पाता। लेकिन जो व्यक्ति लोकप्रियता के कारण नरेश चुना जाता है उसकी आज्ञा न मानने वाले या तो होते ही नहीं और यदि होते भी हैं तो उनकी संख्या बहुत कम होती है। इसके अलावा सामन्तों को जहाँ एक ओर न्यायपूर्ण कार्यों से तथा बिना दूसरो का नुकसान पहुँचाये सन्तुष्ट ही नहीं किया जा सकता वहीं दूसरी ओर जनता को बिलकुल इसके विपरीत आचरण करके प्रसन्न किया जा सकता है; क्योंकि सामन्तो के लक्ष्यो की तुलना में जनता के उद्देश्य अपनी जगह कही अधिक ईमानदार होते हैं। सामन्त दमन करना चाहते हैं जब कि जनता केवल दमन से बचना चाहती है। यहाँ यह भी बतला दिया जाना जरूरी है कि कोई भी नरेश जनता से बिगाड़ कर अपना काम नहीं चला सकता क्योंकि जनता सख्यातीत होती है जब कि सामन्तो को रुष्ट करके, वे चाहे कितने ही बड़े क्यो न हो, काम चलाया जा सकता है क्योंकि वे गिने-चुने होते हैं। यदि जनता नरेश से बिगड़ जायगी तो अधिक से अधिक वह उसका साथ न देगी लेकिन बिगड़े हुए सामन्त न केवल साथ छोड़ कर चले जायँगे बल्कि सक्रिय विरोध भी करेंगे और चूंकि वे अपेक्षाकृत अधिक दूरदर्शी और चालाक होते हैं और वे हमेशा अपने बचने का कोई न कोई उपाय कर लेते हैं और ऐसे पक्ष के साथ हो जाते हैं जो विजयी होने वाला होता है। यही नहीं, नरेश को अपनी प्रजा के साथ ही विवश हो कर रहना पड़ता है लेकिन यह बात सामन्तों के

विषय में नहीं है; वह उनको बदल सकता है। वह जिस सामन्त को चाहे बढ़ा सकता है और जिसे चाहे पीछे घसीट सकता है।

अपनी इसी बात को स्पष्ट करने के लिये मैं इस पर और प्रकाश; डालूँगा। सामन्तों के संबंध में दो प्रकार से विचार किया जाना चाहिये या तो उन पर पूरी तरह इस प्रकार नियंत्रण रखा जाय कि वे सर्वथा आपके कोप पर ही निर्भर रहें या फिर उन पर बिलकुल ही नियंत्रण न रखा जाय। इस प्रकार आपसे जिन सामन्तों का घनिष्ठ संबंध रहो जाय और जो लोभी और लालची तथा लूट-खसोट करने वाले न हो उनका सम्मान किया जाना चाहिए और उनसे आप प्रेम भी करें। इसके बाद जो बच जायँ उनको दो दृष्टियों से देखा जाय। एक तो इस तरह के लोग होंगे जो बुद्धिमान तो होंगे लेकिन साहस के अभाव के कारण आगे न आते होंगे। ऐसे लोगों को अपनी कृपादृष्टि द्वारा आपको अपनी ओर आकर्षित करना चाहिए और उनके लाभदायी परामर्शों का लाभ उठाना चाहिए। ऐसा करने से वे आपकी समृद्धि में आपका सम्मान करेंगे और यदि आप पर, कोई विपत्ति आ गयी तो उनसे उस समय आपको डरने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन जब आपका पाला किसी ऐसे सामन्त या सामन्तसमूह से पड़ जाय जो किन्हीं निश्चित उद्देश्यों या महत्वाकांक्षाओं के कारण आपसे दूर-दूर रहता हो तो यह इस बात का लक्षण है कि वह अपने आपको आपसे बड़ा समझता है। ऐसे व्यक्तियों से नरेश को हमेशा बचने का प्रयत्न करना चाहिए। यही नहीं, उन्हें अपना गुप्त शत्रु भी मानना चाहिए जो विपत्ति-काल में नरेश का नाश करनेवालों को सहायता करेंगे।

जो व्यक्ति जनता की इच्छा के अनुकूल होने की वजह से नरेश होता है उसे इस बात का ध्यान हमेशा रखना चाहिए कि उसकी जनता से सदैव मैत्री बनी रहे। इस मैत्री को बनाये रखना बड़ा आसान भी होता है क्योंकि जनता दमन से बचे रहने के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहती। वह केवल इतना ही चाहती है कि उसे दबाया न जाय। लेकिन जो व्यक्ति जनता की

इच्छा के विरुद्ध सामन्तों की सहायता से ही नरेश होता है उसे भी चाहिए कि वह जनप्रिय होने का प्रयत्न करे। यदि नरेश प्रजा की रक्षा में सक्रिय अभिरुचि ग्रहण करता है तो जनप्रिय होना कठिन नहीं होगा। चूँकि लोगों का यह स्वभाव होता है कि वे जिससे अपनी बुराई की आशंका करते हैं और वह जब उनकी भलाई करता है तो वे उसका अहसान अधिक मानते हैं, इसलिए ऐसे नरेश की स्थिति उस नरेश से भी कालान्तर में अच्छी हो सकती है जो जनता की इच्छा से ही राजा बनता है। नरेश जनता या प्रजा में लोकप्रिय कई तरह से हो सकता है। ये रास्ते परिस्थितियों के अनुसार भिन्न-भिन्न होंगे। इनका कोई निश्चित नियम नहीं निर्धारित किया जा सकता। इसलिए मैं उनकी और अधिक चर्चा नहीं करूँगा। अन्त में मैं इतना अवश्य कहूँगा कि प्रत्येक नरेश के लिए प्रजा के साथ मैत्री रखना बड़ा आवश्यक होता है। यदि वह ऐसा नहीं करता तो विपत्तिकाल में सहायता पाने का उसके पास कोई साधन नहीं रह जायगा।

स्पार्टावासियों का नरेश नाबिस समस्त यूनान द्वारा घेर लिया गया था। इसके अलावा विजयी रोमन सेनाओं ने भी उसके सेना के चारों ओर घेरा डाल रखा था लेकिन उसने अपने राज्य की रक्षा भी कर ली और वह अपनी स्थिति भी बनाये रहा। जब खतरा उसके सामने आ खड़ा हुआ तो उसने घर के कुछ दुश्मनों से छुट्टी पा ली। ऐसा संभव न होता यदि उसकी प्रजा ही उसके विरुद्ध होती। मेरे इस मत के विरुद्ध किसी को यह लोकोक्ति दोहराने की आवश्यकता नहीं है कि "जो जनता पर भरोसा करता है वह रेत का घर बनाता है।" यह लोकोक्ति किसी व्यक्तिगत हैसियतवाले सामान्य नागरिक के संबंध में कही जाय तो ठीक है क्योंकि कोई आदमी अपने आस-पास के लोगों को इसके लिए राजी कर ले कि यदि कोई शत्रु या अधिकारी उसको दबायेगा तो वे उसकी मदद करेंगे और वह शत्रु या राज्याधिकारी जब सिर पर आ धमके तो लोग भाग जायँ और वह व्यक्ति उनकी वजह से

धोखा खा जाय, जैसा धोखा रोम के ग्रेशियाई तथा फ्लोरेंस के मेसर-जार्जिओ स्कालो को हुआ था। लेकिन जो नरेश जनता को अपना आधार बनायेगा, जो नरेश नेतृत्व कर सकेगा, जिसमें साहस और बल होगा, जो विपत्तिकाल में भी घबड़ायेगा नहीं तथा अन्य तैयारियों को करता रहेगा, प्रबंधकार्य की अवहेलना न करेगा, जो अपनी वीरता से जनता को भी आशा बँधायेगा, वह देखेगा कि जनता उसे धोखा नहीं देती और अनुभव करेगा कि उसने अपनी नींव मजबूत आधारों पर रखी है।

अक्सर ऐसे नगर-राज्यों में उस समय खतरा पैदा हो जाता है जब नरेश नागरिक शासक की हैसियत से अपनी स्थिति बदल कर निरंकुश शासक बनने का प्रयत्न करता है, क्योंकि ऐसे नरेश या तो स्वयं आज्ञा देते हैं या दण्डनायकों द्वारा आज्ञाएँ घोषित कराते हैं। बादवाली स्थिति में नरेशों की अवस्था निर्बल हो जाती है और वह अवस्था अधिक खतरनाक होती है। क्योंकि ऐसी अवस्था में नरेश उन लोगों की दया-दृष्टि का मोहताज हो जाता है जो दण्डनायक हो जाते हैं। ये दण्डनायक विशेषकर विपत्तिकाल में बहुत ही आसानी के साथ नरेश को या तो उसके विरुद्ध कार्य कर अथवा उसकी आज्ञाओं का न पालन कर अपदस्थ कर सकते हैं। ऐसे संकट काल में नरेश सारी सत्ता अपने हाथ में ले भी नहीं सकता क्योंकि जो नागरिक दण्डनायकों की आज्ञाएँ मानने के अभ्यस्त होते हैं वे उस समय राजा की आज्ञाएँ नहीं भी मान सकते, और नरेश को भी विपत्ति के समय ऐसे व्यक्तियों का सदा अभाव रहेगा जिन पर वह आसानी से निर्भर कर सके। ऐसा नरेश उन लोगों पर निर्भर नहीं रह सकता जिन्हें वह शांतिकाल में देखता है, क्योंकि उस समय तो हर व्यक्ति मरने के लिए तैयार हो सकता है जब मृत्यु बहुत दूर हो लेकिन संकट काल में जब राजभक्त नागरिकों की आवश्यकता पड़ती है उस समय सचमुच प्राण न्यौछावर करने वाले बहुत कम लोग मिलते हैं। यह अनुभव होना बड़ा ही भयावह है और यह केवल एक

ही बार हो सकता है। इसलिए बुद्धिमान नरेश हमेशा यह व्यवस्था रखेगा कि जनता या प्रजा को उसके शासन की आवश्यकता बराबर बनी रहे जिससे वे लोग सदैव उसके प्रति स्वामिभक्ति प्रकट करते रहें।

सारांश

प्रत्येक नरेश के लिए, चाहे वह प्रजा द्वारा निर्वाचित हो या न हो, यह आवश्यक है कि वह राज्यवासी जनता या बहुसंख्यक नागरिकों को प्रसन्न रखे। जो नरेश ऐसा नहीं करता उसके शासन की नींव स्थायी नहीं हो सकती।

अध्याय १०

सभी प्रकार के राज्यों की शक्ति का अनुमान किस प्रकार लगाया जाय

विभिन्न राज्यों के स्वरूप पर विचार करते हुए एक बात का जानना और जरूरी है। वह यह है कि क्या संबंधित राज्य के नरेश की स्थिति ऐसी है जिसमें वह अकेले ही अपनी रक्षा कर सकता है या उसे अपनी रक्षा के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। उसी चीज को और अधिक स्पष्ट करने के लिये मैं अपनी बात इस प्रकार कहूँगा कि वह राज्य आत्मनिर्भर है; क्योंकि उसके पास पर्यात जन और धन बल ही नहीं है वरन् ऐसी शक्तिशाली सेना भी है जो रणक्षेत्र में किसी भी आक्रमणकारी की सेनाओं का सामना करने में भरपूर क्षमता रखती है, और उस राज्य को अपनी रक्षा के लिये आत्मनिर्भर नहीं माना जायगा जो लड़ाई के मैदान में अपने दुश्मन का सामना नहीं कर सकते और आक्रमण होने पर अपने आपको चहारदीवारियों में छिपा कर रक्षात्मक युद्ध ही करते हैं। जो राज्य आत्मनिर्भर होते हैं उनके संबंध में तो पहले ही बतला चुका हूँ। उनके सबंध में आगे जब भी आवश्यकता होगी, पुनः विचार किया जायगा। दूसरे मामले में और कोई सलाह नहीं दी जा सकती, सिवाय इसके कि ऐसे राज्य के नरेश को प्रोत्साहित किया जाय और कहा जाय कि वह अपनी राजधानी की खूब मजबूत किलेबन्दी-करे तथा आसपास के प्रदेश की रक्षा की व्यवस्था करने मे अधिक परेशान न हो। जो भी नरेश अपनी राजधानी की खूब मजबूत किले-बन्दी कर लेगा तथा अपने शासन का संघठन तथा प्रजा के साथ जैसा बतलाया गया है और आगे भी बतलाया जायगा वैसा व्यवहार करेगा, उस पर दूसरे आक्रमण करने में हिचकिचायेंगे क्योंकि लोग ऐसा उद्योग नहीं करते जिसमें आने वाली बाधाओं की कल्पना वह पहले से ही कर

लेते हैं और जिस राज्य की राजधानी में रक्षा का प्रबंध अत्यन्त सुदृढ़ होता है तथा जिस राज्य के नरेश की प्रजा उससे घृणा नहीं करती उस राज्य पर आक्रमण करना कभी भी सरल नहीं प्रतीत हो सकता।

जर्मनी के नगर बिलकुल स्वतंत्र हैं। उनके कब्जे में आसपास का प्रदेश भी बहुत कम है। उन की जब इच्छा होती है वे सम्राट् की आज्ञा का पालन करते हैं। वे न तो सम्राट् से डरते हैं और न जर्मनी में रहने वाली अन्य किसी पोपशाही से। इन नगरों की किलेबन्दी इतनी मजबूत है कि उसे देख कर हर व्यक्ति यही सोचता है कि उन नगरों को परास्त करना हंसी-खेल नहीं है। प्रत्येक नगर के चारों ओर आवश्यक अड्डे और खाइयाँ आदि हैं। काफी बड़ा तोपखाना है। और उन नगरों के सार्वजनिक गोदामो में सदा इतना भोजन, पेय तथा ईंधन रहता है कि पूरे नगर का काम बिना बाहरी सहायता के एक वर्ष तक लगातार चल सकता है। निम्न श्रेणी के लोगों को काम देने की भी ऐसी व्यवस्था है कि वहाँ कोई बेकार नहीं रह सकता। सैनिक अभ्यासो को वहाँ बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता है और उन अभ्यासें को निर्विघ्न रूप से होने देने के लिये विशेष नियम हैं।

अतएव, ऐसा नरेश जो अपनी राजधानी को हर तरह से मजबूत रखता है और जिसको उसकी प्रजा घृणा नहीं करती, उस पर आक्रमण नहीं किया जा सकता; और यदि किसी ने आक्रमण किया भी तो उस आक्रमणकारी को लज्जापूर्वक पीछे हट कर भाग जाना पड़ेगा क्योंकि कोई भी व्यक्ति नगर के चारों ओर अपनी सेनाओं को निठल्ला बैठा कर एक वर्ष तक घेरा डाले नहीं पड़ा रहेगा। और जो लोग यह कहते हैं कि नगर के बाहर रहने वाले राज्यवासी नगर के किलों में शरण लेने के बाद अपनी सम्पत्ति को नगर के बाहर जलता हुआ देख कर धैर्य धारण न कर सकेंगे और दीर्घकालीन घेरे तथा अपने स्वार्थों की वजह से लोग नरेश की बात न मानेंगे और उसे भुला देंगे, उन व्यक्तियो को मै यह उत्तर दूंगा कि कोई भी साहसी राजा अपनी अधीर प्रजा को

यह ढाढ़स बँधाकर कि बुरे दिन अधिक समय तक न रहेंगे, अपनी कठिनाइयों पर विजय पा सकता है। वह कभी-कभी प्रजा को शत्रु द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों की भी याद दिला सकता है। इसके अलावा शत्रु जब आक्रमण करेगा तो यह स्वभावतः लूटपाट मचायेगा और आग लगायेगा और उस समय लोग बजाय सम्पत्ति के अपनी रक्षा के लिए अधिक परेशान होंगे। इसलिये नरेश को अधिक चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। कुछ समय बाद जब लोगों में सुचितता आयेगी और वे विचार करने योग्य होंगे, उस समय तक जो कुछ हानि होनी रही होगी, वह हो चुकी होगी और तब जो हानि हो चुकी होगी उसको बरदाश्त करने के सिवाय अन्य कोई मार्ग शेष न रहा होगा। फलतः प्रजा और भी संघटित होकर अपने नरेश के साथ सहयोगपूर्वक कार्य करेगी।

मनुष्यों का यह स्वभाव होता है कि जो उनका जितना लाभ करता है वह उसके साथ उतने ही ग्रथित होते चले जाते हैं। इन सब बातों से यह नतीजा निकाला जा सकता है किसी भी बुद्धिमान नरेश को घेरे के आरंभ में उसके दौरान में अपनी प्रजा के साहस को बनाये रखने में कोई कठिनाई न होगी, बशर्ते उसके पास रक्षा के पर्याप्त साधन हों और भोजनादि की पर्याप्त व्यवस्था हो।

सारांश

इस अध्याय में मैकियावली ने बतलाया है कि निर्बल राज्य भी रक्षा के मामले में किस प्रकार आत्मनिर्भर बन सकते हैं। छोटे राज्यों के नरेशों को उसने सलाह दी है कि वे राज्य में या उसकी सीमा में रक्षा व्यवस्था पर अधिक ध्यान न देकर अपनी राजधानी की किलेबंदी पर अधिक ध्यान दें और कम से कम एक वर्ष तक के लिये शस्त्रास्त्र तथा भोजन सामग्री की व्यवस्था रखें। इतने समय में कोई भी आक्रमणकारी घेरे की दीर्घता से ऊब कर भाग जायगा।

अध्याय ११

धर्मतंत्र वाले राज्यों के संबंध में

अब हमें केवल धर्मतंत्र युक्त राज्यों के संबंध में बतलाना है। इन राज्यों के संबंध में आधिपत्य स्थापित होने के पूर्व ही कठिनाई उत्पन्न होती है। ये राज्य या तो योग्यता से प्राप्त किये जाते हैं या फिर भाग्य-वशात्। लेकिन इन पर आधिपत्य बनाये रखने में उक्त दोनों बातों में से किसी की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि वे प्राचीन धार्मिक रीति-रिवाजों द्वारा चलते हैं और ये धार्मिक परम्पराएँ इतनी शक्तिशाली और इस प्रकार की होती हैं कि उनका उक्त राज्यों के नरेशों पर सदैव सक्रिय नियंत्रण रहता है, चाहे वे नरेश किसी भी तरह कार्य करें या रहें। इन नरेशों के पास राज्य रहता है लेकिन उसकी रक्षा के उत्तर-दायित्व से वे मुक्त रहते हैं। उनकी प्रजा होती है लेकिन उस प्रजा पर वे शासन नहीं करते। हालाँकि राज्य की वे रक्षा नहीं करते लेकिन उनसे वह राज्य कोई छीनता नहीं; प्रजा शासन-प्रबंध न होने के बावजूद उस राज्य के स्वामी के विरुद्ध कोई असन्तोष नहीं प्रकट करती। वह न तो इस संबंध में कुछ सोचती ही है और न अपने आपको ऐसा क्षमतायुक्त पाती है कि उस राज्य और राजा से अपने आपको अलग कर सके। अतः यही राज्य एकमात्र ऐसे राज्य हैं जो सुरक्षित और सुखी रहते हैं। लेकिन उनके बारे में कहा जाता है कि वे कुछ ऐसे लक्ष्यों और उद्देश्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो मानवीय कल्पना की सीमा के परे हैं, इसलिए मैं उनके संबंध में मौन ही रहूँगा। क्योंकि उन राज्यों की रचना स्वयं ईश्वर ने की है, इसलिये कोई धृष्ट और मूर्ख व्यक्ति ही उनके संबंध में वादविवाद करने का साहस कर सकता

हैं। फिर भी, मुझसे यह पूछा जा सकता है कि गिरजा राजसत्ता के क्षेत्र में इतना बलवान कैसे हो गया जबकि **एलेकजेण्डर षष्ठम** के पूर्व इटली के पोपों को राजसत्ता के क्षेत्र में इटली के छोटे से छोटे लॉर्ड और बैरन तक अवहेलना की दृष्टि से देखते थे। इस समय यह दशा है कि पोप से फ्रांस के राजा तक जिनको पोप ने ही इटली से बाहर निकाल दिया है, घबड़ाते हैं। यही नहीं, पोप ने वेनिशियनों तक का नाश कर दिया है। हालाँकि यह सब बातें सर्वविदित हैं लेकिन फिर भी मेरी समझ से उनकी यहाँ पुनः चर्चा कर देना अप्रासांगिक न होगा।

फ्रांस के राजा चार्ल्स के आने के पूर्व इटली का शासन पोप वेनिशियनों, नेपिल्स के राजा, मिलन के ड्यूक तथा **फ्लोरेंसवासियों** के हाथ में था। इन शासकों के दो ही लक्ष्य थे : पहला तो यह कि शस्त्रबल से कोई विदेशी इटली में न प्रविष्ट होने पाये और दूसरा कि कोई भी समकालीन सरकार अपने क्षेत्र को बढ़ाने की चेष्टा न करे। जिन पर विशेष ध्यान दिया जाता था, वे थे पोप और वेनिशियन। वेनिशियनों को पीछे रखने के लिए अन्य सबको परस्पर मैत्री रखनी पड़ती थी, जैसाकि **फेरारा** की रक्षा से प्रकट होता है और पोप को नियंत्रण में रखने के लिए रोमन बैरनों की मदद ली जाती थी। रोमन बैरन दो दलों में विभक्त थे। पहले दल का नेता **ओर्सिनी** था और दूसरे का **कोलोना** और चूँकि उनमें पोप के ही सामने बराबर संघर्ष होता रहता था, इसलिए पोपशाही बराबर निर्बल दृढ़ताहीन रहती थी। हालाँकि कभी-कभी **सेक्सटस** (Sextus) जैसे बलवान पोप भी आ जाते थे लेकिन वे अपनी योग्यता या धन के जोर से कभी भी बुराइयों से मुक्त न हो सके। दूसरे, पोपशाही में होनेवाले संघर्षों के दमन के न हो सकने का एक कारण यह भी था कि पोपों का शासनकाल अत्यन्त सीमित होता था। अधिकतर एक पोप दस वर्ष तक पोप की गद्दी पर रहता था। दस वर्ष के अल्पकाल में कठोर से कठोर रोमन बैरनों के

एक दल का भी दमन न कर पाता था और यदि एक पोप बहुत प्रयास करके कोलोना के दल को तोड़ भी देता तो उसके बाद जो पोप गद्दी पर बैठता वह ओर्सिनी से रुष्ट होता। इसका परिणाम यह होता कि कोलोन का दल पुनः उभर आता और वह पोप फिर दोनों दलों को नियंत्रण में न रख पाता।

यही कारण था कि कुछ समय पूर्व तक पोप की राजसत्ता के क्षेत्र में अत्यल्प परवाह की जाती थी। इस स्थिति के बाद एलेक्जेण्डर षष्ठम का उत्थान हुआ। एलेक्जेण्डर षष्ठम ने अपने कार्यों से यह बतला दिया कि धन और बल की सहायता से कोई भी पोप किस प्रकार उभयपक्षों पर नियंत्रण रख सकता है। ड्यूक वेलेण्टाइन से मिल कर फ्रांसीसी आक्रमण के मौके का लाभ उठाकर पोप एलेक्जेण्डर षष्ठम ने वह सब कुछ किया जो ड्यूक के कार्यों की चर्चा करते हुए मैं पिछले अध्याय में बतला आया हूँ। हालाँकि एलेक्जेण्डर षष्ठम का उद्देश्य ड्यूक के राज्य का विस्तार करना था, गिरजे के राज्य का नहीं, लेकिन उसने जो कुछ भी किया उसका परिणाम यह हुआ कि गिरजे का शासित प्रदेश बढ़ा क्योंकि ड्यूक की मृत्यु के बाद वह सारा राज्य गिरजे का हो गया। इसके बाद पोप जूलियस द्वितीय गद्दी पर बैठा। पोप जूलियस ने अनुभव किया गिरजा काफी बलवान है। रोमना (Romagna) उसके कब्जे में है। सभी रोमन बैरन दबाये जा चुके हैं तथा दलबन्दी को पोप एलेक्जेण्डर बिलकुल ही खत्म कर गये हैं। उसने यह भी देखा कि धन संचय के ऐसे-ऐसे मार्ग पोप एलेक्जेण्डर खोल गये हैं जिनकी उनके पहले किसी पोप ने कोई कल्पना भी नहीं की थी। जूलियस ने पोप एलेक्जेण्डर द्वारा बतलाये गये मार्गों का अनुसरण करते हुए उस को उतना ही न रखा जितनी वह पहले थी, बल्कि उसे और बढ़ाया भी। पोप जूलियस ने बोलना (Bologna) पर कब्जा करने का निश्चय किया। वेनिशियनों को दबा दिया और फ्रांसीसियों को इटली से बाहर निकाल दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि उसने

जो-जो इरादे किये उन सबमें वह सफल हुआ। पोप जूलियस की जितनी भी प्रशंसा की जाय उतनी ही कम है क्योंकि उसने किसी की व्यक्तिगत शक्ति बढ़ाने की कोई चेष्टा नहीं की बल्कि समूचे गिरजे को बलवान बनाने का प्रयत्न किया। उसने ओर्सिनी और कोलोना के दलों को ठीक उसी स्थिति में रहने दिया जिस स्थिति में उसने उन्हें पोप की गद्दी सँभालते समय पाया था। हालाँकि उन दलों में भी कुछ ऐसे नेता थे जो परिवर्तन करना चाहते थे लेकिन वे सबके गिरजे की शक्ति से भयभीत रहते थे। दूसरा कारण यह भी था कि उन दलों में से कोई कार्डिनल नहीं था क्योंकि कार्डिनलों की वजह से ही झगड़े होते थे। कार्डिनलों के मतभेदों के कारण रोम और बाहर दोनों जगह दलबंदी हो जाती और झगड़े खड़े हो उठते। इस प्रकार बैरनों को विवश होकर उनकी रक्षा के लिए खड़ा होना पड़ता। अतः, प्रीलेटों की महत्वाकांक्षाओं के कारण बैरनों के बीच झगड़े-फसाद होते। इन दलों के किसी व्यक्ति के कार्डिनल न होने से झगड़ों की जड़ ही खत्म हो गयी और पोप लियो दशम (Pope Leo X) ने पोपशाही को अत्यन्त दृढ़ अवस्था में पाया। इससे आशा की जाती है कि पोप लिओ दशम भी पोपशाही को शस्त्रबल से अपनी योग्यता और गुणों से और दृढ़ तथा श्रद्धास्पद बनायेंगे।

सारांश

ड्यूक वेलेण्टाइन के सहयोग से एलेक्जेण्डर षष्ठम ने जिस प्रकार रोम की पोपशाही के आन्तरिक विद्वेषों का दमन किया, बाह्यशत्रुओं को मार भगाया तथा धन संचय किया, मैकियावली ने इस अध्याय में, उस पद्धति की प्रशंसा है। उसने पोप जूलियस द्वितीय की नीति की भी सराहना की है। अपने समय तक हुए पोपों में वह इन दोनों पोपों के कार्यों को आदर्श मानता है।

अध्याय १२

विभिन्न प्रकार की सेनाएँ और किराये के सैनिक

मुझे जिन-जिन राज्यों के सम्बन्ध में विचार करना था उन-उन राज्यों के गुणों पर विस्तारपूर्वक विचार कर चुका हूँ। अंशतः मैंने उनकी समृद्धि और असफलता के कारणों पर भी विचार कर लिया है। मैं यह भी बतला चुका हूँ कि उक्त प्रकार के राज्यों को प्राप्त करने की क्या पद्धतियाँ हो सकती हैं। इन सबके बाद यही बतलाना बाकी रह गया है कि इन राज्यों में रक्षात्मक और आक्रमणात्मक कार्यों के करने की क्या पद्धतियाँ हो सकती हैं जिनका उपयोग उक्त प्रकार के राज्यो में किया जा सकता है। हम यह तो बतला ही चुके हैं कि प्रत्येक नरेश के लिए अपने राज्य की नींव मजबूत रखना कितना जरूरी है जिसके अभाव में उसका नष्ट हो जाना बिलकुल निश्चित है। राज्य चाहे नया हो या पुराना हो या मिश्रित हो, हर एक तरह के राज्य की नींव की मजबूती दो बातों पर निर्भर करती है। पहली बात है :— अच्छी विधियाँ (Good Laws) होना और दूसरे अच्छे सैनिक होना। मैं यहाँ पहले विधियों की चर्चा नहीं करूँगा अपितु पहले सेना के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करूँगा।

कोई भी नरेश अपनी सम्पत्ति और अपने राज्य की रक्षा या तो अपने सैनिकों की सहायता से करता है या किराये के, या अपने सहायकों के सैनिको द्वारा अथवा एक मिलीजुली सेना की सहायता से। किराये के सैनिकों तथा सहायकों की सैनिकों की फौजें अनुपयोगी और खतरनाक होती हैं। यदि कोई भी इन सेनाओं के भरोसे रहता है तो अपनी स्थिति के सम्बन्ध में वह कभी भी निश्चिन्त नहीं हो सकता, क्योंकि ये फौजें

सदैव असंघटित, महात्वाकांक्षी, अनुशासनहीन, विश्वासघाती, मित्रों के बीच शेर और शत्रुओं के सामने आ जाने पर गीदड़ बन जाती हैं। उन्हें ईश्वर का कोई भय नहीं होता। वे किसी के विश्वास की रक्षा नहीं करतीं। इन सेनाओं पर भरोसा करने के बाद सर्वनाश की घड़ी तभी तक टली समझनी चाहिए जब तक आक्रमण नहीं होता। शांतिकाल में ये फौजें आपका खजाना खा-खाकर खाली कर देंगी और युद्धकाल में शत्रु आपको लूट ले जायगा। इसका कारण यह है कि उनके हृदय में न तो ऐसा कोई प्रेम होता है और न कोई ऐसा लक्ष्य जिसके लिए वे युद्धक्षेत्र में डटे रहें। उन्हें जो वेतन मिलता है, वह इतना थोड़ा होता है कि उसके लिए वे अपनी जान नहीं दे सकते। वे उस समय तक आपके सैनिक बनने के लिए बिलकुल तैयार रहेंगे जब तक आप युद्ध नहीं करते लेकिन जब युद्ध होता है तो वे या तो वहाँ रहेंगे ही नहीं जहाँ लड़ाई हो रही होगी या आपका साथ छोड़ कर ही भाग जायँगे। मुझे इस बात को सिद्ध करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए क्योंकि इटली के सर्वनाश का कारण और कुछ नहीं, केवल ये किराये के सैनिक ही हैं जिन पर बहुत अधिक निर्भर रहा गया है। इन सेनाओं की सहायता से कुछ व्यक्तियों को शक्ति प्राप्त करने में अवश्य मदद मिली और उस समय इनमें कुछ साहस भी प्रतीत हुआ जब इनका मुकाबिला अपनी बराबरी वाली सेनाओं से हुआ, किन्तु जब ये सेनायें विदेशियों के सामने गयीं तो इनकी अनुपयोगिता और निरर्थकता बिलकुल सिद्ध हो गयी। यही कारण है कि फ्रांस के राजा चार्ल्स को इटली पर कब्जा कर लेने में कोई कठिनाई ही अनुभव नहीं हुई। कुछ लोगों ने चार्ल्स की विजय का कारण हमारे पापों को बतलाया। उनका कहना सच था लेकिन वस्तुतः हमने वे पाप नहीं किये थे जिनकी चर्चा उन्होंने की थी वरन् वे पाप किये थे जिनकी चर्चा ऊपर की पंक्तियों में मैंने अभी-अभी की है। चूँकि यह पाप नरेशों ने किया था, इसलिए उनको भी इसका परिणाम भोगना पड़ा।

मैं इस तरह की सेनाओं के दोषों की अभी और अधिक विवेचना करूँगा। किराये की सेनाओं के नेता या बहुत योग्य होते हैं या बिलकुल योग्य नहीं होते। यदि वे योग्य होते हैं तो भी आप उन पर भरोसा नहीं कर सकते क्योंकि उनकी आकांक्षा सदैव अपनी महत्ता बढ़ाने की होती है। या तो वे अपने स्वामी अर्थात् आपको दबायेंगे या वे ऐसे लोगों को दबायेंगे जिनका दमन करना आप उचित नहीं समझते। लेकिन यदि उन सेनाओं का नेता सामान्यतः कोई योग्य व्यक्ति नहीं है तो वह निश्चय ही आपका नाश कर डालेगा। यदि कोई मेरी इस बात के विरुद्ध यह कहे कि जिस सेना का नेता अयोग्य है। वही सेना अपने स्वामी का नाश करा देगी चाहे वह किराये की हो या न हो, तो मैं इसका उत्तर यह दूँगा कि चूँकि सेनाओं का उपयोग या तो गणतंत्रों द्वारा किया जाता है या नरेशों द्वारा, अतः, सेनाओं का नेतृत्व करने स्वयं नरेश को जाना चाहिए और गणतंत्र को अपने ही नागरिक युद्धक्षेत्र में भेजने चाहिए। यदि भेजे गये आदमी अयोग्य सिद्ध होते हैं तो उनको अवश्य ही बदल दिया जाना चाहिए और यदि वे योग्य हों तो विधियों की सहायता से उन्हें कुछ निश्चित मर्यादा-रेखाओं के आगे जाने से रोका जा सकता है। यह अनुभूत बात है कि केवल सशस्त्र गणतंत्र और नरेश ही बहुत तेजी से प्रगति करते हैं। भाड़े की सेनाओं से हानि के अलावा अन्य कोई लाभ नहीं होता। जो गणतंत्र विदेशी सेनाओं द्वारा रक्षित होता है उसकी तुलना में वह गणतंत्र जिसकी अपनी सेनाएँ होती हैं, अपेक्षाकृत कम सरलता से अपने ही एक नागरिक का शासन स्वीकार करता है।

रोम और स्पार्टा कई शताब्दियों तक स्वतंत्र और सशस्त्र रहे। स्विस भी सशस्त्र रहते हैं और वे विपुल स्वतंत्रता का उपभोग करते हैं। प्राचीनकाल में कार्थेजवासी भाड़े की सेनाएँ रखते थे जिसका नतीजा यह हुआ कि कार्थेजवासियों को वही सैनिक अनावश्यक रूप से दबाते थे। रोमनों से प्रथम युद्ध होने के बाद भी कार्थेजवासियों की सेनाओं के नेता अपने नागरिक नहीं थे। एपामिनोनडस (Epaminondas)

की मृत्यु से **थेबीज** के निवासियों ने **मेसीडोनिया के फिलिप** (Philip of Macedonia) को अपनी सेनाओं का नेता बनाया। फिलिप ने पहली ही विजय के बाद थेबीजवासियों को दबाना शुरू कर दिया। मिलन के निवासियों ने **ड्यूक फिलिप** की मृत्यु के बाद वेनिशियनों के विरुद्ध **फ्रांसेस्को स्फोरजा** को भाड़ा देकर अपना नेता बनाया। स्फोरजा ने **केरावेग्गियो** (Caravaggio) में अपने शत्रुओं को परास्त करने के बाद मिलन के निवासियों के शत्रुओं से मिलकर अपने उन अनुयायियों को ही दबाना शुरू कर दिया जिन्होंने उसे नेता बनाया था। इस स्फोरजा के पिता नेपिल्स की **रानी जियोवाना** (Queen Giovanna) के यहाँ सैनिक थे। एक दिन अकस्मात् इन्होंने रानी का साथ छोड़ दिया और रानी निःशस्त्र हो गयी। अपनी इस स्थिति से विवश होकर और अपने राज्य को बचाने के लिए रानी को **एरागॉन के राजा** (The King of Aragon) की शरण में जाना पड़ा। यदि वेनिशियनों और फ्लोरेंसवासियों ने भाड़े की सेनाओं की सहायता से अपना राज्य बढ़ा लिया और उन सेनाओं के सेनापतियों में अपने आपको राजा न बनाकर अपने मालिकों की रक्षा की तो इसका कारण यह था कि फ्लोरेंसवासियों को संयोगवश ही कोई कटु अनुभव नहीं हुआ। जिन सेनापतियों से फ्लोरेंसवासियों को भय हो सकता था और जो सचमुच योग्य थे, उनमें से कुछ तो जीते ही नहीं, कुछ का विरोध किया गया और कुछ ने अपनी महत्वाकांक्षाओं की दिशा ही बदल दी। जो सेनापति नहीं जीते उनमें एक **सर जॉन हॉकवुड** (Sir John Hawkwood) भी थे, उनकी विनयशीलता के बारे में हमें अधिक ज्ञान नहीं है, लेकिन यह बात प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि यदि वे जीत गये होते तो सारे फ्लोरेंसवासी उन्हीं की कृपादृष्टि के भिखारी हो जाते। **स्फोरजा** तथा **ब्रेकसेशी** में सदैव प्रतिस्पर्धा रहती थी, इस वजह से वे एक दूसरे का बराबर नियन्त्रण और सन्तुलन करते रहते थे। फ्रांसिस्को ने बाद में लम्बार्डी प्रान्त अपनी

महत्वाकांक्षा बना ली, और ब्रेशियो गिरजा और नेपिल्स के राज्यों से भिड़ गया।

लेकिन जरा हम देखें कि कुछ ही समय पूर्व क्या हुआ था। फ्लोरेंस निवासियों ने **पाओलो विटेली** को अपना सेनापति नियुक्त किया था। यह व्यक्ति बड़ा ही बुद्धिमान था और इसने एक बहुत ही छोटे पद से बहुत ऊँचा और सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त किया था। यदि उसने पीसा ले भी लिया तो भी यह बहुत ही आवश्यक था कि फ्लोरेंसवासी उससे अपनी मित्रता बनाये रखते क्योंकि यदि वह किसी तरफ फ्लोरेंस के शत्रुओं से मिल जाता तो फ्लोरेंस के पास उसका मुकाबिला करनेवाला कोई आदमी न था और यदि वे उसको रोकते तो उन्हें **पाओलो विटेली** की आज्ञाएँ मानने के लिए विवश होना पड़ता। यदि हम वेनिशियनों की तरफ ध्यान दें तो हमें ज्ञात होगा कि वे उस समय तक बराबर प्रगति करते रहे जब तक उन्होंने अपनी सेनाओं की सहायता से युद्ध किये। जब तक वे इटली में नहीं घुसे उनकी सेनाओं में केवल वेनिसवासी ही रहा करते थे। इटली की भूमि पर युद्ध आरम्भ करने के बाद उन्होंने भाड़े के सैनिक रखने की प्रथा का अनुसरण किया। जब उन्होंने इटली में विजय प्राप्त करनी आरम्भ की उस समय उनको अधिक भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि उनका राज्य क्षेत्र बहुत विस्तृत न था और मान बहुत अधिक था लेकिन जब वेनिस का राज्य बढ़ा, जैसा कि **कारमागनोला** (Carmagnola) के काल में हुआ, तब उन्होंने अपनी भूल अनुभव की। **ड्यूक मिलन** को परास्त करने के बाद वेनिशियनों ने एक ओर तो देखा कि वह बहुत अधिक बलवान हो गया है और दूसरी ओर यह अनुभव किया कि वह युद्ध करने में बड़ा तेज है, अतः, उन्होंने तय कर लिया कि वे उसके द्वारा अन्य कोई विजय पाने की चेष्टा नहीं करेंगे। लेकिन वे कारमागनोला का न तो पदच्युत कर पाये और न ऐसा कर ही सकते थे क्योंकि यदि ऐसा किया जाता तो बहुत सम्भव

था कि वेनिसवासियों ने जो कुछ प्राप्त किया था वह उनके हाथ से निकल जाता। परिणाम यह हुआ कि उससे मुक्ति पाने के लिए उन्हें अपने विजयी सेनापति को मौत के घाट उतार देना पड़ा। इसके बाद वेनिस-वासियों के पास बार्टोलोमेमोडा बरगेमो, राबर्टो डा सान सेवेरिनो, काउण्ट डी पिटिलिआनो आदि जैसे सेनापति रह गये जिनसे वेनिसवासियों को हमेशा यही भय बना रहा कि कहीं वे सारा गुड़ गोबर न कर दें और हुआ भी ऐसा ही। वेला (Vaila) के युद्ध में एक दिन में इन सेनापतियों ने इतना नुकसान कर दिया जितना वेनिसवासी ८०० साल के संघर्ष के बाद प्राप्त कर पाये थे। भाड़े की सेनाओं से प्राप्तियाँ तो बहुत अल्प और धीरे-धीरे होती हैं लेकिन हानियाँ अकस्मात् और बहुत बड़ी हो जाती हैं। मैंने यह उदाहरण इटली के ही दिये हैं क्योंकि इटली में भाड़े की सेनाओं से कई बरसों से काम लिया जा रहा है। अब मैं कुछ ऐसे भी उदाहरण दूँगा जिससे भाड़े की सेनाओं की उत्पत्ति और विकास को जान लेने के बाद उनकी त्रुटियों को भली भाँति दूर किया जा सके।

आपको यह भलीभाँति समझ लेना चाहिये कि इधर अभी हाल ही में जब साम्राज्य विघटित होने लगे और पोप की राजसत्ता के क्षेत्र में प्रबलता बढ़ने लगी तो इटली बहुत से छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। कई बड़े-बड़े नगरों ने अपने शासक सामन्तों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। ये नगर सम्राट् की अनुमति से उक्त सामन्तों के शासनान्तर्गत थे। गिरजा ने भी नगरों को विद्रोह के लिए उत्साहित किया क्योंकि इनसे राजनीतिक मामलों में उसकी शक्ति बढ़ रही थी। बहुत से नगरों में नगरवासियों से ही एक व्यक्ति शासक बन बैठा। फलतः, इटली करीब-करीब गिरजा और कुछ गणतंत्रों के हाथ में चला गया। लेकिन नागरिकों में से जो नरेश बन बैठे थे उन्हें और पादरियों को शस्त्रों के उपयोग का तो अभ्यास न था, इसलिये उन्होने विदेशियों को किराये पर लड़ने के लिए बुलाना शुरू कर दिया। भाड़े की सेना को सबसे पहले जिस व्यक्ति ने संगठित किया उसका नाम एलबेरिगो डा कोमो (Alberigo da Como) था।

यह रोमना का रहनेवाला था। बेशियो और स्फोरजा ने, जो उन दिनों इटली के पंच थे, अन्य लोगों के साथ इस प्रकार की सेनाओं को प्रशिक्षित किया। उनको बाद से अब तक वे लोग हुए जिन्होंने इटली की सेनाओं का सेनापतित्व किया। उनके इस सत्प्रयास का परिणाम यह हुआ कि चार्ल्स ने सम्पूर्ण इटली को परास्त कर दिया। लुई ने अपने शोषण का शिकार उसे बनाया। फेरेण्डो ने आतंकित किया और स्विटजरलैंड ने इटली का अपमान किया। भाड़े की सेनाओं के सेनापति पैदल सैनिकों को बदनाम करके खुद यश लूटना चाहते थे। उन्होंने ऐसा इसलिये किया क्योंकि उन सेनापतियों का अपना कोई स्थान न था जहाँ रह कर वह अपनी गुजर लायक धन कमा सकते। कुछ पैदल सैनिकों से उनके मान तथा उनकी प्रतिष्ठा में कोई वृद्धि न होती। वे बहुत अधिक पैदल सैनिक रख भी न सकते थे। फलतः उन्होंने अपना सारा ध्यान घुड़सवार सेना पर ही केन्द्रित रखा। ऐसे सैनिकों को कम संख्या में रखने पर भी काम चल जाता था और उनको पर्याप्त वेतन भी दिया जा सकता था। इन लोगों ने यह हालत कर रखी थी कि २०,००० की सेना में २,००० पैदल सैनिक भी मिलने मुश्किल थे। इन लोगों ने अपनी जानें बचाने का भी प्रत्येक साधन जुटा लिया था। जब ऐसी दो सेनाओं में परस्पर संघर्ष होता तो वे एक दूसरे को मारने के बजाय कैद कर लेते थे। रात में वे किसी भी किले पर हमला नहीं करते थे। जो किले में रहते थे वे शिविरों में पड़े सैनिकों पर रात में हमला न करते थे। वे लोग अपने शिविरों के आसपास कोई बाधाएँ खड़ी न करते थे और न खाइयाँ ही खोदते थे। शीतकाल में युद्ध न करते थे। उनकी सैनिक संहिता में ये सब बातें मान्य थीं। इनका सब लोग पालन करते थे, जिससे मुसीबतों और कठिनाइयों से बच सकें। नतीजा यह हुआ कि उन्होंने इटली को गुलाम और पतित बना दिया।

सारांश

किराये की सेनाओं के दुर्गुणों को विस्तारपूर्वक बताते हुए

मैकियावली ने इस अध्याय में बुद्धिमान नरेशों को सलाह दी है कि वे किराये की सेनाओं पर भरोसा न करके अपनी सेनाएँ बनायें। उन सेनाओं की उत्पत्ति के इतिहास की विवेचना कर लेखक ने यह भी बतलाया है कि आरम्भ से ही भाड़े के सैनिक कितने भीरु, दब्बू और गलत काम करने वाले हुआ करते थे।

अध्याय १३

सहायक, मिश्रित और देशी सेनाओं के सम्बन्ध में

जब कोई अपने बलवान पड़ोसी से सहायता माँगता है और कहता है कि पड़ोसी अपनी सेनाओं को भेजकर उनकी रक्षा करे, तो वे सेनाएँ सहायक कहलाती हैं और उतनी ही बेकार होती हैं जितनी किराये की। अभी हाल ही में इस प्रकार की सहायता जूलियस ने प्राप्त की थी। जूलियस ने भाड़े की सेनाओं की दयनीय और दुखित कर देने वाली असफलताओं को देखकर फेरारा पर कब्जा करने के सिलसिले में स्पेन के राजा फेरण्डो (King Ferrando) से सैनिक सहायता माँगी। ये सेनाएँ अपने स्थान पर भले ही अच्छी हो लेकिन जो लोग उन्हें उधार माँगते हैं, उनके लिए हमेशा खतरनाक होती हैं। इसका कारण यह है कि यदि वे पिट जाती हैं तो आपकी पराजय हो जाती है और यदि वे जीत जाती हैं तो आप उनके बन्दी हो जाते हैं। हालाँकि प्राचीन इतिहास में ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं लेकिन मैं पोप जूलियस द्वितीय का ही उदाहरण दूँगा क्योंकि वह घटना अभी तक हम लोगों के दिमाग में ताज़ी है। जूलियस ने जो मार्ग अपनाया, वह मार्ग कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति नहीं अपनाता। उन्होंने फेरारा पर कब्जा करने के लिए अपने आपको पूर्णतः एक विदेशी के हवाले कर दिया। लेकिन सौभाग्यवश उसी समय एक ऐसी बात हो गयी जिसकी वजह से अपनी बुरी नीति के कुफलों को भोगने से जूलियस बच गये। जब रेवना (Ravenna) में स्पेन के राजा द्वारा भेजी गयी सहायक सेनाएँ हार गयीं, तो स्विस उठ खड़े हुए और उन्होंने विजेताओं को मार भगाया। परिणामतः सबकी और अपनी भी आशाओं के विरुद्ध जूलियस शत्रु के बन्दी न हो सके, जो भाग गया था और उनकी सहायक सेना

भी उन्हें कैदी न बना सकी क्योंकि असली विजय तो किसी दूसरी सेना के कारण ही मिली थी। फ्लोरेंसवासी बिलकुल निश्शस्त्र थे। इसलिये उन्होंने १०,००० फ्रेंच सैनिकों को पीसा पर आक्रमण कराने के इरादे से किराये पर बुलाया था। ऐसा करके उन्होंने अपने संघर्षकाल का सबसे बड़ा खतरा उठाया था। कुस्तुनतुनिया के सम्राट ने अपने पड़ोसियों का विरोध करने के लिये यूनान में १०,००० तुर्क भेज दिये थे। इन तुर्क सैनिकों ने युद्ध के समाप्त होने के बाद भी अपने घर जाना अस्वीकार कर दिया जिसका नतीजा यह हुआ कि यूनान इन विदेशी सैनिकों की दासता की शृंखलाओं में बँध गया।

और, जिसे विजय प्राप्त न करनी हो, उसे सहायक सेनाओं का प्रयोग करना चाहिए जो भाड़े की सेनाओं से भी कहीं अधिक खतरनाक होती हैं क्योंकि उनसे पूरा-पूरा सर्वनाश हो जाता है। वे संघठित होती हैं और किसी दूसरे की आज्ञाओं का पालन करती हैं। भाड़े की सेनाओं को तो विजय प्राप्त कर लेने के बाद भी अपने स्वामी को क्षति पहुँचाने के लिये कुछ समय की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि वह पहले सुसंघठित नहीं होतीं और उनको काम में लगाने वाले और रुपया देने वाले आप ही होते हैं। इसके अलावा भाड़े के सैनिकों के सेनापति को भी आप अलग से नियुक्त करते हैं। यह सेनापति इतनी जल्दी इतनी शक्ति नहीं प्राप्त कर सकता कि आपको नुकसान पहुँचा सके। इसके विपरीत सहायक सेनाओं के संबंध में ऐसी कोई बात नहीं लागू होती। एक शब्द में भाड़े की सेनाओं के उपयोग में सबसे बड़ा खतरा होता है उनकी कायरता और लड़ने में हिचकिचाहट लेकिन सहायक सेनाओं के उपयोग में सबसे बड़ा खतरा उनका साहस होता है।

अतः, प्रत्येक बुद्धिमान नरेश हमेशा इस तरह की सेनाओं के उपयोग से बचेगा और अपनी सेनाएँ बनायेगा और आवश्यकता पड़ने पर अपनी सेनाओं को साथ लेकर लड़ेगा और हार भी जायगा तो उसकी परवाह न करेगा लेकिन दूसरों की सेना या किराये की सेना की सहायता

से प्राप्त होने वाली विजय अपनी सच्ची विजय न मानेगा। इस मामले । मुझे सीजर बोर्जिया और उनके कार्यों के उदाहरण देने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं होती। सीजर बोर्जिया ने रोमना में सहायक सेनाओं के साथ प्रवेश किया। सबसे आगे फ्रांसीसी फौजें थीं और इन्हीं की सहायता से सीजर बोर्जिया ने इमोला (Imola) और फोर्ली (Forli) पर कब्जा किया। लेकिन इसी बीच सीजर बोर्जिया को लगा कि ऐसा करना खतरनाक होगा। इसलिए उसने फ्रांसीसी फौजों की मदद लेना बन्द कर दिया और उसने ओर्सिनी और विटेली की सेनाओं को भाड़े पर ले लिया। बाद में उसने अनुभव किया कि ये फौजें भी अविश्वासी और भयावह हैं, न जाने किस वक्त क्या कर बैठें, इसलिए उसने उनको भी हटा दिया और अपने ही आदमियों पर निर्भर रहने लगा। इन सेनाओं का अन्तर इसी से अनुभव किया जा सकता है कि जब सीजर बोर्जिया फ्रांसीसी सेना की सहायता से जीत रहा था उस समय उसकी इज्जत दूसरी थी, किराये की सेनाओं का उपयोग करने के बाद इज्जत दूसरी हो गयी और जब उसने अपनी सेना से युद्ध किये तो उसकी इज्जत बिल्कुल दूसरी ही हो गयी। हम देखते हैं कि हर परिवर्तन के बाद सीजर बोर्जिया की इज्जत बराबर बढ़ती ही चली गयी। उसका उतना अधिक सम्मान कभी नहीं हुआ जब लोगों ने देखा कि वह स्वयं ही अपनी सेनाओं का स्वामी है।

मैं अभी हाल ही के इटालियन उदाहरण देना बन्द नहीं करना चाहता लेकिन मैं सायराक्यूज के हीरो (Hero of Syracuse) की चर्चा करना भी इस स्थल पर भूल नहीं सकता। एक बार मैं पहले भी इसकी चर्चा कर चुका हूँ। जैसा कि मैंने बतलाया था सायराक्यूज के निवासियों ने इसे अपनी सेनाओं का अध्यक्ष बना दिया था। उसने अन्य सायराक्यूजवासियों के साथ भाड़े या किराये की सेनाओं की अनुपयोगिता को बहुत जल्दी समझ लिया था। जब वह स्वयं राजा हो गया तो उसे लगा की भाड़े की सेनाओं को रखना या बिलकुल हटा देना ये दोनों ही खतरे से खाली नहीं हैं। इसलिए उसने किराये की सेनाओं को कई

टुकड़ों में विभक्त कर दिया और आगे युद्ध केवल अपनी ही फौजों से किया—दूसरों की सेनाओं से कभी कोई सहायता न ली। इस संबंध में ओल्ड टेस्टामेंट की एक प्रतीकात्मक कहानी मेरे दिमाग में आ रही है। जब **डेविड ने सॉल** से कहा कि वह फिलस्तीन के चेम्पियन गोलियाथ से लड़ने को जाने के लिए तैयार है तो सॉल ने उसे प्रोत्साहित करने के लिए अपने शास्त्रास्त्र दे दिये। लेकिन डेविड ने जब उन शस्त्रों का प्रयोग किया तो उसने यह कर उन शस्त्रों को ले जाने से इन्कार कर दिया कि वह उनकी .सहायता से लड़ नहीं सकता। डेविड ने तय किया कि वह अपने चाकू और गोफन से ही लड़ेगा। संक्षेप में, दूसरे के शस्त्र या सेनाएँ या तो आपके कोई काम न आयेंगी या आप पर बोझ हो जायेंगी या फिर आपकी गति में बाधा डालेगी। लुइ एकादमा के पिता चार्ल्स सप्तम ने अपनी बहादुरी से फ्रांस को अँग्रेजों की दासता से छुड़ाया। चार्ल्स सप्तम ने भी यह अनुभव किया था कि प्रत्येक राजा के पास अपनी फौज होनी चाहिये। इसलिए उन्होंने सशस्त्र पैदल सेना बनायी थी। बाद में उनके पुत्र लुई ने इस सेना को विघटित कर दिया और **स्विस** लोगों को भाड़े पर सैनिक बनाने लगे। इसी भूल को अन्य लोग भी दूर न कर तदनुसार कार्य करते गये जिसका नतीजा यह हुआ कि पूरा का पूरा राज्य खतरे में पड़ गया। स्विसों को ही सैनिक बनाकर और अपनी पैदल सेना को विघटित करके फ्रांस ने अपने यहाँ के सब लोगों को बहुत ही अनुत्साहित कर दिया। स्वयं राज्याधिकारी अपनी रक्षा के लिए विदेशियों का मुँह ताकने लगे। सेनापतियों को स्विस सैनिकों को साथ लेकर युद्ध करने की ऐसी आदत पड़ गई कि उनके बिना वे समझने लगे कि वे किसी भी युद्ध में जीत ही नहीं सकते। इससे यह अर्थ निकाला जा सकता है कि फ्रांसीसी स्विस सैनिकों का मुकाबिला नहीं कर सकते और बिना स्विस सैनिकों की सहायता के वे किसी पर आक्रमण करने का साहस भी न कर सकेंगे। इस प्रकार फ्रांस की सेना मिश्रित प्रकार की सेना है। अंशतः इसमें भाड़े के सैनिक काम करते हैं अंशतः नियमित। कुल मिला

कर फ्रांस की सेना किसी भी सहायक सेना या किराये की सेना की तुलना में लाख दर्जे अच्छी है लेकिन राष्ट्रीय सेना के मुकाबिले में फ्रांस की सेना भी निकृष्ट है।

यदि चार्ल्स सप्तम की ही सैनिक परम्पराओं का पालन किया गया होता तो आज फ्रांस की रक्षा व्यवस्था अजेय होती। लेकिन लोग बहुधा बिना समझे-बूझे नयी-नयी बातें लागू करना चाहते हैं। नयी चीजें आरंभ में भली लगती हैं। इसलिए लोग उनके पीछे छिपे जहर को नहीं देख पाते, जैसाकि मैं घातक ज्वरों के संबंध में पहले इंगित कर चुका हूँ।

अतः जो भी नरेश अपने राज्य में पैदा होनेवाली बुराइयों को पैदा होते ही समझ नहीं लेता, वह बुद्धिमान नहीं है। इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार दिये जा सकते हैं। यदि हम रोमन साम्राज्य के पतन के प्रथम कारण पर दृष्टिपात करें तो इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि रोमन शासकों के पतन का पहला कारण गोथ सैनिकों का भाड़े पर रखा जाना था। जब से यह प्रथा शुरू हुई तभी से रोमन साम्राज्य की शक्ति घटनी शुरू हो गयी। साम्राज्य विस्तार से मिलनेवाले सारे लाभ गोथों के हाथ में जाने लगे।

अन्त में, मैं कहूँगा कि कोई भी नरेश बिना अपनी फौजों के सुरक्षित नहीं रह सकता। यदि वह भाड़े या किराये की फौजों पर निर्भर करता है। इसका यह अर्थ है कि उसने अपना भविष्य भाग्य के हवाले कर दिया है और उसके पास अपने विपत्तिकाल में रक्षा का कोई साधन नहीं है। बुद्धिमान पुरुष हमेशा कहते रहे हैं कि "जो अपने ऊपर भरोसा करता है, वही हमेशा सुरक्षित रहता है और दूसरों पर भरोसा करनेवाला अरक्षित।" किसी की अपनी सेना वह है जो या तो उसकी प्रजा, या नागरिकों अथवा उन लोगों की बनी होती है जो उस पर आश्रित रहते हैं। शेष सभी प्रकार की सेनाएँ भाड़े की या सहायक होती हैं। अपनी सेनाओं को संघटित करने की पद्धति भली-भाँति समझ में आ जायगी यदि उन चार नरेशों की कार्य-पद्धति का विस्तार-

पूर्वक अध्ययन किया जाय जिनकी चर्चा ऊपर मैंने की है। इसके अलावा सिकन्दर महान् के पिता फिलिप तथा अन्य बहुत से गणतंत्र और संप्रभु शासकों का भी इस मामले में अनुकरण किया जा सकता है। इन लोगों के संबंध में अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं है।

सारांश

जब किसी बलवान पड़ोसी राज्य से कोई निर्बल नरेश सैनिक सहायता लेता है तो जो सेना आती है वह सहायक सेना कहलाती है। जिन सैनिकों को कुछ धन देकर अस्थायी तौर पर लड़ाई या शान्ति के दिनों में किन्हीं खास उद्देश्यों के लिए रखा जाता है वह किराये या भाड़े की सेना होती है। नरेश की अपनी सेना वह होती है जिसके सैनिक या तो उसकी प्रजा होते हैं, आश्रित होते हैं या नागरिक होते हैं। मैकियावली का कहना है कि प्रथम दो प्रकार की सेनाएँ किसी भी नरेश का सर्वनाश करने के लिए पर्याप्त हैं जबकि तीसरे प्रकार की सेना ही राष्ट्रीय कही जा सकती है और उसी से राज्य की रक्षा की जा सकती है।

अध्याय १४

सेना संबंधी नरेश के कर्तव्य

इसलिए, एक नरेश को केवल युद्ध कला, सैनिक संघटन तथा उसके अनुशासन के अध्ययन करने की आवश्यकता है। उसे अन्य किसी भी कला को न तो सीखने की आवश्यकता है और न अन्य किसी विषय के अध्ययन करने की। यही एक ऐसा विषय और ऐसी कला है जो हर नेता या आदेश देनेवाले व्यक्ति को आनी चाहिए। यह एक ऐसा गुण है जिससे न केवल जन्मजात नरेशों की ही स्थिति सुदृढ़ नहीं हो जाती वरन् साधारण व्यक्ति भी यह योग्यता प्राप्त कर अत्यन्त उच्च-पद तक पहुँच सकता है। और जब कोई नरेश सेना के बजाय विलासिता पर अधिक ध्यान देता है तो उस नरेश के हाथ से राज्य बड़ी जल्दी निकल जाता है। राज्य के हाथ से निकलने का एक मुख्य कारण सैन्य-कला की उपेक्षा भी होता है। राज्य को प्राप्त करने की एक तरकीब यह भी है कि सैन्यकला में अधिक से अधिक दक्षता प्राप्त की जाय।

फ्रांसेस्को स्फोरजा एक साधारण व्यक्ति था लेकिन अपनी सैन्यकला की निपुणता के कारण ही वह मिलन का ड्यूक बन बैठा; उसके पुत्रों ने युद्ध से उत्पन्न होनेवाली क्लान्ति तथा कठिनाइयों से बचने की चेष्टा की वे ड्यूक के पदों से सामान्य व्यक्ति हो गये। निःशस्त्र होने की वजह से जो अन्य बुराइयाँ पैदा होती हैं, वह तो होती ही हैं लेकिन एक यह भी बुराई पैदा हो जाती है कि लोग आपको अपमान की दृष्टि से देखने लगते हैं। यह ऐसी खराब बात है जिसके विरुद्ध प्रत्येक नरेश को बहुत ही अधिक सावधान और सतर्क रहने की आवश्यकता है। सशस्त्र और निश्शस्त्र व्यक्ति में परस्पर कोई तुलना नहीं है; फिर भी यह साधारण सी बात है कि कोई भी सशस्त्र व्यक्ति निश्शस्त्र की आज्ञा क्यों मानेगा और यह सोचना भी ठीक नहीं है कि कोई निश्शस्त्र व्यक्ति

शस्त्रास्त्रयुक्त भृत्यों के बीच सुरक्षित रहेगा। एक तो अन्य लोगों को तुच्छ समझे और दूसरा शक्की हो, ऐसे दो आदमियों का साथ अधिक दिनों तक निभता नहीं है। अतएव, जो नरेश अज्ञानी होगा, उसे अन्य विपत्तियों के साथ ही, जिनकी पहले के अध्यायों में चर्चा की जा चुकी है, इस दुर्भाग्य का भी सामना करना पड़ेगा कि उसके सैनिक उसका ही सम्मान नहीं करेंगे। ऐसे नरेश पर सैनिकों को विश्वास भी न होगा।

इसलिए नरेश को युद्धाभ्यास से कभी विमुख नहीं होना चाहिए और शांतिकाल में तो उसे युद्धकाल से भी अधिक सैनिक अभ्यासों पर ध्यान देना चाहिए। वह ऐसा दो प्रकार से कर सकता है: अध्ययन द्वारा और सक्रिय अभ्यास द्वारा। जहाँ तक सक्रिय अभ्यास का संबंध है, वह इस प्रकार किया जा सकता है कि नरेश स्वयं शिकार खेलने जाय और अपने साथ सैनिकों को भी ले जाय। इससे शरीर कठिनाइयों का अभ्यस्त होता है और साथ ही सैनिक अनुशासित भी रहते हैं। शिकार के साथ ही नरेश अपने राज्य की भूमि के स्वभाव का भी भली भाँति अध्ययन कर सकता है। वह देख सकता है कि पहाड़ कितने ऊँचे हैं, घाटियाँ कैसी हैं, मैदान कहाँ-कहाँ हैं और नदियाँ तथा नाले कहाँ-कहाँ किस-किस प्रकार के हैं। इन सब बातों की ओर उसे बहुत ही अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। यह ज्ञान दो प्रकार से उपयोगी होगा। एक तो इस प्रकार कि नरेश अपने राज्य से परिचित हो जायगा और यह अधिक अच्छी तरह समझने लगेगा कि उसकी रक्षा किस प्रकार करनी चाहिए। एक स्थान का भली-भाँति ज्ञान हो जाने के बाद यदि किसी अन्य स्थान को उसी प्रकार जानने की आवश्यकता पड़ेगी तो उसकी जानकारी भी सरलतापूर्वक हो सकेगी। उदाहरण के लिए टस्कनी के पर्वत, घाटियाँ, मैदान और नदियाँ कुछ अन्य प्रान्तों से भी मिलती हैं। अतः एक स्थान का भली भाँति ज्ञान होने से दूसरे स्थान की भी तुलना द्वारा सरलतापूर्वक कल्पना की जा सकती है। जो नरेश इन बातों से अनभिज्ञ होगा समझ लीजिए उसमें नेता होने के प्रारंभिक गुण भी

नहीं है। भूमि के ज्ञान से ही आप शत्रु को ढूँढ़ सकते हैं, अपने ठहरने का स्थान निश्चित कर सकते हैं, सेना का नेतृत्व कर सकते हैं, युद्ध की योजना बना सकते हैं और लाभदायी ढंग से नगरों पर घेरा डाल सकते हैं।

एकआयी के (Achaei) के नरेश फिलोपोमेन (Philopoemen) की बहुत से लेखक जिन कारणों से प्रशंसा करते हैं उनमें एक कारण यह भी है कि शांतिकाल में भी युद्ध की पद्धतियों के अलावा और कुछ नहीं सोचा करता था। जब भी वह अपने राज्य में दौरा करता और उसके साथ कुछ मित्र भी होते तो वह बहुधा किसी भी स्थान पर चलते-चलते रुक जाता और उनसे पूछता : यदि शत्रु उस पर्वत पर हो और हम लोग यहाँ अपनी सेनाओं सहित पहुँच जायँ तो हम में से कौन फायदे में रहेगा ? हम शत्रु तक अपनी सेना को व्यवस्थित रखे हुए किस प्रकार पहुँच सकते हैं ? यदि हम पीछे हटना चाहें तो हमें क्या करना चाहिये ? यदि वे अर्थात् शत्रु पीछे भागें तो हमें उनका पीछा किस प्रकार करना चाहिये ? और इसके बाद वह उन समस्त स्थितियों को चलते-चलते उन लोगो के सामने रख देता था जो शत्रु का सामना करने वाली किसी भी सेना के समक्ष उत्पन्न हो सकती थीं। इसके बाद अन्य लोगों की रायें सुनता। अपनी भी राय देता और अपनी राय की पुष्टि के लिए सबल तर्क देता। इस अभ्यास का परिणाम यह हुआ कि ऐसी कभी कोई घटना नहीं हुई जिसके लिए वह अपनी सेनाओं का नेतृत्व करते समय तैयार न हो। लेकिन प्रत्येक नरेश को। अपने मानसिक अभ्यास के लिए इतिहास का तथा महापुरुषों के चरितों का निरन्तर अध्ययन करते रहना चाहिये कि उन्होने युद्ध में किस प्रकार की पद्धति का अनुकरण किया, उनकी जीतों के कारणों की परीक्षा करनी चाहिये। यदि पराजय हुई तो उनके भी कारणों का अनुसंधान करना चाहिये। ऐसा करने से नरेश को उन पद्धतियों का तो अनुकरण करना चाहिये जिनसे उनकी जीत हुई हो और उन गलतियों से बचना चाहिये जिनकी वजह से हार हुई हो। इसके अतिरिक्त वैसा

ही आचरण अपनाने की चेष्टा करनी चाहिए जैसा कि कुछ लोगों ने किया हो और जो उसकी बदौलत महान बन गये हों। उदाहरण के लिए, कहा जाता है कि, सिकन्दर महान ने एकीलीज (Achilles) सीजर एलेक्जेण्डर (Caesar Alexander) और सिपियो साइरस (Scipio Cyrus) को आदर्श माना था और उनके चरितों का अनुकरण किया था। ऐसे महान व्यक्ति के चरित का, जिसने तीन-तीन नायकों के कार्यों को आदर्श बनाया हो। हरएक बुद्धिमान नरेश को अनुकरण करना चाहिये और उसके कार्यों को सदैव ध्यान में रखना चाहिये। जेनोफन (Xenophon) द्वारा लिखित सीपियों की जीवनी जो पढ़ेंगे वे देखेंगे कि सीजर एलेक्जेण्डर के आदर्शों का उसने किस प्रकार अनुकरण किया, कितनी शुचिता से विनयशीलता, मानवता और उदारता से सीपियों ने अपने पूर्ववर्ती का अनुकरण किया।

प्रत्येक बुद्धिमान नरेश को इस प्रकार कार्य करना चाहिए और शांति-काल में भी कभी हाथ पर हाथ रख कर नहीं बैठना चाहिये। इसके विपरीत अत्यन्त परिश्रमपूर्वक उस समय का अच्छा उपयोग करना चाहिये जिससे यदि भाग्य कभी पलटे तो वह उस नरेश को अपने प्रहार सहने के लिए तैयार पाये और देखे कि विपत्ति में भी विजय उसी की होती है।

सारांश

बुद्धिमान नरेश को युद्ध और सैन्यकला के अध्ययन और अभ्यास पर सबसे अधिक ध्यान देना चाहिये। सक्रिय अभ्यास के लिये तो उसे दौरों और शिकार वगैरह पर जाना चाहिये और मानसिक विकास के लिए इतिहास तथा वीरों की जीवनियों का अध्ययन करना चाहिये। इस प्रकार के निरन्तर के अभ्यास से कोई भी नरेश बड़ी से बड़ी विपत्ति का सामना करने योग्य सिद्ध हो सकता है। इस अध्याय को पढ़ कर हम यह कल्पना कर सकते हैं कि मैकियावली राज्य शासन की कला में भूगोल और इतिहास को कितना महत्व देता था।

अध्याय १५

वे बातें जिनके लिए व्यक्ति, विशेषकर नरेशों की प्रशंसा या निन्दा की जाती है

अब हमें यह देखना है कि अपनी प्रजा और अपने मित्रो के साथ किसी भी नरेश को किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए। मै जानता हूँ कि नरेशो के आचरणो के संबध में और भी बहुत से लोग लिख चुके हैं। मेरा इस संबंध में कुछ और लिखना इसलिए भी धृष्टतापूर्ण समझा जायगा क्योंकि मेरा दृष्टिकोण और मत अपने पूर्ववर्तियो से भिन्न है। लेकिन मेरा इरादा उन लोगो के लिए कुछ उपयोगी बातें लिखने का है जो उनको समझते हैं। मुझे कल्पना के बजाय वास्तविक सत्य की ओर जाना अधिक उचित प्रतीत होता है। हालॉकि ऐसे बहुत से लोग हैं जिन्होने गणतंत्र तथा अन्य प्रकार के ऐसे राज्यो की कल्पना की है जिनका कोई अस्तित्व ही नहीं रहा है और न जिनको कभी किसी ने देखा ही है; क्योकि हम जिस तरह रहते हैं वह उस आदर्श से बहुत दूर है जिस तरह हमे रहना चाहिए। जो व्यक्ति जो कुछ किया जाता है उसे न करके इसके पीछे भागेगा कि क्या किया जाना चाहिए, वह अपनी रक्षा का नहीं नाश का सबक सीखेगा। जो आदमी ऐसे लोगों में रहना चाहता है जो अनिवार्यतः अच्छे नहीं हैं और भलाई करना चाहता है, उसे एक न एक दिन दुख भोगना ही पड़ेगा। इसलिए जो नरेश अपने आपको दृढ़तापूर्वक प्रतिष्ठापित करना चाहता है उसे सीखना पड़ेगा कि वह भला किस प्रकार न बने और जब जैसी आवश्यकता पड़े अपनी योग्यता का प्रयोग करे या न करे।

इसलिए, केवल उन चीजों को छोड़कर जिनका संबंध केवल किसी काल्पनिक नरेश से ही हो सकता है और उनकी चर्चा करते हुए जो हर नरेश को वास्तविक चिन्ता का विषय होती है, मै कहता हूँ कि

सब आदमियों में, विशेषकर उच्चपदासीन नरेशों में कुछ ऐसे गुण या दुर्गुण होते हैं जिनकी वजह से उनकी या तो प्रशंसा की जाती है या निन्दा। इस प्रकार एक उदार समझा जाता है और दूसरा कंजूस; एक को दानी और दूसरे को लुटेरा; एक को निर्दयी और दूसरे को दयावान्; एक को वचन देकर उसे भंग करनेवाला और दूसरे को विश्वासयोग्य; एक को स्त्रैण और दूसरे को पुरुषोचित साहसयुक्त, भयानक और अति उत्साहवान; एक को विनयशील और दूसरे को घमण्डी; एक को वासनाओं का दास और दूसरे को सन्त; एक को स्पष्टवादी, दूसरे को मनघुन्ना (मन में बात रखनेवाला), एक को कठोर और दूसरे को सरल; एक को गंभीर और दूसरे को प्रसन्नचित्त; एक को धार्मिक और दूसरे को नास्तिक आदि समझा जाता है। मैं समझता हूँ कि यह प्रत्येक व्यक्ति स्वीकार करेगा कि प्रत्येक नरेश में उपरोक्त ऐसे सारे गुण होने चाहिए जिनकी वजह से उनकी प्रशंसा की जाय। लेकिन ये सारे गुण प्राप्त नहीं किये जा सकते या उनके अनुसार आचरण नहीं किया जा सकता क्योंकि मानवीय या भौतिक परिस्थितियाँ वैसी नहीं होतीं, इसलिए बुद्धिमान नरेश को इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि उसमें कोई ऐसी बुराई न आ जाय जिससे राज्य हाथ से निकल जाय। लेकिन राजा को ऐसी बुराइयाँ करने से डरना भी नहीं चाहिए जिनकी वजह से वह अपना राज्य सुरक्षित रख सके क्योंकि यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो जिनको लोग गुण समझते हैं यदि नरेश उनको राजनीतिक क्षेत्र में अपनाये तो उसका नाश हो जाय और इसी प्रकार यदि वह कुछ बुराइयों को अपनाये तो उसका राज्य अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित हो जाता है और उसकी समृद्धि होती है।

सारांश

नरेश को राज्य की रक्षा के लिए हर प्रकार से प्रयत्न करने चाहिए। केवल गुणों का ही नहीं यदि आवश्यक हो तो बुराइयों का भी सहारा लेना चाहिए।

अध्याय १६

उदारता और कृपणता

पूर्वोक्त गुणों में प्रथम के संबंध में अपना मत प्रकट करते हुए मैं कहूँगा कि किसी भी नरेश के लिए यह उचित होगा कि उसे उदार समझा जाय; फिर भी यदि आपने उसी तरह उदार बनाने का प्रयत्न किया जैसा कि इस शब्द की कल्पना से प्रकट होता है तो उससे आपको हानि होगी क्योंकि यदि गुणवान व्यक्तियों की भाँति उदार रहे तो लोग जान न सकेंगे और आपकी इसके विपरीत बदनामी हो जायगी। लेकिन जो जनता में उदार प्रसिद्ध होना चाहता है उसे अपनी उदारता प्रसिद्ध और विज्ञापित करने के प्रत्येक अवसर का पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिए। लेकिन उसे इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि उदारता का नाम रखने के लिये कहीं वह अपना सारा कोष ही न खाली कर दे। यदि वह ऐसा करेगा तो उसके जब सारे साधन समाप्त हो जायँगे तब उसे अपनी उदारता जारी रखने के लिए प्रजा पर भारी-भारी कर लगाने पड़ेंगे और जनता से हर प्रकार से धन वसूल करना होगा। इसका फल यह होगा कि प्रजा बहुत कर लगाने वाले नरेश से घृणा करने लगेगी और अधिक कर वसूल करने के कारण नरेश निर्धन समझा जायगा और निर्धन समझे जाने के कारण नरेश की प्रतिष्ठा कम हो जायगी। इस प्रकार उसकी उदारता का लाभ तो कुछ थोड़े से लोगों को मिलेगा और हानि बहुसंख्यकों को होगी। कहीं भी होने वाले थोड़े से उपद्रवों का भी उस पर असर होने लगेगा। हर संकट उसे महाविपत्ति जान पड़ेगा। यदि वह अपनी इस उदारता के दुर्गुण का अनुभव करके अपनी व्यवस्था बदलना चाहेगा तो लोग उसे कृपण कहने लगेंगे।

जो नरेश योग्यतापूर्वक उदारता का प्रकाशन न कर सके और उससे उत्पन्न होने वाले खतरों से सावधान रहना चाहे, उसे चाहिए कि वह कृपण कहे जाने पर बुरा न माने। यदि वह ऐसा करेगा तो कुछ काल बाद लोग उसे अधिक उदार समझने लगेंगे। जब उस नरेश के आलोचक यह देखेंगे कि उसका राजस्व पर्याप्त है, वह उन लोगों से राज्य की रक्षा कर सकता है जो उससे युद्ध करना चाहते हैं और कोई भी उद्योग बिना लोगों पर बोझ डाले आरंभ कर सकता है तो वे चुप हो जायँगे। इस प्रकार वह उन सब लोगों के लिए उदार हो जायगा जिनसे वह कर नहीं लेता और जिनकी संख्या बहुत है तथा केवल कुछ लोगों की दृष्टि में कृपण बना रहेगा। हमने अपने समय में बड़े-बड़े कार्य करते हुए उन्हीं लोगों को देखा है जिन्हें लोग कन्जूस समझा करते थे; अन्य सब का नाश हो गया। पोप जूलियस द्वितीय ने, जिनकी उदारता बड़ी प्रसिद्ध थी, गद्दी पर बैठने के बाद अपनी यह उदारता बन्द कर दी। ऐसा करके वे युद्धों की तैयारी कर सके। फ्रांस के वर्तमान नरेश ने जनता पर बिना कोई असाधारण कर लगाये कई युद्ध कर डाले हैं, क्योंकि युद्ध में उनका जो अतिरिक्त व्यय हुआ वह दीर्घकाल के मितव्यय से बचे हुए धन से पूरा हो गया। स्पेन के वर्तमान नरेश यदि अपनी उदारता विज्ञापित करते रहने के फेर में पड़े रहते तो वे बड़े-बड़े उद्योग आरम्भ ही न कर पाते और न उनको सफलता ही मिलती।

यदि कोई नरेश अपनी प्रजा को लूटना नहीं चाहता, यदि वह अपनी रक्षा करना चाहता है, यदि वह निर्धन होकर दूसरों का अपमान का पात्र होने से बचना चाहता है और विवश होकर धन का बलात् अपहरण करने वाला नहीं बनना चाहता तो यह कृपणता एक ऐसी बुराई है जो उसके शासन को दीर्घकालीन बनाने में सहायता करेगी। इन सब कारणों को दृष्टि में रखते हुए नरेश को अपने कृपण प्रसिद्ध होने की परवाह नहीं करनी चाहिये। यदि यह कहा जाय सीजर ने अपनी उदारता से साम्राज्य प्राप्त कर लिया और अन्य भी बहुत से लोगों ने उदार बनकर ऊँचे से

ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया तो मैं उसका यह उत्तर दूँगा कि या तो आप नरेश हैं या नरेश बन रहे हैं। यदि आप नरेश हैं तो उदारता हानि-प्रद है। यदि आप नरेश बनने का प्रयत्न कर रहे हैं तो फिर यह बहुत ही आवश्यक है कि आपको उदार समझा जाय। सीजर उन व्यक्तियों में था जो रोम पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहते थे लेकिन यदि रोम पर तथा पूरे रोमन साम्राज्य पर कब्जा स्थापित हो जाने के बाद भी वह उदारता ही का व्यवहार करता रहता और अपने खर्चों को न घटाता तो निश्चय ही वह साम्राज्य को नष्ट कर डालता। और यदि कोई यह कहे कि ऐसे बहुत से नरेश हुए हैं जिन्होंने अपनी सेनाओं के बल पर बहुत बड़े-बड़े काम किये फिर भी उन्हें उदार समझा जाता रहा तो मैं उत्तर दूँगा कि नरेश या तो अपना धन व्यय करता है, या अपनी प्रजा का अथवा दूसरों का। यदि वह अपना धन व्यय कर रहा है तो वह अवश्य ही कुछ न कुछ बचा रहा होगा और शेष धनराशि के लिए उसे उदार होना बहुत जरूरी है। जो नरेश अपनी फौजों के साथ आगे बढ़ रहा हो और जिसका खर्च लूटपाट, आदि से चल रहा हो, यदि वह उदारता न दिख-लायेगा तो उसके सैनिक उसके साथ न चलेंगे। और जब कोई सम्पत्ति आपकी या आपकी प्रजा की न हो तो आप अनिवार्यतः बहुत उदार बन सकते हैं। साइरस, सीजर और सिकन्दर आदि ने ऐसा ही किया था। कारण, दूसरों का धन खर्च करने से आपकी प्रतिष्ठा ही बढ़ेगी, घटेगी नहीं, लेकिन यदि आप अपने कोष का धन व्यय करेंगे तो इससे आपको हानि होगी। उदारता से उदारता का ही नाश होता है, क्योंकि अधिक उदार होने से आपकी उदारता शक्ति घटती है, परिणामतः या तो आप निर्धन होते जाते हैं या उससे बचने के लिए आपको लुटेरा बनना पड़ता है। दोनों ही दशाओं में आपसे आपकी प्रजा घृणा करने लगेगी। और नरेशों को जिस बात से अधिक बचना चाहिए वह यह है कि लोग उससे घृणा न करने लगें। और अति उदारता, किसी न किसी रास्ते आपको इसी हद तक पहुँचा देगी। इसलिए कृपण होना उदार होने से कहीं अधिक

अच्छा है। कृपण होने की वजह कुछ दिन तो अवश्य ही लोग अवहेलना की दृष्टि से देखेंगे लेकिन वे आपसे घृणा नहीं करेंगे लेकिन यदि आपःउदार होने के बाद दूसरों से बलात् धन वसूल करने के लिए विवश हुए तो आपकी अवमानना भी होगी और लोग आपसे घृणा भी करने लगेंगे।

सारांश

सामान्य व्यक्ति के लिए उदारता स्पृहणीय गुण है। इस दृष्टि से राजा को भी उदार होना चाहिए। लेकिन राजा की उदारता से राजकोष रिक्त हो सकता है और राजकोष की रिक्तता का अर्थ नरेश का निर्धन हो जाना है। निर्धन राजा का सम्मान नहीं होता। ऐसे राजा को अपना व्यय चलाते रहने के लिए या तो भारी कर लगाने पड़ते हैं या बलात् धन वसूल करना पड़ता है जिसके फलस्वरूप प्रजा राजा से घृणा करने लगती है। ऐसे राजा का शासन, जिससे उसकी प्रजा घृणा करती हो अधिक दिन नहीं चल सकता। इसलिए मैकियावली ने बुद्धिमान नरेशों को सलाह दी है कि वे कृपणता से काम लें।

अध्याय १७

क्रूरता और क्षमाशीलता के संबंध में, और प्रेम किया जाना अच्छा है या ऐसा होना जिससे सब भयभीत रहें ?

ऊपर मैंने जिन गुणों के नाम लिखे हैं, उनको दृष्टि में रखते हुए मैं कहूँगा कि प्रत्येक नरेश को दयावान होने की आकांक्षा करनी चाहिए, क्रूर नहीं। लेकिन नरेश को यह ध्यान रखना होगा कि उसकी क्षमाशीलता का कोई अनुचित लाभ न उठाये। **सीजर बोर्जिया** को बड़ा क्रूर समझा जाता था लेकिन उसकी क्रूरता से **रोमना** (Romagna) में व्यवस्था स्थापित हो गयी। रोमना का एकीकरण हो गया, शांति हो गयी। यदि कोई इस तथ्य पर ध्यान से विचार करे तो प्रतीत होगा कि वह फ्लोरेंसवासियों से अधिक दयावान था, जिन्होंने क्रूरता से बचने के लिए **पिस्टोइया** (Pistoia) का नाश हो जाने दिया। इसलिए किसी भी राजा को अपनी प्रजा का राजभक्त और एक बनाये रखने के लिए कठोर और क्रूर होने का अभियोग स्वीकार कर लेने से डरना नहीं चाहिए; क्योंकि कुछ उदाहरणों को छोड़कर वह उन लोगों से कहीं अधिक दयालु है, जो अत्यधिक क्षमाशीलता दिखला कर अव्यवस्था उत्पन्न होने देते हैं, और जिससे रक्तपात और लूटपाट को प्रोत्साहन मिलता है और जिसकी वजह से सारे समाज को क्षति पहुँचती है जबकि नरेश द्वारा दिये गये प्राणदण्डों से केवल कुछ ही व्यक्तियों को हानि होती है। नये राज्यों में हमेशा अधिक खतरे होते हैं, इसलिए नये नरेश को तो क्रूर होने से कभी नहीं डरना चाहिए। इसीलिए **वर्जिल** ने डीडो के मुँह से अपनी एक काव्य-कृति में क्रूरता का समर्थन कराया है।

फिर भी विश्वास करने और कोई कार्य कर डालने के मामले में नरेश को सबसे अधिक सावधान रहने की आवश्यकता है। इतने पर भी उसे इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि कहीं वह अपनी छाया

से भी न डरने लगे। और हमेशा संयत भाव से बुद्धिमत्ता और मानवीयतापूर्ण व्यवहार करता रहे। इसका भी ध्यान रखना चाहिए कि बहुत अधिक विश्वास करने की प्रवृत्ति उसे कहीं असावधान न बना दे और बहुत अधिक अविश्वास के कारण कहीं वह असहिष्णु न हो जाय।

यहाँ पर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि नरेश को ऐसा बनना चाहिए जिससे सब लोग उसे प्रेम करें या ऐसा जिससे भयभीत रहें, या प्रेम करने से ज्यादा उससे भय खायें। इसका उत्तर यह है कि नरेश को ऐसा बनना चाहिए जिससे उसे लोग प्रेम भी करें और डरें भी। लेकिन ये दोनों गुण एक साथ ही प्रत्येक व्यक्ति में नहीं हो सकते, इसलिए यदि दोनों में से किसी एक को छोड़ना पड़े तो यही ज्यादा अच्छा होगा कि लोग आपसे प्रेम करने के बजाय भयभीत रहें। कृतघ्नता, वाचालता, कपटता, लोभीपन आदि ही मनुष्य का स्वभाव होता है। वह खतरों से बचना चाहता है। जब तक आपसे उनको लाभ होगा वे आपके पीछे लगे रहेंगे। वे अपना खून भी बहाने के लिए तैयार रहेंगे। अपना धन, सम्पत्ति, जीवन, कुटुम्ब और परिवार सब छोड़कर आपकी सेवा की प्रतिज्ञा करेंगे—लेकिन तभी तक जब तक इन सब के त्याग की कोई आवश्यकता न पड़ेगी और संकट दूर रहेगा लेकिन जहाँ आप पर विपत्ति आयी कि वे विद्रोह कर देंगे। और जो नरेश केवल उन लोगों के शब्दों पर भरोसा करके अन्य कोई तैयारी न करेगा वह कठिनाई उपस्थित होते ही उसमें बह जायगा और नष्ट हो जायगा; क्योंकि जो मित्रता खरीदी जाती है, अपने आप नहीं होती वह मित्रता कभी भी विश्वास करने योग्य नहीं है और उससे किसी भी प्रकार की आशा न करनी चाहिए। जिस आदमी से लोग भयभीत रहते हैं उसकी अपेक्षा जिससे वे प्रेम करते हैं उसके दोषों की तरफ इंगित करने का उनका कम साहस होता है। प्रेम तभी तक रहता है जब तक स्वार्थ सधता है और क्योंकि मनुष्य स्वार्थी होता है, इसलिए जब भी वह यह देखता है कि उसका स्वार्थ नहीं सिद्ध हो रहा, वह विद्रोह कर देता है। लेकिन भय दण्ड की

सहायता से उत्पन्न किया जाता है, इसलिए भय कभी भी अपना असर कम नहीं होने देता।

फिर भी, नरेश को इसका ध्यान रखना चाहिए कि लोग उससे इस तरह डरें कि यदि वे उससे प्रेम न भी करने लगें तो कम से कम उससे घृणा भी न करें; क्योंकि यह संभव है कि भयभीत रहने के साथ ही लोग किसी नरेश से घृणा न करें। यह लक्ष्य वह प्राप्त कर लेगा जो अपने राज्य के नागरिकों या प्रजा की सम्पत्ति में कोई हस्तक्षेप न करेगा। यह भी आवश्यक है कि वह अपनी प्रजा की स्त्रियों से भी कोई छेड़छाड़ न करे। यदि नरेश को किसी के प्राण लेने की आवश्यकता पड़ जाय तो उसे ऐसा उसी अवस्था में करना चाहिए जब वैसा करने का कोई औचित्य हो। जब किसी को प्राणदण्ड दिया जाय तो उसके कारण की घोषणा करा दी जाय। लेकिन हर दशा में उसे किसी की सम्पत्ति कभी न लेनी चाहिए क्योंकि लोग अपने पिता की मृत्यु को भूल जाते हैं लेकिन पैतृक सम्पत्ति के चले जाने को कभी नहीं भूलते। इसके अलावा सम्पत्ति पर कब्जा कर लेने का कोई न कोई बहाना सदैव मिल जायगा और जो नरेश दूसरों की सम्पत्ति की लूटपाट पर रहना शुरू कर देगा वह हमेशा कोई न कोई ऐसा कारण खोज निकालेगा जिससे दूसरों की सम्पत्ति हड़प ले। जबकि प्राणदण्ड देने के कारण बहुत थोड़े हो सकते हैं और उन अभियोगों का सिद्ध होना भी कठिन होता है जिनके लिए प्राणदण्ड दिया जा सकता है।

लेकिन जब कोई नरेश अपनी सेना के साथ हो और उसके साथ बहुत से सैनिक हों तो यह बहुत ही आवश्यक है कि वह क्रूर हो जाने की जरा भी परवाह न करें; क्योंकि जब तक वह क्रूर प्रसिद्ध न होगा तब तक वह न तो अपनी सेना को ही संघटित रख सकेगा और न उससे कोई काम ही ले सकेगा। हैनीबाल की एक जबर्दस्त योग्यता यह भी थी कि बहुत बड़ी सेना के होते हुए भी जिसमें सभी राष्ट्रों के सैनिक काम करते थे और विदेशों में लड़ते थे, उनमें आपस में या

किसी नरेश के विरुद्ध कभी कोई मतभेद पैदा ही नहीं हुआ; चाहे वे अच्छे समय से गुजरे हों या बुरे से। यह सफलता उसे तभी मिल सकी जब उसने अमानवीय क्रूरता का परिचय दिया। यह क्रूरता अन्य बहुत से गुणों से मिलकर उसे हमेशा ऐसा बनाये रखतीं थीं कि सारी सेना के अफ़सर और सैनिक न केवल उसका सम्मान ही करते थे बल्कि उसे देखकर थर-थर काँपते भी थे। यदि वह इतनी क्रूरता न दिखलाता होता तो उसके अन्य गुण भी इतने प्रभावशाली न हो पाते। कुछ अविचारी लेखक एक ओर तो उसकी सफलताओं की सराहना करते हैं और दूसरी ओर जिन कारणों से उसे सफलता मिली उन गुणों को धिक्कारते हैं और उसकी निंदा करते हैं।

और यह सच है कि यदि उसने क्रूरता का पथ न अपनाया होता तो सीपियो की भाँति (जो केवल अपने ही काल में प्रसिद्ध न था अपितु सदैव प्रसिद्ध रहेगा), उसके अन्य गुण भी सेना को नियंत्रण में रखने के लिए पर्याप्त न होते। सीपियो की सेनाओं ने उसी के विरुद्ध स्पेन में विद्रोह कर दिया। यह विद्रोह अन्य किसी कारणवश नहीं बल्कि केवल उसकी अत्यधिक दयालुता की वजह से हुआ था। दयालुता के कारण उसके सैनिकों को उससे अधिक स्वतंत्रता मिल जाती थी जितनी सेना के अनुशासन में मिलनी चाहिए। इसीलिए उसकी सीनेट में फेबियस मेक्सीमस (Fabius Maximus) ने कठोर आलोचना की थी और उसे रोमन सेनाओं को भ्रष्ट करनेवाला बतलाया था। सीपियो के एक सैनिक अफसर ने उसकी इच्छा के विरुद्ध एक कार्य किया। सीपियो ने अपने कोमल स्वभाव की वजह से उसका कोई बदला न लिया और न उस अफसर को दंडित ही किया। कुछ लोगों ने सीपियो को बचाने के लिए सीनेट में यह भी कहा कि ऐसे तो बहुत से व्यक्ति मिल जायँगे जो यह जानते होंगे कि स्वयं गलतियाँ किस प्रकार न करें लेकिन ऐसे लोगों का मिलना कठिन है जो दूसरों द्वारा की गयी गलतियों को ठीक कर सकें। यदि सीपियो ही साम्राज्य

का स्वामी होता तो उसकी यह प्रसिद्धि कुछ ही दिनों में इन कार्यों से कलंक-कालिमा बन गयी होती लेकिन सीनेट के अन्तर्गत कार्य करते हुए यह हानिकारी दुर्गुण न केवल छिप ही गया बल्कि सीपियो की यशोगाथा के विस्तार का भी साधन बन गया।

अतएव, मै अन्त में प्रेम और भय के संबंध में कहूँगा कि लोग प्रेम तो अपनी इच्छा से करते हैं लेकिन भय नरेश की इच्छाओं से करते हैं और इसलिए एक बुद्धिमान नरेश को सदैव अपनी क्षमताओं पर निर्भर रहना चाहिए, दूसरों पर नहीं तथा जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है उस सदैव घृणा का पात्र बनने से बचते रहना चाहिए।

सारांश

क्षमाशील होने के बजाय नरेश को क्रूर और कठोर होना चाहिए। ऐसा करके ही वह अपने राज्य में शांति और व्यवस्था बनाये रख सकता था। उसे अपनी प्रजा और राज-कर्मचारियों पर न तो इतना अविश्वास करना चाहिए कि लोग उसे शक्की समझने लगें और न इतना अधिक विश्वास कि वह लापरवाह हो जाय। यदि वह अपनी स्थिति ऐसी बना सके जिसमें लोग उससे प्रेम भी करें और भयभीत भी रहें तो सर्वोत्तम। अन्यथा ऐसा तो उसे अवश्य ही बना रहना चाहिए कि लोग उससे डरते रहें।

मैकियावली मनुष्य को स्वभावतः कपटी, स्वार्थी और पाखण्डी मानता है। उसका कहना है कि राजा को अपनी प्रजा या नागरिकों की सम्पत्ति कभी न लेनी चाहिए। सम्पत्ति हरने के बजाय प्राणदंड दे देना कहीं अधिक अच्छा है। लेकिन जिनको प्राणदण्ड दिया जाय उनको वह दण्ड क्यों दिया गया है, उसके कारण भली-भाँति सबको बता दिये जाने चाहिए। सैनिक मामलों में तो राजा को और भी अधिक कठोर होना चाहिए।

अध्याय १८

नरेशों को अपने धर्म का पालन अनिवार्यतः किस प्रकार करना चाहिये।

यह सर्वविदित है कि किसी भी नरेश के लिए धर्मविहित और शुचिता एवं पवित्रता का जीवन बिताना कितना सराहनीय है, और जो स्यानेपन के जीवन की तुलना में कहीं अधिक स्पृहणीय है। लेकिन अनुभव बतलाता है कि धर्मविहित आदर्श जीवन व्यतीत करने वाले नरेश की अपेक्षा उस नरेश को कहीं अधिक सफलताएँ मिली हैं जिन्होंने धर्मपूर्ण जीवन को उपेक्षा की दृष्टि से देखा है और जिन्होंने अपनी चतुराई से दूसरों को चकरा दिया और अपना काम बना लिया।

आपको यह जानना चाहिए कि लड़ाई के दो तरीके होते हैं, एक तरीका तो विधि का होता है और दूसरा बल प्रयोग का। पहला तरीका मनुष्य इस्तेमाल करते हैं और दूसरा पशु। लेकिन बहुधा पहला तरीका पर्याप्त नहीं होता है, इसलिए बहुधा दूसरे तरीके की भी सहायता लेनी पड़ती है। इसलिए किसी भी नरेश के लिए यह जानना बहुत जरूरी है कि वह मनुष्य और पशुओं दोनों के तरीके का इस्तेमाल किस प्रकार और कहाँ करे। प्राचीन काल के लेखक इसी को गुप्त रूप से नरेशों को सिखलाया करते थे। वे एकिलीज और उन सबसे प्राचीन नरेशों की कथाएँ लिखा करते थे जिनको शिरों (Chiron) को इसलिए दे दिया जाया करता था जिससे उनका उसके अनुशासन के अन्तर्गत लालन-पालन हो सके। शिरों की आधी शकल मनुष्य की होती थी और आधी पशु की। इस तरह की शकल का अध्यापक इस भाव का प्रतीक होता था कि एक नरेश मानव और पशु, इन दोनों प्रकृतियों के साथ किस प्रकार का

व्यवहार करे। इस प्रतीकात्मक गुरु का यह भी आशय है कि दोनों प्रकृतियों का एक दूसरे से अन्योन्याश्रित संबंध है और दोनों में से एक भी बिना एक दूसरे की सहायता के स्थायी नहीं हो सकता।

इस प्रकार पाशविक प्रवृत्तियों के अनुसार भी आचरण के लिए नरेश को विवश होना पड़ता है। ऐसी अवस्था में शेर और लोमड़ी की नकल करना प्रत्येक महत्वाकांक्षी नरेश को अच्छी तरह आना चाहिये। शेर अपने आपको जाल में फँसने से नहीं बचा पाता और लोमड़ी भेड़िये से अपनी रक्षा नहीं कर पाती। अतः कहाँ जाल है और कहाँ नहीं यह ज्ञान प्राप्त करने की योग्यता लोमड़ी से सीखनी चाहिये और भेड़िये को किस प्रकार डराया जाय, यह शेर से। जो केवल शेर ही होना जानते हैं, वे इस बात को भलीभाँति नहीं समझते। इसलिए बुद्धिमान नरेश को उस समय धर्मवान बनने की आवश्यकता नहीं है जब ऐसा करना उसके हितों के विरुद्ध हो, खास तौर से उस समय जब कि जिन कारणों से वह किन्हीं बन्धनों को मान रहा हो, वे कारण न रहे हों। यदि सभी लोग भले होते तो सिद्धान्त मानने लायक न था। लेकिन चूँकि मनुष्य स्वभावतः बुरा होता है और वह स्वयं अपने धर्म के अनुसार आचरण नहीं करता, इसलिए आपके लिए भी यह आवश्यक नहीं है कि आप धर्मानुसार ही उनके साथ आचरण करें। न अभी तक कभी ऐसा हुआ है कि किसी नरेश ने कोई वादा किया और फिर उसे वादे को भंग करने के लिये वह कोई उचित कारण न बतला पाया हो। इस सम्बन्ध में कोई आधुनिक-काल के इतिहास से ही बहुत से उदाहरण दे सकता है और दिखला सकता है कि नरेशों के वचन भंग करने की वजह से कितनी बार शांति भंग हुई है और उनमें भी वही नरेश सफल हुआ जिसने सबसे अधिक स्वाभाविक ढङ्ग से लोमड़ी की नकल की है। लेकिन यह जरूरी है कि नरेश अपने इस रूप को बड़ी चतुरता के साथ छिपाये रहे। इसके लिए उसे अत्युच्च कोटि का बहुरुपिया या छद्मवेश धारण करने वाला होना चाहिए। और लोग इतने सीधे और सरल तथा अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं की

पूर्ति के लिए इतने लालायित रहते हैं कि जो धोखा देना चाहता है, वह अवश्य ही ऐसे व्यक्ति पा जाता है जो धोखा खा जाते हैं।

मैं यहाँ आधुनिक इतिहास से केवल एक उदाहरण दूँगा। **एलेक्जेण्डर षष्ठम** ने सिवा लोगों को धोखा देने के और कुछ नहीं किया। वह अन्य कोई बात ही नहीं सोचता था और हमेशा धोखा देने का कोई न कोई मौका पा जाता था। ऐसा शायद ही कोई व्यक्ति समकालीन राजनीतिज्ञों में रहा हो जिसने इतने बलपूर्वक शपथ ले लेकर वादा किये हो और फिर उनसे मुकर गया हो। लेकिन इतने पर भी वह हर बार सफल होता था क्योंकि उसे अपना काम साधने की तरकीबें खूब अच्छी तरह से मालूम थीं।

यह आवश्यक नहीं है कि हर नरेश में उपरोक्त गुणों में से हर गुण हो, लेकिन यह बहुत ही जरूरी है कि बाहर वालों को ऐसा लगे कि वह हर गुण में प्रवीण है। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि इन सारे गुणों का होना और उनका हर वक्त प्रयोग करना खतरे से खाली नहीं है। लेकिन यदि लोग समझें कि आप में उक्त सब बातें हैं तो इससे आपको लाभ होगा। अतः दयावान, विश्वासी, विनयशील, सच्चा और धार्मिक प्रतीत होना अच्छा है और यदि कोई नरेश वस्तुतः ऐसा हो तब भी ठीक है; लेकिन आपकी मानसिक रचना ऐसी होनी चाहिये कि जब आपको अन्यथा होने की आवश्यकता पड़े तब आप उक्त गुणों के विरुद्ध भी कार्य कर सकें। यह भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि कोई भी नरेश और विशेषकर वह नरेश जो नया ही नया गद्दी पर बैठा हो वह उन सब गुणों के अनुसार आचरण नहीं कर सकता जिनके अनुसार किसी सज्जन व्यक्ति को कार्य करना चाहिये क्योंकि आरम्भिक दिनों में बहुधा उसे अपने राज्य की रक्षा के लिए अपने विश्वासों के विरुद्ध दया, दान, और धर्म के विरुद्ध कार्य करने पड़ते हैं। इसलिए उसे मानसिक दृष्टि से बयार के अनुकूल पीठ कर लेने के लिए तैयार रहना चाहिए।

और यदि भाग्यचक्र विरुद्ध हो तो भी वह सज्जनता का पथ न छोड़े; किन्तु जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, यदि संभव हो तो आवश्यकता पड़ने पर बुराई करने के लिए भी तैयार रहे।

प्रत्येक नरेश को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उसके मुँह से एक भी ऐसा शब्द न निकले जिसमें उपरोक्त पाँच विशेषताएँ न हों और उससे मिलने और बातचीत करने पर ऐसा लगे कि वह अत्यन्त दयावान्, विश्वास योग्य, पवित्र और धार्मिक है। धार्मिक प्रतीत होना तो अन्य सब गुणों से अधिक आवश्यक है क्योंकि लोग अधिकतर व्यक्ति के सम्बन्ध में आँखों से जो देखते हैं उसके आधार पर फैसला करते हैं, यह नहीं विचार करते कि उस व्यक्ति ने किया क्या है। इसका कारण यह है कि यह तो हर कोई देख सकता है कि आप कैसे प्रतीत होते हैं लेकिन आपको देखकर समझने की शक्ति हर व्यक्ति में नहीं होती। यदि कुछ लोगों ने समझ भी लिया कि आप क्या हैं तो उनका यह साहस न होगा कि वे बहुसंख्यक व्यक्तियों की धारणाओं के विरुद्ध अपना मत प्रकट कर सकें। मनुष्य के इन कार्यों में और विशेषकर नरेशों के मामले में जिनके कार्यों के विरुद्ध किसी उच्च न्यायालय में अपील नहीं की जा सकती, साध्य की प्राप्ति ही साधन का औचित्य है। अतः एक नरेश को विजय और राज्य को सुस्थिर बनाये रखने पर ही ध्यान देना चाहिये और यदि वह अपने इस लक्ष्य में सफल रहा तो नरेश का हर साधन सम्मान-पूर्ण और प्रशंसनीय समझा जायगा; क्योंकि हर कोई उच्चतर साधनों का प्रयोग नहीं करता। अधिक संख्या में लोग सामान्य साधनों का ही प्रयोग करते हैं, इसलिए यदि कुछ लोगों की दृष्टि से नरेश हेय साधनों का भी प्रयोग करता है तो उसकी सफलता के बाद अधिकांश लोग उसके साथ हो जायँगे और उसे नीच समझने वाले व्यक्ति अकेले पड़ जायँगे। आधुनिककालीन एक नरेश ऐसा है, जिसका नाम लेना यहाँ उचित नहीं है, जो सदैव धर्म और शान्ति का प्रचार करता है, लेकिन वह वस्तुतः इन दोनों का ही परम शत्रु है। यदि उसने किसी भी मौके पर उक्त दोनों

लक्ष्यों की पूर्ति के लिए कार्य किया होता तो उसका राज्य और उसकी प्रतिष्ठा दोनों चले जाते।

सारांश

मैकियावली ने नये नरेश को पहली सलाह यह दी है कि वह जहाँ आवश्यक हो बल का प्रयोग करना न चूके। उसकी दूसरी सलाह यह है कि वह ऊपर से जैसा दिखलायी पड़े अंदर से वैसा न रहे, हालाँकि उससे मिलने-जुलने वालों को यही लगना चाहिये कि उसके बाह्य स्वरूप और अन्तर के स्वरूप में कोई फर्क नहीं है। सद्गुणों को मानते हुए भी उनका पालन करना नरेश के लिए आवश्यक नहीं है। राज्य की रक्षा के लिए उनके विपरीत भी कार्य करने के लिए उसे तैयार रहना चाहिये।

———

अध्याय १९

नरेश को घृणा का पात्र होने से बचना चाहिए

जितने भी विवादास्पद किन्तु महत्त्वपूर्ण गुण हो सकते हैं उनके संबंध में मैं बतला चुका हूँ। अब मैं संक्षेप में अन्य सब गुणों पर प्रकाश डालूँगा। जैसाकि कहा जा चुका है नरेश को हर दशा में घृणा का पात्र होने से बचना चाहिए; और जब भी वह अपने इस उद्देश्य में सफल हो जायगा उसका कार्य समाप्त हो जायगा तथा उसे अन्य किसी भी बुराई से कोई खतरा न रह जायगा। यदि अपनी प्रजा या राज्य के नागरिकों की सम्पत्ति को न छीनेगा और महिलाओं का अपहरण न करेगा तो लोग सन्तुष्ट होकर उसके राज्य में रहेंगे। लेकिन उसने प्रजा की सम्पत्ति और राज्य की स्त्रियों की मान-रक्षा न की तो उससे लोग निश्चय ही घृणा करने लगेंगे। अतः, इस प्रकार के कार्यों को न करके वह अधिकांश लोगों को सन्तुष्ट रख सकेगा और तब कुछ महत्वाकांक्षी व्यक्तियों को अपने अंकुश में रखना उसके लिए कठिन न होगा। वह उन पर कई तरह से नियंत्रण रख सकता है। अस्थिर बुद्धि, कामी, अपव्ययी, स्त्रैण, डरपोक तथा अनिश्चयी आदि होने से लोग अपने नरेश को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। इन सब बातों को खतरे का चिन्ह समझकर नरेश को उनसे बराबर बचना चाहिए। उसे अपने सारे कार्य इस प्रकार करने चाहिए जिनसे महानता, उत्साह, गंभीरता और सहिष्णुता प्रकट हो; और जहाँ तक प्रजा के शासन का संबंध है, वह जो दण्ड एक बार दे दे, उस पर वह दृढ़ बना रहे जिससे कोई भी उसे धोखा देने की कल्पना भी न कर सके।

जो नरेश अपने संबंध में उच्चाशय की धारणा बनवा लेता है उसकी

अनन्त प्रतिष्ठा मिलती है और जो महान् प्रतिष्ठा का व्यक्ति हो उसके विरुद्ध षड्यंत्र करना बड़ा कठिन होता है। उस पर तब तक सरलतापूर्वक आक्रमण भी नहीं किया जा सकता जब तक लोग यह जानते रहेंगे कि वह योग्य और श्रद्धास्पद है। नरेश को दो तरह के खतरे होते हैं: पहला तो आन्तरिक और दूसरा बाह्य। आन्तरिक खतरा अपनी प्रजा से होता है और बाह्य खतरा विदेशी शक्तियों से होता है। नरेश बाह्य खतरों का मुकाबिला अपने सज्जन मित्रों और सबल सेना द्वारा कर सकता है। यदि उसके पास सबल सेना हुई तो उसे अच्छे दोस्तों के मिलने में भी कोई कठिनाई न होगी। और यदि बाहर से कोई हस्तक्षेप नहीं होता और राज्य के अन्दर भी कोई षड्यंत्र नहीं रचे जाते तो आन्तरिक शान्ति भी सदा बनी रहेगी। इतने पर भी कोई बाह्य शक्ति यदि आक्रमण का साहस करती है, और यदि नरेश ने जैसा ऊपर बतलाया गया है, उस तरह शासन किया है तो उस नरेश पर किसी भी बाहरी आक्रमण का प्रभाव न पड़ेगा और वह **नबीस** तथा स्पार्टावासियों की भाँति प्रत्येक धक्के को दृढ़ता के साथ बरदाश्त कर लेगा। प्रजा के संबंध में यह देखना आवश्यक है कि उसे बाहर से तो कोई नहीं भड़का रहा है। यदि यह सिद्ध भी हो जाय कि उसे बाहर से भड़कानेवाला कोई नहीं है, तो भी इसका ध्यान रखना आवश्यक है कि कोई गुपचुप उसके विरुद्ध षड्यंत्र तो नहीं कर रहा है। इन षड्यंत्रों से नरेश अपनी रक्षा घृणात्मक कार्यों को न करके तथा लोगों को रख के कर सकता है। ऐसा करना कितना आवश्यक है, यह ऊपर बतलाया जा चुका है। यही षड्यंत्रों के विरुद्ध सबसे अधिक कारगर उपाय है कि नरेश से जनता घृणा न करे क्योंकि प्रत्येक षड्यंत्रकारी यही सोचता है कि वह नरेश को मारकर जनता को सन्तुष्ट कर लेगा। लेकिन यदि षड्यंत्रकारी को यह ज्ञात हो जाय कि वह ऐसा करके जनता को क्रुद्ध कर देगा तो वह इस प्रकार का कदम उठाने से हिचकिचायेगा और भयभीत भी होगा; क्योंकि किसी नरेश के विरुद्ध षड्यंत्र रचने में बड़ी कठिनाइयों का

सामना करना पड़ता है। अनुभव बतलाता है कि षड्यंत्र तो बहुत से रचे गये लेकिन उनमें से सफल होनेवाले षड्यंत्रों की संख्या बहुत कम है क्योंकि जो षड्यंत्र करता है, वह अकेले ही सारे काम नहीं कर सकता। उसे भी साथियों की जरूरत पड़ सकती है। साथी उसे वही मिलेंगे जो उसी की भाँति नरेश से असन्तुष्ट हों। जैसे ही किसी षड्यंत्र के सूत्रधार ने अपने बुरे इरादे किसी व्यक्ति को बतलाये वह तुरन्त ही उससे यह भी कहना शुरू कर देता है कि उसके असंतोष के समस्त कारण दूर हो जायँगे और उसे वह सब कुछ मिल जायगा जिसे वह चाहता है। षड्यंत्रकारी का साथी भी जिससे प्रस्ताव किया जायगा, यह सोचेगा कि कार्यपथ सरल है या कठिन। यदि कठिन हुआ और उसे प्रत्यक्षतः बहुत से खतरे दिखलायी पड़े तथा इतने पर भी यदि उसने षड्यंत्रकारी का साथ दिया तो या तो वह षड्यंत्रकारी का परममित्र होगा या नरेश का कट्टर शत्रु होगा। सारांश में, षड्यंत्रकारी के पक्ष में भय, ईर्ष्या, संदेह, दण्ड आदि के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता; और नरेश के पक्ष में पूरा शासन होता है, विधियाँ होती हैं और मित्र तथा राज्य का संरक्षण के लिए होता है। जब इन सब के अलावा कोई नरेश लोक-प्रिय भी होता है तो किसी भी व्यक्ति में इतना दुस्साहस नहीं हो सकता कि वह ऐसे बलवान नरेश के विरुद्ध षड्यंत्र रचे। जहाँ एक ओर षड्यंत्रकारी को अपनी योजना के कार्यान्वित होने के पूर्व डरना पड़ता है, वहीं दूसरी ओर ऐसे मामले में जनता भी उसे शत्रु मानने लगती है और उसे अपने अपराध के बाद भी भागा-भागा फिरना पड़ता है; क्योंकि उसे कहीं कोई शरण भी नहीं देगा।

इसके असंख्य उदाहरण दिये जा सकते हैं, लेकिन मैं केवल एक ऐसी घटना उद्धृत करूँगा जो हम लोगों के पिताओं के काल में हुई थी। वर्तमान मेसर एनीबाले के पूर्वज तथा बोलना (Bologna) के नरेश एनीबाले बेन्तीवोगली (Messer Annibale Benti-vogli) की केनेशी (Canneschi) नाम के एक व्यक्ति ने षड्यंत्र

रच कर हत्या कर दी। उसने मेसर जिग्रोवानी (Messer Giovanni) को छोड़कर, जो उस समय शैशवावस्था में थे, समस्त संबंधियों तक को मार डाला। लेकिन इस काण्ड से प्रजा इतनी क्षुब्ध हुई कि उसने विद्रोह कर दिया और केनेशी को मय उसके सगे-सम्बन्धियों को मार डाला। बेन्तीवोगली परिवार उस समय बड़ा लोकप्रिय था, इसलिए ऐसा संभव हो सका। एनीबाले की मृत्यु के पश्चात् ऐसा कोई न बचा था, जो राज्य का शासनभार सँभाल सकता, बोलनावासियों ने सुना कि बेन्तीवोगली परिवार का कोई व्यक्ति फ्लोरेंस में रहता है, जिसे उस समय तक किसी लुहार का पुत्र समझा जाता था, वे लोग उस व्यक्ति के पास गये, उसे बोलना बुला लाये और उस व्यक्ति ने मेसर जियोवानी के वयस्क होने तक राज का कार्यभार सँभाला तथा जब जियोवानी बड़े हो गये तो नगर का शासन उन्हें सौंप दिया।

इससे मैं यह परिणाम निकालता हूँ कि जब किसी नरेश से उसकी प्रजा प्रसन्न हो तो उसे किसी से डरने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन जब प्रजा ही नरेश से रुष्ट हो और उससे घृणा करती हो तो उसे हर वक्त हर व्यक्ति से डरना चाहिए। सभी व्यवस्थावान राज्य और बुद्धिमान नरेश इसका बहुत अधिक ख्याल रखते हैं कि उनके यहाँ का कोई सामन्त हताश न हो जाय, और इसका भी ध्यान रक्खा जाता है कि प्रजा सुखी और प्रसन्न रहे। अतः यही सबसे महत्वपूर्ण बात है जिसकी तरफ प्रत्येक योग्य नरेश को सर्वाधिक ध्यान देना चाहिए।

हम लोगों के समय जो राज्य शांति और व्यवस्था की दृष्टि से सर्वाधिक अच्छा है, उसमें फ्रांस का नाम सबसे पहले आता है। फ्रांस में ऐसे बहुत से संस्थान और संवास हैं जिनसे फ्रांस के नरेश की स्थिति, उनकी स्वतंत्रता आदि सुरक्षित रहती है। इनमें से मुख्य संसद और उसकी सत्ता है। जिस व्यक्ति ने फ्रांसीसी साम्राज्य की स्थापना की थी, वह बड़े-बड़े सामन्तों की महत्वाकांक्षा और उद्दण्डता से परिचित था। इसलिए उसने यह सोचा कि उन सामन्तों के सामने भी कुछ टुकड़े डाल दिये जायँ

जिनके जरिए उन पर नियंत्रण रखा जा सके। उसे भी ज्ञात था कि जनता भयवश प्रायः बड़े आदमियों से घृणा करती है, अतः उनको सुरक्षित रखने के लिए, उसने संसद को बिलकुल नरेश का चाकर नहीं हो जाने दिया और इस बात का ख्याल रखा कि यदि जनता का लाभ कर देने में सामन्त नाराज हो जायँ और सामन्तों का पक्ष लेने से जनता नाराज हो जाय, तो वह नाराजी नरेश के सिर पर न पड़कर किसी तीसरे पर पड़े। इस तीसरे पक्ष पर नरेश का प्रत्यक्षतः कोई अंकुश न हो। मेरी समझ से इससे अधिक बुद्धिमत्ता का अन्य कोई मार्ग न हो सकता था और न किसी अन्य तरह से फ्रांस के भावी नरेशों और राज्य को और अधिक सुरक्षित बनाया जा सकता था। इससे हमें एक और बड़ा अच्छा सिद्धान्त स्थिर कर सकते हैं और वह यह है कि नरेशों को अप्रिय कार्यों का दायित्व अपने ऊपर न लेकर अन्य किसी पर डाल देना चाहिये। मैं अन्त में एक बार फिर कहूँगा कि नरेश को अपने सामन्तों का ख्याल तो अवश्य रखना चाहिए लेकिन इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि कहीं जनता न घृणा करने लगे।

कुछ लोगों को, कई रोमन सम्राटों के चरितों का अध्ययन करने के बाद यह भी प्रतीत हो सकता है कि कुछ ऐसे भी उदाहरण मिल सकते हैं जिनसे मेरे मत का खण्डन किया जा सकता है। मेरे मत के खण्डन-कर्ता कुछ ऐसे रोमन सम्राटों के नाम ले सकते हैं जिन्होंने अत्यन्त सज्ज-नता का जीवन ब्यतीत किया और बड़ी चारित्रिक दृढ़ता भी दिखलायी, फिर भी उनके हाथ से साम्राज्य निकल गये और उनकी प्रजा ने ही षड़-यंत्र रच कर उनकी हत्या कर डाली। मैं इन आपत्तियों का उत्तर देने के लिए कुछ सम्राटों की चर्चा करके उनके नाश के कारणों को बतलाऊँगा। मैं विचार करते समय **मारकस** (Marcus) से लेकर दार्शनिक मेक्सी-माइनस (Maximinus) तक जितने भी सम्राट हुए हैं सबके कृत्यों पर विचार करूँगा। मारकस के बाद उसका पुत्र **कमोडस** (Commodus), **पर्टीनेक्स** (Pertinax) **जूलियानस** (Julia

nus), सेवेरस (Severus), एण्टोनाइनस (Antoninus), उसका पुत्र केराकला (Caracalla), मेक्राइनस (Macrinus), हीलियोगेबालस (Heliogabalus), एलेक्जेण्डर (Alexander) और मेक्सीमाइनस। इन सम्राटों के सम्बन्ध में सबसे पहली बात तो यह ध्यान रखने की है कि जहाँ अन्य नरेशों को बड़े सामन्तों की महत्वाकांक्षाओं तथा जनता के असन्तोष से अपने आपको बचाने का यत्न करना पड़ता है, वहीं रोमन सम्राटों के सामने एक तीसरी कठिनाई यह थी कि उन्हें रोमन सैनिकों की निर्दयताओं और लोभभरे कार्यों का भी समर्थन करना पड़ता था। रोमन सैनिकों के उक्त दो दुर्गुण इतने अधिक बढ़ गये थे कि इनकी वजह से कई सम्राटों का सर्वनाश हो गया क्योंकि सैनिकों और जनता या प्रजा, दोनों को सन्तुष्ट रखना बड़ा कठिन है। प्रजा शान्तिप्रिय होती है, इसलिए वह शांतिप्रिय नरेश को भी पसन्द करती है। लेकिन सैनिकों को लड़ाकू नरेश पसन्द आता है, ऐसा नरेश जो बड़ा ही उद्दंड, निर्दयी, और लूटपाट करने वाला हो। सैनिक चाहते हैं कि उन्हें लोगों पर बल प्रयोग का मौका मिले जिससे उन्हें एक ओर तो दूनी तनख्वाह मिले और दूसरी ओर लोभ तथा निर्दय कार्यों को करने की प्रवृत्तियों को संतुष्ट करने का मौका मिले। परिणामतः जब ऐसे नरेश गद्दी पर बैठे जिनमें सैनिकों और प्रजा को अपने-अपने स्थान सर सन्तुष्ट रखने की स्वाभाविक या कृत्रिम कला नहीं थी, तो उनका नाश हो जाना बिलकुल ही प्राकृतिक था। कुछ सम्राटों ने, जो बिलकुल तरुण थे और और जिन्हें राजनीति का अनुभव न था, जब यह देखा कि वे दोनों पक्षों को सन्तुष्ट नहीं कर पा रहे हैं तो उन्होंने सैनिकों के तुष्टीकरण की नीति अपनायी और जनता की भावनाओं को न आहत करने का कोई ख्याल न रखा। उन सम्राटो को ऐसा करना आवश्यक भी प्रतीत हुआ क्योंकि उन्हें किसी न किसी पक्ष को अपनी तरफ मिलाना ही था। पहले उन्होंने इस बात की पूरी चेष्टा की कि जनता उनसे घृणा न कर पाये लेकिन जब वे ऐसा करने से असफल रहे तो उन्होने जो सबसे शक्तिशाली दल थे उनमें

से एक को सन्तुष्ट करने का यत्न किया। कई रोमन सम्राटों का सैनिकों को सन्तुष्ट करने का यत्न उक्त नीति के अनुसार ही हुआ। मारकस, पर्टीनेक्स और एलेक्जेण्डर, ये तीनों सामान्य जीवन बिताने के पक्षपाती, न्यायप्रिय, निर्दयता के शत्रु, विनीत, क्षमाशील और प्रजा के शुभैषी थे। लेकिन मारकस को छोड़कर शेष दोनों सैनिक पक्ष पर नियंत्रण न रख पाये जिसका परिणाम यह हुआ कि उक्त दोनों सम्राटों का अत्यन्त दुखद अन्त हो गया। केवल मारकस ने सम्मानपूर्ण जीवन और प्रतिष्ठायुक्त मृत्यु पाई। मारकस को गद्दी वंशानुगत उत्तराधिकार से मिली थी और उसमें यह भी गुण था कि वह दोनों पक्षों को सन्तुष्ट रख सके। इसलिए उससे न तो कभी सैनिकों ने घृणा की और न प्रजा ने। लेकिन पर्टीनेक्स को सैनिकों की इच्छा के विरुद्ध सम्राट बनाया गया था। सैनिकों को कामोडस के शासनान्तर्गत स्वच्छन्दतापूर्वक जीवन बिताने की आदत पड़ गयी थी, इसलिये **पर्टीनेक्स** ने जब उनको ईमानदारी का जीवन बिताने के लिए विवश किया तो वे उससे घृणा करने लगे। इसके अलावा पर्टीनेक्स वृद्ध भी था। इसलिए उसे और भी जल्दी मार डाला गया।

अतः हम लोगों ने देख लिया कि लोग केवल बुरे कार्यों के करने की वजह से ही घृणा नहीं करने लगते थे, बल्कि कभी-कभी अच्छे कार्यों के करने पर भी बुरा मानने लगते हैं। इसलिए जैसा कि मैं ऊपर बतला चुका हूँ जो नरेश अपने राज्य की रक्षा करना चाहता है उसे कभी-कभी बुरे काम भी करने पड़ जाते हैं, क्योंकि जब कोई पक्ष, चाहे वह प्रजा, सेना या सामन्तों में से कोई हो, जिसे खुश रखना आप अपनी स्थिति को सुरक्षित बनाये रखने के लिए आवश्यक समझते हों, भ्रष्ट हो तो फिर आपको उसके मनोनुकूल कार्य करके उसे प्रसन्न रखना पड़ेगा और उस दशा में अच्छे कार्य करना आपके लिए घातक होगा। लेकिन आइये हम एलेक्जेण्डर के भी शासन पर विचार करें। एलेक्जेण्डर इतना सज्जन था कि उसने अपने शासन के १४ वर्षों में कभी किसी को बिना उचित रीति से मामला चलाये प्राणदण्ड ही नहीं दिया। फिर भी उसको लोगों ने

स्त्रैण समझा, और यह सच है कि वह हमेशा अपनी माँ की इच्छा के अनुसार ही शासन-कार्य किया करता था जिससे वह लोगों की नजरों से गिर गया और सेना ने उसके विरुद्ध षड्यंत्र रच कर उसे मार डाला।

इसके विपरीत यदि आप **कमाडस, सेवेरस एएटोनाइनस केरा-केला** और **मैक्सीमाइनस** पर विचार करें तो इस परिणाम पर पहुँ-चेंगे कि वे अत्यधिक क्रूर, निर्दय और लुटेरे किस्म के व्यक्ति थे, अपने सैनिकों को सन्तुष्ट रखने के लिए शायद ही कोई ऐसा निर्दय कार्य हो जो वे न कर डालते हों। प्रजा को उत्पीड़ित करना तो उनके लिए साधारण बात थी। इसका नतीजा यह हुआ कि सेवेरस को छोड़कर उन सबको मार डाला गया। सेवेरस में कुछ ऐसे गुण थे जिनसे उसने एक ओर तो सैनिकों को खुश रखते हुए प्रजा का खूब दमन भी किया और दूसरी ओर खूब आनन्द से शासन भी किया। प्रजा तो उसके कृत्यों को देखकर स्तब्ध और भौचक्की रह जाती थी जब कि सैनिकों को उसके कार्यों से सन्तोष होता था और वे उसका सम्मान करते थे।

सेवेरस के कुछ कार्य ऐसे हैं, जिनको किसी भी नये नरेश को आदर्श तुल्य ग्रहण करना चाहिये। इसलिए मैं उनकी चर्चा यहाँ करूँगा। मैं यह भी बतलाऊँगा कि वह लोमड़ी और शेर दोनों के गुणों के अनुसार किस प्रकार कार्य करता था। यह तो मैं कह ही चुका हूँ कि एक अच्छे नरेश को सदैव लोमड़ी और शेर की भाँति आचरण करना चाहिए। यह बात सेवेरस के चरित्र से स्पष्टतः प्रकट होती है। जिस समय सेवेरस को यह समाचार मिला कि पर्टीनेक्स की हत्या कर डाली गयी है और **जूलि-यानस** सम्राट हो गया है, उस समय वह **स्लावोनिया** में रोमन सेनाओं का सेनापति था। उसने यह किसी से नहीं कहा कि वह राजसिंहासन का आकांक्षी है और इस बात को मन में रखकर उसने अपनी सेना को यह समझाया कि जिन प्रेटोरियनों रक्षकों ने सम्राट पर्टीनेक्स की हत्या की है, उनसे बदला लेने के लिए रोम चलना चाहिये। सैनिक यह बात मान

गये और वह अपने प्रस्थान की सूचना रोम पहुँचने से पहले ही इटली पहुँच गया। उसके रोम पहुँच जाने पर सीनेट ने जूलियानस को मार डाला और सेवेरस को उसकी जगह सम्राट चुन लिया। लेकिन अभी सेवेरस की कठिनाइयाँ समाप्त नहीं हुई थीं। पूरे साम्राज्य का नियंत्रण उसके हाथ में आने में दो बाधाएँ थीं; पहली बाधा तो एशिया में थी और दूसरी पश्चिम में। एशिया में रोमन सेनाओं के सेनापति **नाइग्रीनस** ने अपने आपको सम्राट घोषित कर दिया था। दूसरी ओर पश्चिम में **एलबाइनस** (Albinus) की यह इच्छा थी कि वह सम्राट् हो जाय। सेवेरस ने सोचा, यदि वह दोनों से लड़ाई करता है तो उसका यह कार्य बुद्धिमत्तापूर्ण न होगा। इसलिए उसने एलबाइनस को बेवकूफ बनाकर नाइग्रीनस पर आक्रमण करने का निश्चय किया। अतः उसने एलबाइनस को लिखा कि सीनेट ने यद्यपि उसे सम्राट् चुन लिया है लेकिन वह बड़ी प्रसन्नता से उसे अपने सम्मान में भागीदार बनाने के लिए तैयार है। उसने सीजर का पद **एलबाइनस** को दिलवा दिया और सीनेट में ऐसी कार्रवाइयाँ करा दीं जिससे यह प्रतीत हो कि एलबाइनस सचमुच **सेवेरस** का साथी चुन लिया गया है। इन सब बातों को एलबाइनस ने सच मान लिया। लेकिन जब सेवेरस ने **नाइग्रीनस** को हरा कर मार दिया और पूर्व में शांति स्थापित कर ली और रोम वापस लौट आया तो उसने एलबाइनस पर यह आरोप लगवाकर कि उसने सेवेरस की हत्या का षड्यंत्र रचा था, सीनेट से फ्रांस जाकर उसे दण्ड देने की अनुमति प्राप्त कर ली। इसके बाद सेवेरस फ्रांस गया और उसने वहाँ जाकर एलबाइनस को मार डाला।

जो भी सेवेरस के कार्यों का सूक्ष्म अध्ययन करेगा, वह देखेगा कि वह बड़ा भयानक शेर भी था और अत्यन्त चतुर लोमड़ी भी। यही कारण था कि उससे सब लोग डरते थे और उसका सम्मान करते थे और सेना के लोग भी उससे घृणा नहीं करते थे। इसलिए नया शासक होने पर भी उसके हाथ में जो अपरिमित शक्ति आ गयी थी, उससे

किसी को आश्चर्य न होता था। हालाँकि वह बड़ा अत्याचारी था लेकिन उसकी जो प्रतिष्ठा थी, उसकी वजह से किसी भी प्रजाजन का उसके विरुद्ध कोई भी कार्य करने का साहस न होता था। **एण्टोनाइनस** उसका पुत्र भी बड़ा योग्य था। उसमें कुछ ऐसे गुण थे जिनकी वजह से उसे सैनिक भी चाहते थे और प्रजा भी प्रेम करती थी। एक सैनिक के रूप में वह कठिन से कठिन जीवन बिताने की क्षमता रखता था, अच्छे और अमीराना भोजन से उसे चिढ़ थी, और विलासिता को वह घृणा की दृष्टि से देखता था। नतीजा यह था कि सेना का हर व्यक्ति उसे चाहता था। फिर भी उसका क्रोध तथा उसके निर्दयतापूर्ण कृत्य कभी-कभी इतने भयंकर हुआ करते थे जिनकी कल्पना भी पहले कोई न कर सकता था। आरंभ में उसने कई बड़े-बड़े आदमियों को मरवा डाला। बाद में **रोम** तथा **सिकन्दरिया** के बहुत से नागरिकों को उसने मौत के घाट उतार दिया। उसके इन कार्यों से लोगों में उसके विरुद्ध इतनी घृणा फैल गयी कि अन्त में उसी के सेना बीच में उसके ही एक अंगरक्षक ने उसे मार डाला। लेकिन यहाँ यह बात ध्यान रखने की है कि इस प्रकार मृत्यु से, जो किसी दृढ़ निश्चयी व्यक्ति के जान-बूझ कर किये हमले के कारण होती है, कोई नरेश बच नहीं सकता। क्योंकि जो भी व्यक्ति अपनी जान की परवाह नहीं करता वही ऐसा कर सकता है। लेकिन इस कारण नरेशों को डरने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि ऐसे व्यक्ति बहुत ही कम मिलते हैं। नरेशो को इसका ध्यान रखना चाहिए कि वह जिस व्यक्ति से सेवा करायें, या जिससे कुछ काम लें उसे किसी भी प्रकार चोट न पहुँचायें जैसा एण्टोनाइनस ने किया था। एण्टोनाइनस ने अपने हत्यारे के भाई को मरवा डाला था और उस अंगरक्षक को भी नित्यप्रति धमकियाँ दिया करता था, हालाँकि वह व्यक्ति बराबर उसकी सेवा में रहता था। ऐसा करना स्पष्टतः खतरनाक और परले सिरे की बेवकूफी थी—जैसाकि बाद में चलकर सिद्ध भी हो गयी।

लेकिन आइए अब हम लोग **कमोडस** के संबंध में विचार करें। कमोडस **मारकस** का पुत्र था और उसे राजसिंहासन वंशानुगत प्रणाली से प्राप्त हुआ था। यदि वह अपने पिता के चरणचिन्हों का अनुसरण करता तो उसके लिए यह बिलकुल संभव था कि वह अपने सैनिकों और अपनी प्रजा दोनो को सन्तुष्ट कर देता। लेकिन वह अत्यन्त पाशविक और निर्दय प्रकृति का था, इसलिए उसने सैनिकों को खुश रखने के लिए उन्हें पूरी स्वच्छन्दता दे दो, दूसरी ओर उसने अपने पद की मर्यादा का भी ध्यान न रखा। वह अकसर पहलवानों से युद्ध करने अखाड़ो में उतर पड़ता और अपनी मानप्रतिष्ठा का कोई ध्यान न रखता। फलतः, सैनिक भी उससे घृणा करने लगे। प्रजा तो पहले से ही असन्तुष्ट थी। अन्ततोगत्वा, उसके विरुद्ध षड्यंत्र रचकर उसे मार डाला गया।

लेकिन अभी **मेक्सीमाइनस** के चरित पर भी हमें विचार करना है। **मेक्सीमाइनस** अत्यधिक लड़ाकू प्रकृति का व्यक्ति था। चूँकि सेना **एलेक्जेण्डर** की स्त्रैणता के कारण उससे नाराज रहा करती थी और इसीलिए उसकी हत्या की गयी थी, अतएव एलेक्जेन्डर के बाद मेक्सीमाइनस को उसकी जगह सम्राट् चुन लिया गया। लेकिन वह सम्राट् के पद पर बहुत अधिक काल तक न बना रह सका। उसमें दो ऐसी बुरी बातें थीं जिनसे लोग असन्तुष्ट होकर उससे घृणा करने लगे। पहला कारण था कि उसका जन्म एक अत्यन्त नीच घर में हुआ था। कहा जाता है कि वह थ्रेस के एक भेड़ चरानेवाले का पुत्र था। यह बात सबको विदित थी। इसलिए सबके हृदय में उसके प्रति विद्वेष का भाव था। दूसरे, जब उसे सम्राट् चुना गया तो उसने रोम पहुँच कर सिंहासन नहीं ग्रहण किया और आरंभ से ही उसने अत्यन्त निर्दयतापूर्ण कार्य करने आरंभ कर दिये। हालाँकि वह रोम नहीं गया लेकिन अपने प्रीफेक्टों (अधिकारियों) द्वारा उसने रोम के बहुत से लोगों को अत्यन्त अमानुषिक रूप से दण्डित किया। इन समस्त कार्यों की वजह से सारा

साम्राज्य उससे घृणा करने लगा। सबसे पहले **अफ्रीका** में उसके विरुद्ध षड्यंत्र रचा गया। बाद में सीनेट ने भी उसके विरुद्ध षड्यंत्र किया और उसका साथ पूरे रोम और इटली ने दिया। स्वयं **मेक्सीमाइनस** की सेना के सैनिक उस षड्यंत्र में सम्मिलित हो गये। जब मेक्सीमाइनस ने **एक्वीलिया** (Aquileia) पर घेरा डाल रखा था और उसके लिए उस पर कब्जा करना कठिन हो रहा था, उस समय षड्यंत्रकारियों ने देखा कि सम्राट् के शत्रु बहुत हैं और उन्हें अधिक डरने की आवश्यकता नहीं है, सब ने मिलकर मेक्सीमाइनस को मार डाला।

मैं हीलियोगेबालस, **मेक्राइनस**, या **जूलियानस** के संबंध में कोई बात न करूँगा, क्योंकि इनके प्रति लोगों में इतनी घृणा और विद्वेष की भावना थी कि आरंभ में ही इनको दबा दिया गया। लेकिन मैं इस अध्याय को समाप्त करने के पूर्व यह अवश्य कहूँगा कि आज-कल के नरेशों को उक्त सम्राटों की तुलना में अपने सैनिकों को संतुष्ट करने में अत्यल्प कठिनाई होती है; इसमें संदेह नहीं सैनिकों को भी ध्यान रखना पड़ता है किन्तु हर कठिनाई अपेक्षाकृत बहुत जल्दी दूर कर ली जाती है; क्योंकि किसी भी नरेश के पास अब ऐसी सेना नहीं रहती जो अविच्छिन्न रीति से प्रशासन से संबद्ध रहे। लेकिन रोमन सम्राटों के साथ ऐसी बात नहीं थी। उन्हें अपने नगर तथा प्रान्तों के शासन के लिए अनिवार्यतः सैनिकों की सहायता लेनी पड़ती थी। यदि उन दिनों जनता की अपेक्षा सैनिकों को अधिक सन्तुष्ट करने की आवश्यकता पड़ती थी तो इसका कारण यह था कि सैनिक सामान्य व्यक्तियों से कहीं अधिक कार्य करते थे। लेकिन अब स्थिति बदल गयी है। तुर्कों तथा सुलतानों को छोड़कर अन्य नरेशों को जनता से ही अधिक काम पड़ता है, इसलिए सैनिकों से अधिक जनता को सन्तुष्ट रखना आवश्यक है। मैंने तुर्कों को छोड़ दिया है, जो हमेशा १२,००० पैदल सेना और १५,००० घुड़सवार रखते हैं और जिन पर उनकी प्रतिरक्षा तथा राज्य की शक्ति निर्भर करती है। ऐसी अवस्था में यह

आवश्यक है कि तुर्क अन्य सब बातों से अधिक सेना के तुष्टीकरण का ही ध्यान रखें। यही बात सुलतान के राज्य के साथ है। वह भी करीब-करीब बिलकुल सैनिकों के हाथ में ही रहता है। ऐसी अवस्था में यह जरूरी है कि सुलतान जनता या प्रजा की तरफ कोई ध्यान न दे। और यह भी ध्यान रखना चाहिए कि सुलतान का राज्य अन्य नरेशो के राज्यो से भिन्न है। वह बहुत कुछ ईसाइयों के पोप राज्य से मिलता-जुलता है। उसे न तो वंशानुगत राज्य कहा जा सकता है और न नया, क्योंकि मृत सुलतान के पुत्र उसकी गद्दी के उत्तराधिकारी नहीं होते, वरन् उत्तराधिकारी वह होता है जिसको सत्ताशाली व्यक्ति उस पद के लिए निर्वाचित करते हैं। चूँकि यह प्रथा बहुत दिनों से चली आ रही है, इसलिए उसमें वैसी कोई कठिनाई उत्पन्न नहीं होती जैसी किसी नये राज्य में पैदा होती है। नरेश नया होता है लेकिन नियम और विधियाँ पुरानी ही चलती हैं। इनके अनुसार नये नरेश का भी वैसा ही सम्मान होता है जैसा किसी वंशानुगत क्रम से चुने गये राजा का।

लेकिन अपने पुराने प्रसंग पर वापस लौटते हुए हम पूर्ववर्ती वर्कों को देखेंगे तो इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि जिन-जिन राजाओं का नाम लिया गया है उनमें से प्रत्येक का या तो अपमान किया जाने लगा था अथवा उसे घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा था। लेकिन इनमें से कुछ का अन्त सौभाग्यपूर्ण हुआ और कुछ का दुखद। **पर्टीनेक्स** और **एलेकजेण्डर** दोनो ही नये शासक थे, इसलिए उनके लिए **मारकस** का अनुकरण करना किसी भी प्रकार उचित न था। हर दशा में वह उनके लिए निरर्थक और घातक सिद्ध हुआ। इसी प्रकार **केराकेला, कमोडस** और **मेक्सीमाइनस** के लिए यह उचित न था कि वे **सेवेरस** की नकल करते क्योंकि उनमें अपने पूर्ववर्ती की भाँति शत्रु से लोहा लेने की योग्यता न थी। अस्तु, कोई भी नया नरेश न तो मारकस के पदचिन्हों का और न सेवेरस के आदर्शों का अक्षरशः अनुकरण अपने राज्य में कर सकता है। लेकिन नये नरेश को सेवेरस

से यह अवश्य सीखना चाहिए कि वे कौन से तत्व हैं जिनके आधार पर नये राज्य की सुदृढ़ रचना की जा सकती है। इसी प्रकार मारकस से यह सीखना चाहिए कि एक सुस्थापित और भली-भाँति प्रतिरक्षित राज्य को भविष्य के लिए और अधिक किस प्रकार सुरक्षित रखना चाहिए।

सारांश

नये नरेश को हर दशा में अपना जीवन और पद बनाये रखने के लिए सचेष्ट रहना चाहिए। ऐसा वह तभी कर सकता है जब राज्य के हर तत्व को सन्तुष्ट रखे। राज्य में दो मुख्य तत्व हैं : (१) प्रजा और (२) सेना। नरेश को इन दोनों को सन्तुष्ट रखना चाहिए। यदि वह दोनों को सन्तुष्ट न रख सके तो नरेश को चाहिए कि वह प्रजा को ही सन्तुष्ट और प्रसन्न रखने की कोशिश करे। तभी उसका राज्य स्थायी हो सकता है।

अध्याय २०

नरेशों द्वारा बहुधा बनवाये जाने वाले दुर्ग आदि लाभप्रद होते हैं या हानिकारी

कुछ नरेश अपने राज्य को सुरक्षित रखने के लिए अपने नागरिकों को निश्शस्त्र कर देते हैं, कुछ अपनी प्रजा की भूमि को विभक्त रखते हैं, कुछ अन्य नरेश अपनी ही प्रजा के बीच शत्रुता के बीज बो देते हैं, कुछ उन लोगों को अपनी तरफ मिलाने की चेष्टा करते हैं, जिन्हें वे अपने शासनकाल के आरंभ से ही संदिग्ध समझते थे; कुछ दुर्ग बनवाते हैं और कुछ उन दुर्गों को अवहेलना की दृष्टि से देखते हैं; तथा उन्हें गिरवा देते हैं। हालाँकि कोई भी व्यक्ति जब तक किसी राज्य की विशेषताएँ सूक्ष्म रूप से न जाने उस समय तक वह यह राय नहीं दे सकता कि किस राज्य के लिए कौन सी पद्धति उचित होगी लेकिन फिर भी मैं जहाँ तक हो सकेगा साधारण ढंग से उस पर प्रकाश डालूँगा।

किसी भी नये राजा को अपनी प्रजा को निःशस्त्र करते कभी नहीं देखा गया। जब किसी राज्य की प्रजा निःशस्त्र हुई है और गद्दी पर कोई नया नरेश आया है उसने अपनी प्रजा को सशस्त्र ही बनाया है। क्योंकि प्रजा को सशस्त्र कर देने से वह अपनी रक्षा करती है और इस प्रकार आपके राज्य की रक्षा करती है। ऐसा करने से संदिग्ध व्यक्ति भी विश्वासपात्र हो जाते हैं और विश्वासपात्र व्यक्ति विश्वासी बने रहते हैं तथा केवल प्रजाजन न रहकर आपके पक्ष के कट्टर सदस्य हो जाते हैं। लेकिन चूँकि पूरी प्रजा को शस्त्र नहीं बाँटे जा सकते, इसलिए आप स्वभावतः कुछ चुने हुए व्यक्तियों को ही शस्त्र देंगे। ऐसी अवस्था में आप अन्य व्यक्तियों से सुरक्षापूर्वक व्यवहार कर सकते हैं। साथ

ही जिनको आप शस्त्र देंगे, वे आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करेंगे और सदैव आपके बने रहेंगे। अन्य लोगों को भी शस्त्र न मिलने पर बुरा नहीं मानेंगे और यह सोच कर क्षमा कर देंगे कि जिन लोगों में उनसे अधिक योग्यता है, जिन पर बहुत अधिक खतरे और अधिक उत्तरदायित्व हैं, उन्हीं को शस्त्र दिये गये हैं। लेकिन जब आप उन्हें निश्शस्त्र करने लगते हैं, तो आप उन्हें रुष्ट करने लगते हैं, क्योंकि इससे यह प्रकट होता है कि आप उन पर विश्वास नहीं करते। ऐसा करने का कारण या तो यह होता है कि आप कायर हैं या यह प्रकट होता है कि आप में साहस नहीं है। ये दोनों ही धारणाएँ प्रजा के हृदय में आपके लिए घृणा पैदा कर देंगी। और चूँकि आप स्वयं निश्शस्त्र नहीं रह सकते, इसलिए आपको किराये की सेनाओं से काम लेना पड़ेगा। किराये की सेनाओं की उपयोगिता कितनी होती है, यह हम पहले ही बतला चुके हैं। लेकिन यदि किराये की सेना से कुछ लाभ भी हो तो भी वह संख्या में इतनी नहीं हो सकती कि राज्य को बलवान शत्रुओं तथा संदिग्ध प्रजाजनों से एक साथ रक्षा कर सके। इसीलिए, नया नरेश हमेशा अपनी प्रजा को शस्त्रास्त्रों से लैस रखता है। इतिहास इस प्रकार के उदाहरणों से भरा पड़ा है।

लेकिन जब कोई नरेश अपने पुराने राज्य के अलावा किसी नये प्रदेश पर कब्जा करता है तो वह आवश्यक है कि उस प्रदेश की जनता को निश्शस्त्र कर दिया जाय। ऐसी अवस्था में केवल उन्हीं लोगों से शस्त्र न छीनने चाहिए जिन्होंने उस प्रदेश के प्राप्त करने में आपकी सहायता की हो। लेकिन इनको भी कालान्तर में आपको स्त्रैण और निर्बल बना देना चाहिए और ऐसी व्यवस्था आपको करनी चाहिए कि नये राज्य के सभी शस्त्रादि आपके उन सैनिकों के हाथों में पहुँच जायँ जो आपके पुराने राज्य में आपके निकट रहते हों।

हमारे पूर्वज तथा वे लोग जिन्हें हम लोग बुद्धिमान मानते हैं, वे कहा करते थे कि पिस्टोइया पर कब्जा वहाँ के लोगों में दलबंदी कराके

और पीसा पर कब्जा वहाँ दुर्ग आदि बनवाकर रखा जा सकता है। इसलिए वे अपने ही नगरों के प्रजाजनों में वैमनस्य के बीज इसलिए बोया करते थे जिससे वे आसानी से अपना आधिपत्य बनाये रख सकें। उन दिनों जब इटली में शक्ति-सन्तुलन की राजनीति का प्राबल्य था, निस्संदेह यह बड़ी ही अच्छी तरकीब थी लेकिन आजकल की दृष्टि से यह नीति अच्छी नहीं है। मेरा ख्याल है कि साम्प्रदायिकता फैलाकर जो वर्ग उत्पन्न किये जाते हैं, उनसे कोई विशेष लाभ नहीं होता। इसके विपरीत जब उन नगरों पर शत्रु धावा बोलता है तो उनकी बड़ी जल्दी पतन हो जाता है क्योंकि नगर का निर्बल पक्ष सदैव शत्रु से जाकर मिल जाता है और सबल पक्ष शत्रु के आक्रमण का मुकाबला नहीं कर पाता।

मैं समझता हूँ कि वेनिशियनों ने इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर गेल्फ (Guelf) और गिबेलाइन (Ghibelline), इन दो सम्प्रदायों को अपने शासित नगरों में प्रोत्साहन दिया। हालाँकि इन दोनों दलों में परस्पर कभी मारकाट नहीं होने दी गयी, फिर भी नागरिकों में यह दलबन्दी इतनी अधिक बढ़ा दी गयी कि वे हमेशा अपने-अपने दलों का पक्ष लेकर निरन्तर परस्पर लड़ा करते थे और इस प्रकार शासक वर्ग समझता था कि वह उन्हें अपने विरुद्ध कार्य करने का कोई अवसर नहीं दे रहा है। लेकिन वेनिशियनों को इस नीति से कोई लाभ नहीं हुआ। वेला (Vaila) की पराजय के बाद वहाँ की प्रजा के अंश ने साहसपूर्वक विद्रोह करके नगर का शासन अपने हाथों में ले लिया। इस प्रकार की नीतियाँ नरेश की निर्बलता की द्योतक हैं; क्योंकि कोई भी सबल शासन (सरकार) इस प्रकार की बातें जरा भी बरदाश्त नहीं कर सकता। इस तरह के कार्यों से शान्तिकाल में कुछ लाभ हो सकता है, क्योंकि इस प्रकार प्रजा के नियंत्रण में थोड़ी सी सुविधा हो जायगी लेकिन जब युद्ध छिड़ता है तो इस प्रकार की नीति की कलई खुल जाती है।

जब नरेश कठिनाइयों और विरोधों पर विजय पा लेते हैं तो वे

असंदिग्धतः महान् हो जाते हैं। इसीलिए जब भाग्य किसी को ऊपर उठाना चाहता है तो वह उस नरेश के विरुद्ध शत्रुओं को खड़ा कर देता है और उस नरेश को उन शत्रुओं के विरुद्ध युद्ध छेड़ने के लिए विवश कर देता है, जिससे वह नरेश शत्रुओं को परास्त कर दे और उस सीढ़ी के सहारे कीर्तिशिला पर चढ़ जाय जो उसके विरोधियों ने उसके सामने बाधा के रूप में लाकर रख दी थी। इसलिये कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं जो यह सलाह देते हैं कि बुद्धिमान नरेश को जब भी अवसर मिले बड़ी चतुरता से कुछ लोगों के साथ शत्रुता भी मोल ले लेनी चाहिये जिससे वे शत्रुओं का दमन करके अपनी मान-मर्यादा और प्रतिष्ठा में वृद्धि कर सकें।

नरेश को और खास तौर से नये नरेशों को अक्सर ऐसा अनुभव हुआ है कि जिन लोगों पर आरम्भ में उन्होंने संदेह किया बाद में वही व्यक्ति अधिक विश्वासी और उपयोगी सिद्ध हुए। जिन पर पहले विश्वास किया, उन्होंने विश्वासघात किया और उनसे कोई लाभ न हुआ। सायना के नरेश पानडोल्फो पेट्रूसी (Pandolfo Petrucci) तो अपने राज्य का शासन अधिकतर उन्हीं लोगों से चलाया करते थे जिन पर वह विश्वास नहीं करते थे। लेकिन इस सम्बन्ध में हम विस्तृत रूप से वादविवाद नहीं कर सकते क्योंकि ऐसा करना अप्रासंगिक होगा। मैं केवल इतना ही कहूँगा कि जो व्यक्ति किसी नये शासन के आरम्भ में उसके शत्रु होते हैं, और यदि उन्हें अपनी मान रक्षा के लिए किसी सहारे की या किसी के आश्रय की आवश्यकता हो तो, उन्हें बड़ी आसानी से कोई भी नरेश अपने पक्ष में मिला सकता है और वे एक बार नरेश के प्रति राजभक्ति की शपथ जब ग्रहण कर लेंगे तो अत्यन्त स्वामिभक्ति के साथ नरेश की सेवा करेंगे क्योंकि तब उन्हें इस बात की चिन्ता रहेगी कि वे अपने कार्यों द्वारा उस बुरी सम्मति को धो डालें जो पहले उनके बारे में थी। इस प्रकार नरेश हमेशा उन लोगों से अधिक फायदा उठा लेगा जिन पर वह पहले अविश्वास करता था क्योंकि विश्वास-

पात्र अपनी स्थिति को सुरक्षित समझ कर कालान्तर में राज्य के हितो की अवहेलना भी कभी-कभी करने लगते हैं।

यहाँ इसी सिलसिले में यह भी बतलाना आवश्यक है कि जब कोई नरेश किसी प्रदेश पर वहाँ के निवासियो की सहायता से अधिकार करे तो उसे यह अवश्य देख लेना चाहिये जो लोग उसका साथ दे रहे हैं, उनका उसके पीछे उद्देश्य क्या है, और यदि उन्हें नरेश से स्वाभाविक स्नेह नहीं है और वे केवल उसके साथ इसलिए थे कि उन्हें पूर्ववर्ती शासन से असंतोष था तो नये प्रदेश के नये नरेश को अपने नये सहयोगी प्रजाजनों की मैत्री बनाये रखने में बड़ी कठिनाई अनुभव होगी क्योंकि उन्हे असन्तुष्ट करना असंभव होगा। प्राचीन और आधुनिक काल के उदाहरणो से यह सिद्ध हो जायगा कि उस प्रजा को नियंत्रण में रखना कहीं अधिक सरल होता है जो अपने पहले नरेश से सन्तुष्ट रहने के कारण नये नरेश की शत्रु रही हो बजाय उस प्रजा के जो शासन से असन्तुष्ट होने के कारण उससे आकर मिल गई हो।

बहुत से नरेश अपने राज्य को सुरक्षित रखने के लिये किले और दुर्ग आदि बनाने की प्रथा का ही अनुगमन करते हैं। उनका ख्याल होता है कि ऐसा करके वे शत्रुओ के विरुद्ध मोर्चा खड़ा कर सकेंगे और यदि अकस्मात् आक्रमण हुआ तो उस दुर्ग में शरण ले सकेंगे। मै इसका समर्थन करता हूँ क्योकि यह बहुत ही प्राचीन प्रथा है। लेकिन हमने अपने ही समय में यह देख लिया है कि **मेसर निकोलो विटेली** (Messer Niccolo Vitelli) ने **सिता डी केस्टेलो** (Citta di Castillo के दो किलों को अपनी राज्य की रक्षा के लिये तुड़वा डाला था। **अर्बिनी के ड्यूक** गाइड यूबाल्डो (Guid' Ubaldo) ने जब **सीजर बोर्जिया** से अपना राज्य वापस छीना तो उसने घुसते ही राज्य भर के सारे किलों और दुर्गों को न केवल तुड़वा ही डाला बल्कि उनकी नींव तक खुदवा डाली। उसका ख्याल था कि यदि किले न होगे

तो उसका राज्य आसानी से उसके हाथों से न निकल सकेगा। बेन्तीवोगली ने बोलना वापस लौटते समय यही किया था। अतएव समय की आवश्यकतानुसार दुर्ग और किले उपयोगी भी हो सकते हैं और अनुपयोगी भी। यदि उनसे एक तरह से लाभ होता है तो दूसरी तरह से हानि भी हो सकती है। इस प्रश्न पर हम इस तरह विचार कर सकते हैं, जो नरेश विदेशियों से अधिक अपनी प्रजा से डरता है उसे ही किले या दुर्ग बनवाने चाहिये, लेकिन जो प्रजा से नहीं बल्कि विदेशियों से अधिक डरते हैं उन्हें बिना किलो के ही काम चलाना चाहिये। मिलन का किला, जिससे फ्रांसेस्को स्फोरजा ने बनवाया था, वह स्फोरजा वंश को राज्य की किसी भी अन्य अव्यवस्था से अधिक तंग करता रहा है और आगे भी करता रहेगा। इसलिए राजा का सबसे बड़ा दुर्ग प्रजा का उसके प्रति स्नेह है क्योंकि यदि प्रजा आपको नहीं चाहती तो आपके पास एक नहीं हजार किले हों, वे आपके राज्य को बचा नहीं सकते। एक बार आपकी प्रजा ने यदि आपके विरुद्ध विद्रोह कर दिया तो सहायता करने वाले विदेशियों का कभी अभाव नहीं रहेगा। हमने अपने ही काल में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता जिससे यह प्रकट होता हो कि किसी नरेश ने किलों से कोई फायदा उठाया हो। एकाध अपवादात्मक उदाहरणों में काउण्टेस ऑफ फोरली का नाम लिया जा सकता है जिन्होंने अपने पति काउण्ट जीरोलाम्मों के मर जाने के बाद एक किले में पनाह ली थी। ऐसा करने से वह प्रजा की विद्रोहाग्नि से बच गई और मिलन से आनेवाली सहायता की प्रतीक्षा कर सकी। मिलन से सहायता आ जाने पर उसने पुनः अपने राज्य पर कब्जा कर लिया। उस समय कुछ ऐसी परिस्थितियाँ थीं कि विद्रोही प्रजा को किसी विदेशी से सहायता न मिल सकी लेकिन बाद में जब सीजर बोर्जिया ने आक्रमण किया तो एक भी दुर्ग उसके काम न आया। विदेशी आक्रमण और प्रजा की घृणा के कारण दोनों पक्ष, आक्रमणकारी और असन्तुष्ट प्रजा, मिल गये। इसलिये काउण्टेस के लिये यह अधिक अच्छा होता यदि उसने बजाय दुर्गों और किलों का सहारा लेने

के प्रजा का स्नेह प्राप्त करने का प्रयत्न किया होता। अतः इन सब बातों पर विचार करके मैं उस नरेश की भी प्रशंसा करूँगा जो किले बनवाता है और उसकी भी जो नहीं बनवाता, लेकिन मेरी दृष्टि में वह नरेश दोषी होगा जो अपने किलो पर ही विश्वास करके जनता की घृणा का पात्र बनने से नहीं हिचकिचाता।

सारांश

नरेश को अपनी प्रजा को हमेशा सशस्त्र रखना चाहिए, विशेष कर नये नरेश को। केवल उन प्रदेशों की प्रजा के पास शस्त्र नहीं रहने देने चाहिए जिन पर हाल ही में आधिपत्य हुआ हो। साम्प्रदायिकता फैलाने की नीति भी अच्छी नहीं है। उस नरेश को दुर्गों और किलों की कोई आवश्यकता नहीं है जिससे उसकी प्रजा घृणा न करती हो। विदेशी आक्रमणों की दशा में प्रजा के विरुद्ध होने पर ये किले बिलकुल निरर्थक और अनुपयोगी सिद्ध होते हैं।

अध्याय २१

प्रतिष्ठा और मान प्राप्त करने के लिए नरेश को क्या करना चाहिए

बड़े-बड़े उद्योगों तथा अपने बल का परिचय देने से नरेशों की मान-मर्यादा और प्रतिष्ठा सबसे अधिक बढ़ती है। एरागोन नरेश फर्डीनेण्ड जो आज स्पेन के राजा के रूप में हमारे सामने हैं उनको हम लगभग नया नरेश ही कह सकते हैं। इसका कारण यह है कि उन्होंने अत्यन्त निर्बल स्थिति से ऊपर उठ कर ईसाई संसार में अपनी कीर्ति तथा यश की ध्वजा फहरायी और यदि आप उनके कार्यकलापों पर विचार करें तो इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि वे सब के सब महान् हैं और उनमें से कुछ तो असाधारण हैं। अपने शासन के आरंभ में ही उन्होंने ग्रेनेडा (Granada) पर आक्रमण किया। इस आक्रमण की सफलता से ही उनके राज्य की और गहरी नींव पड़ी। पहले उन्होंने अपने कार्य धीरे-धीरे किये जिससे किसी के हस्तक्षेप से उनकी योजनाओं में बाधा न पड़े; उन्होंने केस्टाइल (Castile) के बैरनों का ध्यान केवल युद्ध पर केन्द्रित रखा जिसकी वजह से वे लोग नये सुधारों पर विचार ही न कर पाये और इस प्रकार उन्होंने बैरनों पर इस तरह प्रभुत्व स्थापित कर लिया कि स्वयं बैरन भी नहीं समझ पाये कि क्या हो गया। उनके पास गिरजा का धन था, सेनाओं के लिए अपनी प्रजा थी और लम्बा युद्ध छेड़कर उन्होंने अपने राज्य की सैनिक स्थिति को खूब मजबूत बना लिया जिसकी वजह से बाद में उनका नाम हो गया। इसके अलावा उन्होंने और भी बड़े काम किये और सो भी बराबर धर्म की आड़ में। इस प्रकार उन्हें पवित्र निर्दयताएँ करने का मौका

मिल गया। फलतः उन्होंने अपने राज्य से **मूरों** (Moors) को निकाल बाहर किया और उन्हें खूब अच्छी तरह लूट लिया। उन्होंने **अफ्रीका** पर भी हमला किया, फिर **इटली** में प्रवेश किया और अभी हाल ही में फ्रांस पर भी आक्रमण किया; अतः हम देखते हैं कि वे बराबर कोई न कोई बड़ी योजना बनाते रहे जिससे उनकी प्रजा सदैव अनिश्चितावस्था में बनी रही और बड़े-बड़े अभियानो के परिणामों को मंत्रमुग्ध सी होकर देखती रही। उनकी योजनाएँ तथा अभियान एक के बाद एक करके इस तरह आते रहे कि किसी को उनके विरुद्ध कुछ भी सोचने का अवकाश ही न मिला।

आन्तरिक प्रशासन में भी यदि कोई नरेश मिलन के **मेसर बर्नाबो** (Messer Bernabo) की भाँति अपनी महान् योग्यता का परिचय दे सके तो वह भी बड़ा लाभप्रद सिद्ध होता है। जब नागरिक जीवन में कोई कुछ असाधारण बात, बुरी हो या अच्छी, कर डालता है तो नरेश को ऐसे व्यक्ति ऐसा दण्ड या पुरस्कार देना चाहिए जिसकी चर्चा प्रत्येक व्यक्ति करे। और सबसे बड़ी बात यह है कि प्रत्येक नरेश को सदैव ऐसा यश प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए जिससे उसकी महानता और कीर्ति का लोहा सब लोग मानने लगे।

किसी भी नरेश का मान उस समय भी बढ़ जाता है जब वह अपने आपको किसी का सच्चा मित्र या कट्टर शत्रु प्रकट कर देता है; अर्थात् जब वह बिना किसी शर्त के अपने आपको किसी के पक्ष या विपक्ष में घोषित कर देता है। तटस्थ रहने के बजाय यह नीति सदैव बड़ी लाभदायी होती है। यदि दो पड़ोसी राज्यों में लड़ाई हो जाती है और आप उनमें से किसी एक के पक्ष में नहीं हो जाते हैं तो जो भी पक्ष जीतेगा वह आपको अवश्य अपना शिकार बनायेगा और जो राज्य परास्त होगा वह भी आपकी मुसीबतें देखकर खुश होगा क्योंकि आपने विपत्ति में उसका साथ नहीं दिया था। जब विजेता नरेश हमला करेगा तो न कोई

आपकी बात पूछेगा और न सहायता करेगा। यदि आप विजयी पक्ष से मैत्री भी करना चाहेंगे तो भी विजेता मैत्री न करेगा क्योंकि कोई संदिग्ध मित्र नहीं चाहता। विजित पक्ष भी आपसे दोस्ती न करेगा, कारण आपने उस समय उनकी कोई सहायता न की थी, जब उन्हें उसकी सबसे अधिक आवश्यकता थी।

रोमनों को निकालने के लिए **एटोलियनों** ने एण्टीकोस को यूनान भेजा था। उसने कुछ ऐसे वक्ताओं को **एकियनों** के पास भेजा जो रोमनों के मित्र समझे जाते थे। इन वक्ताओं को भेजे जाने का उद्देश्य यह था कि वे एकियनों को जब लड़ाई हो तो तटस्थ रखने का प्रयत्न करें। इसके विरुद्ध रोमनों ने यह प्रयत्न किया कि एकियन उनकी तरफ से लड़ें। यह मामला विचारार्थ **एकियनों** की परिषद् के सम्मुख उपस्थित किया गया। वहाँ **एण्टीकोस** के राजदूत ने एकियनों को तटस्थ रखने का प्रयत्न किया जिसका रोमन राजदूत ने यह उत्तर दिया: आपको परामर्श दिया गया है कि आप हमारे इस युद्ध में तटस्थ रहें। कहा गया है कि यह सलाह आपके राज्य की रक्षा की दृष्टि से सर्वोत्तम और बहुत ही अधिक उपयोगी है। लेकिन यह बात सत्य नहीं है क्योंकि यदि आप युद्ध में भाग नहीं लेते तो बिना किसी मान या प्रतिष्ठा के आपको विजेता पक्ष के अधीन होकर रहना पड़ेगा।

और ऐसा हमेशा होगा कि जो आपका मित्र न होगा वह चाहेगा कि आप तटस्थ रहें और जो आपका मित्र होगा; वह चाहेगा कि आप किसी एकपक्ष की ओर से युद्ध करें। अस्थिर चित्त के नरेश, तात्कालिक खतरों से बचने के लिए तटस्थता का मार्ग अपनाते हैं और जिसका परिणाम उनका सर्वनाश होता है। लेकिन जब कोई नरेश अपने आपको किसी एक पक्ष की तरफ घोषित कर देता है, और वह पक्ष विजयी हो जाता है तो विजेता पक्ष आपका कृतज्ञ रहेगा तथा वह इतनी कृतघ्नता कभी न करेगा कि आपको ही दबाये चाहे, आप उसकी तुलना में कितने

ही तुच्छ क्यों न हों। इसके अतिरिक्त विजय से मनुष्य इतना मदांध कभी नहीं हो जाता कि वह न्याय-अन्याय का कोई ध्यान न रखें। लेकिन यदि आपके मित्र पक्ष की पराजय हो जाती है तो वह पक्ष जहाँ तक संभव होगा आपको बचाने का यत्न करेगा और आपकी यथाशक्ति सहायता भी करेगा; और आप एक ऐसे भाग्य के साथी हो जाते हैं जो आगे फिर कभी जाग सकता है। पराजय की दशा में, जब दो ऐसे पक्ष लड़ रहे हों जिनमें यदि कोई भी पक्ष जीते तो आपको भयभीत होने की आवश्यकता न हो, तो यह बुद्धिमानी की दृष्टि से और भी आवश्यक है कि आप किसी एक पक्ष के साथ रहें क्योंकि आप एक ऐसे का सर्वनाश करने जा रहे हैं जिसकी रक्षा आपको कदापि नहीं करनी चाहिए, और यदि वह पक्ष जीत जाता है तो वह आपकी इच्छा पर निर्भर करेगा और यह असंभव है कि वह आपकी सहायता से भी न जीते।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है हर नरेश को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह अपने से शक्तिशाली नरेश को नष्ट करने के लिए किसी दूसरे नरेश का साथ उस समय तक न दें, जब तक वैसा करना अत्यन्त ही आवश्यक न हो जाय; क्योंकि यदि जिसका साथ वह नरेश देता यदि वही पक्ष विजयी हो गया तो भी साथ देने वाला नरेश विजयी के चंगुल में आ जाता है और ऐसी स्थिति से हर नरेश को सदैव बचना चाहिए। वेनीशियन ड्यूक मिलन के विरुद्ध फ्रांस से मिल गये, हालाँकि वे चाहते तो इस प्रकार की मैत्री से बच सकते थे, जिसका फल यह हुआ कि उनका सर्वनाश हो गया। लेकिन जब स्थिति हो कि इस प्रकार की मैत्री से बचा ही न जा सके, जैसाकि फ्लोरेंस के निवासियो के साथ उस समय हुआ था जब पोप और स्पेन ने मिलकर लम्बार्डी पर आक्रमण किया था, तो फिर नरेश को एक न एक पक्ष के साथ उक्त कारणों वश मिल ही जाना चाहिए। यह तो किसी को विश्वास ही नहीं करना चाहिए कि कोई राज्य हमेशा किसी सुरक्षित

नीति के अनुसार ही चल सकता है। वास्तविकता यह है कि हर नीति संदिग्ध होती है। यह हर वस्तु का स्वभाव होता है कि यदि वह एक कठिनाई को दूर करने का प्रयत्न करती है तो दूसरी सर्वथा नयी कठिनाई खड़ी हो जाती है। किन्तु बुद्धिमत्ता इसमें है कि आप यह पहले से ही समझ लें कि किस प्रकार की कठिनाई आपके सम्मुख आवेंगी और जो नीति सबसे कम हानिप्रद हो उसको अच्छा समझकर ग्रहण करें।

नरेश को गुणग्राहकता भी दिखलानी चाहिए; योग्य व्यक्तियों का सम्मान करना चाहिए और ललितकलाओं में निपुण लोगों का सम्मान करना चाहिए। इसके अलावा उसे अपने प्रजाजनों या नागरिकों को अपने उद्यम या व्यवसाय शांतिपूर्वक करने के लिए उत्साहित करना चाहिए। चाहे वे वाणिज्य-व्यवसाय करते हों या कृषि, या अन्य कोई कार्य; ऐसा करने से उनके हृदय में ऐसी कोई आशंका न होगी कि उनकी सम्पत्ति उनसे छीनी भी जा सकती है और वे बराबर अपनी सम्पत्ति को बढ़ाने में जुटे रहेंगे। वे कर लग जाने के भय से नये उद्योगों और कारबारों को चलाने में भी न हिचकेंगे। जो नागरिक अपने व्यवसायों में सफल हों, नरेश को उन्हें पुरस्कृत भी करना चाहिए। उस नागरिक को भी प्रोत्साहित करना चाहिए जो अपने नगर या राज्य को उन्नत करने की चेष्टा करें। इसके अलावा वर्ष की उचित ऋतुओं में नरेश को प्रजा के मनोरंजन के लिए उत्सवों और खेल-तमाशों का भी आयोजन करना चाहिए। और चूँकि हर नगर या तो गिल्डों या वर्गों में विभक्त होता है, इसलिए नरेश को हर समूह के साथ मेल-जोल रखने के लिए उनसे मिलते रहना चाहिए और प्रत्येक वर्ग की ओर ध्यान देना चाहिए और अपनी दयालुता, मानवता और कृपालुता का प्रमाण देते रहने चाहिए, परन्तु इतने पर भी अपनी मान-मर्यादा का पूरा ध्यान रखना चाहिए और आवश्यक कर्तव्यों का पालन करने से कभी विमुख न होना चाहिए।

सारांश

जो नरेश अपनी मान-मर्यादा और प्रतिष्ठा बढ़ाने का उत्सुक हो, उसे बड़े-बड़े युद्ध करने की आवश्यकता है और दिखला देने की जरूरत है कि वह हर कठिनाई का सामना कर सकता है। आन्तरिक प्रशासन में भी यदि कोई नागरिक अच्छा कार्य करता है तो उसे बहुत बड़ा पुरस्कार देकर और कोई अपराध करता है तो उसे अत्यन्त कठोर दण्ड देकर नरेश यश अर्जित कर सकता है। उसकी मित्रता और शत्रुता भी सच्ची होनी चाहिए। राजा को गुणग्राहक और ललित कला प्रेमी भी होना चाहिए। उसे अपने नागरिकों को समृद्धि-वान बनने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

———

अध्याय २२

नरेशों के सचिवों या अमात्यों के संबंध में

नरेश के सचिवों या अमात्यों का चयन भी कोई कम महत्वपूर्ण बात नहीं है। वे या तो अच्छे होते हैं या नरेश के समान बुद्धिमान नहीं होते। किसी नरेश के सम्बन्ध में जो धारणा बनती है, वह उसके आसपास के लोगों को देखकर बनती है। वे व्यक्ति योग्य और स्वामि-भक्त होते हैं तो नरेश को बुद्धिमान समझा जाता है, इसलिए कि नरेश में उनकी योग्यता समझ लेने की क्षमता है और वह उन व्यक्तियों को स्वामिभक्त बनाये रख सका है। लेकिन जब नरेश के आसपास के व्यक्ति उपरोक्त कथन के विपरीत होते हैं तो संबंधित नरेश के विषय में भी प्रतिकूल धारणा बन जाती है और यह मान लिया जाता है कि उचित व्यक्तिओं का चयन करने की बुद्धि उसमें नहीं है।

सायना के नरेश **पाण्डोल्फो पेट्रसी** ने **मेसर एण्टोनिओं डा वेनाफ्रो** (Messer Antonio da Venafro) को अपना सचिव बनाया था। उससे जो भी मिलता था, वही नरेश की प्रशंसा करता था। इसका कारण यह था कि उसका मन्त्री अत्यन्त बुद्धिमान था। संसार में तीन तरह के व्यक्ति होते हैं। पहले तो इस प्रकार के जो चीजों को बिना किसी की सहायता के समझ लेते हैं, दूसरे इस प्रकार के जिनको सम-झाया जाय तो बात उनकी समझ में आ जाती है और तीसरे वर्ग में वे लोग आते हैं जो न तो खुद समझते हैं और न समझाने से ही कोई बात उनकी समझ में आती है। पहली और दूसरी कोटि के व्यक्ति अच्छे होते हैं लेकिन तीसरी कोटि के लोग बिलकुल बेकार होते हैं; उनसे कोई काम नहीं हो सकता। उक्त चयन से प्रकट है कि यदि पाण्डोल्फो पहली कोटि का व्यक्ति न था तो कम से कम दूसरी कोटि का तो अवश्य ही था। यदि किसी नरेश में स्वयं भला, बुरा सोचने की शक्ति न हो तो, कम से कम इतनी बुद्धि तो अवश्य होनी चाहिये कि यदि कोई भली और

बुरी बातों को सामने रख दे तो वह बुरे परामर्श को अस्वीकार करके उसे प्रोत्साहित कर सके जो अच्छी सलाह दे रहा हो। ऐसी अवस्था में कोई सचिव नरेश को धोखा नहीं दे सकता, इसलिए वह अच्छा बना रहता है।

किसी मन्त्री या अमात्य की परीक्षा लेने की यह एक अनुभूत पद्धति है जो कभी असफल नहीं होती। अब आप यह देखें कि कोई अमात्य या मन्त्री आपके स्वार्थ की बजाय अपना ही स्वार्थ अधिक सोचता है तो आप समझ लें कि वह व्यक्ति कभी भी अच्छा मन्त्री नहीं हो सकता। आपको ऐसे व्यक्ति पर कभी भी निर्भर नहीं रहना चाहिए; क्योंकि जिस व्यक्ति के हाथ में राज्य की बागडोर दें वह ऐसा होना चाहिये जो आपके हित के सिवा अन्य कोई बात ही न सोचे और केवल वही बातें करे जिससे नरेश को लाभ हो। और नरेश को उसकी इस स्वामिभक्ति के बदले में हमेशा अपने मन्त्री के हितों का ख्याल रखना चाहिए जिससे मन्त्री राजभक्त बना रहे। नरेश को चाहिए कि वह हमेशा मन्त्री का सम्मान करे, उसे धनादि देता रहे और कृपा वृद्धि करता रहे। उसे उत्तरदायित्व कार्य देता रहे जिससे उस मन्त्री को इतना सम्मान और धन मिले कि इनकी आकांक्षा ही उसे न रह जाय। वह परिवर्तनों से डरे। जब नरेश और अमात्य के बीच ऐसे सम्बन्ध स्थापित हो जायँगे तो वे हमेशा एक दूसरे पर निर्भर रह सकेंगे और यदि ऐसा न हुआ तो दोनों में से किसी न किसी को अवश्य नुकसान होगा।

सारांश

नरेश को अपने मन्त्रियों के चयन में बड़ी सावधानी बरतनी चाहिये क्योंकि उन द्वारा ही नरेश की बुद्धि की पहचान होती है। अच्छे मन्त्री को चाहिए कि वह हमेशा नरेश का हित चिन्तन करे और नरेश को चाहिए कि वह मन्त्री का ध्यान रखे। इसी में दोनों की भलाई है।

———

अध्याय २३

चाटुकारों से किस प्रकार दूर रहा जाय

एक और महत्वपूर्ण बात है जिस पर विचार किया जाना आवश्यक है। वह चाटुकारिता, चाटुकारों और चाटुकारिता से कैसे बचा जाय। यदि नरेश बहुत ही बुद्धिमान न हुआ और उसने बहुत ही अच्छा चयन न किया तो वह चाटुकारो के साथ से कठिनाई से ही बच सकेगा। प्रत्येक दरबार में प्रायः खुशामदी मुसाहब भरे रहते हैं और इसका कारण यह है कि हर व्यक्ति को अपनी बड़ाई सुनने में बड़ा आनन्द आता है और हर आदमी इस धोखे में आना पसन्द करता है। यही कारण है कि चाटुकारिता के रोग से बचना बड़ा कठिन है। इसके अलावा यदि कोई चाटुकारों को कठोरतापूर्वक अपने समीप आने से रोक देता है तो उसमें यह खतरा पैदा हो जाता कि कहीं वह घृणास्पद न हो जाय। अतः चाटुकारिता से बचने के लिये सबसे अच्छा उपाय यह है कि आप लोगों को अपने व्यवहार द्वारा बतला दे कि सत्य भाषण से आप रुष्ट नहीं होते हैं। लेकिन जब हर व्यक्ति आपसे सत्य कहने लगेगा तो आप उनका सम्मान खो बैठेंगे। इसलिए किसी भी बुद्धिमान नरेश को एक तीसरा रास्ता अपनाना चाहिये। वह यह है कि नरेश अपना सलाहकार उन्हीं लोगों को बनाये जो अत्यन्त बुद्धिमान हों। उसे अपने इन बुद्धिमान सलाहकारों को ही पूर्ण सत्य बोलने की अनुमति देनी चाहिये लेकिन नरेश को यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि वह जो कुछ पूछे, उसका ही उत्तर सच-सच दिया, जाय अन्य बातों के सम्बन्ध में उसे कुछ भी न बतलाया जाय। फिर भी नरेश को अपने सलाहकारों से हर बात पूछनी चाहिए और उनकी राय पूछनी चाहिये। इसके बाद स्वयं विचार कर के निश्चय करना चाहिये और तदनुसार कार्य करना चाहिये। सभी परामर्शदाताओ से ऐसी मुद्रा में बात करनी चाहिये कि वे स्वतंत्रतापूर्वक संभाषण कर सकें। आप उनकी बातों को अधिक मानें जो स्पष्टवादी हों। इन व्यक्तियों के अलावा आपको अन्य

किसी की बात नहीं सुननी चाहिये। स्वयं फैसला करना चाहिए। एक बार जो निश्चय कर लिया जाय उस पर दृढ़ रहना चाहिये। जो भी इसके विरुद्ध कार्य करता है वह या तो दूसरो की चाटुकारिता की वजह से करता है या वह अपना निश्चय इसलिए बदल देता है कि बहुत से लोग उसे यह राय देते हैं कि अमुक कार्य करने मे उसकी प्रतिष्ठा में बट्टा लग जायगा।

मै इसका एक ताजा उदाहरण देता हूँ। वर्तमान सम्राट **मेक्सी-मिलियन** (Maximilian) के एक मुसाहब **प्रीलूका** (Pri Luca) ने अभी हाल ही में कहा था कि सम्राट् कभी किसी से परामर्श नहीं करते लेकिन इतने पर भी वह कभी कोई कार्य अपनी इच्छानुसार नहीं करते। इसकी वजह यह है कि सम्राट् उपरोक्त पद्धति के अनुसार नहीं चलते। चूँकि सम्राट् के लिए यह आवश्यक होता है कि वह अपनी योजनाओं को गुप्त रखे, इसलिए वे किसी से सलाह नहीं लेते लेकिन जब वे अपनी योजना के अनुसार कार्य करना शुरू करते हैं तो देखते हैं कि उनकी हर बात और इशारे को दूसरे समझ रहे हैं। इसके बाद ही सम्राट् अनुभव करते हैं कि लोग उनकी योजनाओं का विरोध कर रहे हैं और उस विरोध के कारण उन्हें अपनी इच्छानुसार काम करना बन्द करना पड़ता है। इस प्रकार वह जो कुछ एक दिन करते हैं, दूसरे दिन उसी के विरुद्ध कार्य करते हैं। कोई यह नहीं समझ पाता कि वे क्या करना चाहते हैं और उनके कार्यों पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता।

अतः नरेश को परामर्श लेना तो अवश्य चाहिये लेकिन तभी जब वह स्वयं उसकी आवश्यकता अनुभव करे, उस समय नहीं जब लोग (अपने मतलब से) उसे सलाह देना चाहें। नरेश को बिना पूछे सलाह देने प्रवृत्ति को निरन्तर अनुत्साहित करते रहना चाहिए। लेकिन फिर नरेश को बहुत अधिक जिज्ञासु रहने की आवश्यकता है और यह भी आवश्यक है कि जब वह कोई बात पूछे तो उसे हर सच बात को बड़े ध्यान और धैर्य से सुनाना चाहिये। लेकिन यदि कोई सच बात न बत-

लाये तो नरेश को अवश्य क्रुद्ध हो जाना चाहिये। जो लोग यह समझते हैं कि नरेश को बुद्धिमान उसके स्वभाव के कारण नहीं बल्कि उसके आसपास के परामर्शदाताओं के कारण समझाया जाता है, वे हमेशा धोखा खाते हैं। यह निश्चित नियम है कि जो नरेश स्वयं बुद्धिमान नहीं होता उसे बुद्धिमानी के परामर्श भी नहीं मिल सकते। यह बात भिन्न है कि किसी कारणवश वह व्यक्ति भी अत्यन्त बुद्धिमान हो। ऐसी अवस्था में इसका शासन निस्संदेह बड़ा अच्छा होगा। लेकिन यह क्रम भी अधिक दिनों तक नहीं चलेगा क्योंकि फिर वह मन्त्री ही कुछ समय के बाद राजा को उस नरेश से छीन लेगा और उसका स्वामी बन बैठेगा लेकिन यदि कोई मूर्ख नरेश बहुत से व्यक्तियों से सलाह लेगा तो वह विभिन्न प्रकार के मतों से परेशान हो जायगा और उनके बीच कोई साम्य स्थापित नहीं कर पायेगा। उसके अमात्य या मन्त्री भी हमेशा अपना स्वार्थ सिद्ध करने की चिन्ता में रहेंगे। इसी उद्देश्य से वे नरेश को सलाह भी देंगे। वह नरेश न तो उनके परामर्शों में उचित संशोधन कर सकेगा। और न उनकी स्वार्थी वृत्ति को ही समझ सकेगा। इसके विरुद्ध कोई बात हो ही नहीं सकती क्योंकि उस समय तक मनुष्य हमेशा झूठ बोलेगा जब तक परिस्थितियाँ ही सच बोलने का तकाजा न करें। इसलिए बुद्धिमत्तापूर्ण परामर्श सदैव नरेश के बुद्धिमान रहने पर ही उसे मिल सकेंगे, अन्यथा नहीं।

सारांश

बुद्धिमान नरेश को हमेशा अपने परामर्शदाताओं को सच बोलने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये। लेकिन इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उसे सलाह इतनी ही मिले जितनी वह माँगे। यदि नरेश ऐसा करेगा तो उसे चाटुकारों से बचने में काफी सहायता मिलेगी।

अध्याय २४

इटली के नरेशों ने अपने राज्य क्यों खो दिये

पिछले अध्यायों में हम जो कुछ कह आये हैं, यदि उन पर बुद्धिमत्ता से आचरण किया जाय तो उनसे नया नरेश भी अनुभवी सा प्रतीत होगा और यदि वह काफी समय से राज्य कर रहा होगा तो उसका राज्य पहले से भी अधिक सुरक्षित और सुदृढ़ हो जायगा। किसी वंशानुगत राजतंत्र के नरेश की अपेक्षा नये नरेश के आचरण को प्रजा और भी ध्यान से देखती है। यदि यह प्रमाणित हो जाता है कि नरेश गुण-सम्पन्न है तो वह उसके वश में हो जाती है और यदि राजा कहीं प्राचीन कुल का हुआ तब तो स्नेह-संबंध और भी दृढ़ हो जाते हैं, क्योंकि लोगों पर वर्तमान के बजाय अतीत का प्रभाव कहीं ज्यादा पड़ा करता है और जब वे अपनी तात्कालिक स्थिति अच्छी पाते हैं तो उसका पूरा आनन्द लेते हैं और फिर किसी अन्य वस्तु की माँग नहीं करते। उसके विपरीत आवश्यकता पड़ने पर यदि नरेश में अन्य कोई दुर्बलता नहीं हुई तो जहाँ तक बन पड़ता है उसकी रक्षा करने का प्रयत्न करते हैं। अस्तु, ऐसे नरेश को दूना यश मिलता है जो एक नये राज्य की स्थापना कर देता है और उसे सजाता है, उसकी रक्षा की अच्छी विधियाँ, अच्छी सेना, अच्छे मित्रों और अच्छे उदाहरणों से सुदृढ़ व्यवस्था करता है। इसी प्रकार उस नरेश के लिए यह दूनी लज्जा की बात है कि राजकुल से जन्म लेकर वह गद्दी का अधिकार प्राप्त करे और राज्य हाथ में आने के बाद उसे खोदे।

यदि हम उन शासकों पर विचार करें जिन्होंने इटली में अपने राज्यों को हमारे जमाने में खो दिया तो उन सब में एक दोष तो यह

पाया जायगा उनकी अपनी सेना नहीं थी। ऐसे नरेशों में नेपिल्स के राजा, मिलन के ड्यूक तथा अन्य व्यक्तियों के नाम आते हैं। अपनी सेना न होने से राजाओं को कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, यह तो हम विस्तारपूर्वक बतला ही चुके हैं। इटली के कुछ दुर्भाग्यवान राजाओं में ऐसे भी थे जिनकी प्रजा उनसे रुष्ट थी या जिनकी प्रजा रुष्ट न थी वे अपने यहाँ के सामन्तवर्ग को सन्तुष्ट न कर पाये थे। बिना इन दोषों के कोई भी ऐसा राज्य नहीं हो सकता जो रणस्थली में अपनी फौजें भेजने के बाद भी हार जाय। मेसोडोनवासी **फिलिप**, सिकन्दर महान् का पिता नहीं, बल्कि वह जिसे **टाइटस क्विनशियस** (Titus Quintius) ने जीता था, उतना बड़ा नरेश न था जितने उस पर आक्रमण करनेवाले रोम तथा यूनान के नरेश थे, लेकिन सैनिक होने के अलावा वह जानता था कि जनता को किस प्रकार मिलाऐ रखना चाहिए और राज्य के बड़े व्यक्तियों को किस प्रकार सन्तुष्ट रखना चाहिए। अपनी इस योग्यता के कारण वह रोम तथा यूनान के आक्रमणों का बरसों तक सामना करता रहा। हालाँकि युद्ध की वजह से कुछ नगर उसके हाथ से निकल गये लेकिन उसने अपने शेष राज्य की रक्षा कर ली।

इसलिए, हमारे यहाँ के जिन राजाओं के हाथ से बरसों के राज्य निकल गये उन्हें इसमें अपने भाग्य का दोष न समझना चाहिए। इसके प्रतिकूल उन्हें अपनी त्रुटियाँ अनुभव करनी चाहिए। जब शान्तिकाल था तब उन्होंने कभी यह सोचा ही नहीं कि उन पर विपत्ति भी आ सकती है (क्यों मनुष्य का यह स्वभाव होता है कि साफ मौसम में वह आनेवाले तूफानों के संबंध में सोचता भी नहीं है), जिसका फल यह हुआ कि जब विपत्तियाँ आयीं तो बजाय संकट का सामना कर अपने राज्य की रक्षा करने के वे मैदान छोड़ कर भाग गये; और आशा करते रहे कि उनकी प्रजा विजेताओं के अत्याचारों से क्रुद्ध होकर विद्रोह कर देगी और उन्हें फिर वापस बुला लिया जायगा। यह

तरकीब उस समय के लिए ठीक है जब अन्य कोई मार्ग ही शेष न रहा हो; लेकिन इस रास्ते पर ही भरोसा करके संकट के सामना करने का अन्य कोई उपाय न करना बड़ी भारी भूल है। ऐसा करना ठीक उसी तरह होगा जिस तरह कोई यह सोचकर गिर पड़े कि पीछे से आनेवाले लोग उसे उठा लेंगे। हो सकता है कोई आपको उठा ले, हो सकता है न उठाये, इससे आपकी सुरक्षा नहीं होती, क्योंकि आपने अपनी सहायता आप नहीं की है, बल्कि आपकी मदद ठीक उसी तरह की गयी है जिस तरह किसी कायर की की जाती है। रक्षा के वही साधन अच्छे होते हैं, जो निश्चित और टिकाऊ हों, जो केवल आपकी योग्यता पर निर्भर करते हों।

सारांश

इटली के राजाओं के हाथ से राज्य निकल जाने का पहला कारण यह था कि उनके पास अपनी सेनायें नहीं थीं, वे किराये की सेनाओं पर निर्भर करते थे। दूसरा कारण उनकी प्रजा या सामन्तों का असंतोष था। तीसरा कारण यह था कि उन्होंने अपनी रक्षा की व्यवस्था स्वयं नहीं की। वे दूसरों की सहायता का मुँह देखते रहे। राज्य की रक्षा के लिए राजा को अपना प्रबंध करना चाहिए। अपनी योग्यता पर निर्भर रहना चाहिए। परमुखापेक्षी नहीं बनना चाहिए।

——

अध्याय २५

मनुष्य के क्रियाकलापों में भाग्य का स्थान और दुर्भाग्य का सामना कैसे किया जा सकता है

मैं इस बात से अपरिचित नहीं हूँ कि न जाने कितने व्यक्ति मानते आये हैं और अब भी मानते हैं कि इस भौतिक संसार की अधिकांश घटनाएँ ईश्वर और दैव की इच्छा से इस प्रकार संचालित होती है कि मनुष्य अपनी बुद्धि से उनमें कोई परिवर्तन नहीं कर सकता और दैव की इच्छा के विरुद्ध कोई उपाय नहीं चलता और इसलिए कोई भी प्रयत्न करना निरर्थक है और जैसा होता है, वैसा ही होने दिया जाय। इस प्रकार का विश्वास हमारे जमाने में और भी गहरा हो गया है। इसका कारण वे परिवर्तन हैं जो लोगों ने कभी सोचे भी नहीं थे। मैं स्वयं जब इन घटनाओं के सम्बन्ध में सोचता हूँ तो मेरी भी इच्छा अंशतः यही विश्वास करने को होती है। फिर भी कहीं हमारी स्वतंत्र इच्छा बिलकुल ही समाप्त न हो जाय, इसलिए मेरा विश्वास है कि भाग्य हमारे आधे कार्यों को अपनी इच्छा के अनुसार संचालित करता है और आधे कार्य हमारी इच्छाओं से ही होने देता है। मैं भाग्य को एक ऐसी चंचल नदी की उपमा देता हूँ जो क्रुद्ध हो जाने पर मैदानों में पानी ही पानी कर देती, पेड़ों और मकानों को गिरा देती है, इधर की दुनियाँ उधर कर देती है; हर कोई उसकी प्रगति के भयावह रूप को देख कर उसके सामने से बुरी तरह भागता है; हर एक चीज उसके क्रोध के सामने टिक न सकने के कारण आत्मसमर्पण कर देती है। फिर भी जब भाग्य शान्त रहता है तो उसके रोष से रक्षा करने के लिए पक्के तट और बाँध उसी प्रकार बनवाये जा सकते हैं जिस प्रकार उन्हें नदी पर उस समय बनाया जाता

है जब वह शांत रहती है। इस प्रकार जब नदी में बाढ़ आती है तो उसका जल या तो नहरों में चला जाता है या कम से कम बाढ़ की भीषणता और भयानकता कम हो जाती है। इसी प्रकार जहाँ भाग्य से लड़ने की पहले से कोई व्यवस्था नहीं की जाती वहीं भाग्य अपना अत्यन्त उग्र रूप दिखलाता है। इसका कारण यह है कि भाग्य भी यह समझता है कि उसकी उग्रता सीमित करने के लिए कोई बाधाएँ खड़ी नहीं की गयीं हैं। और यदि आप इटली में हुए परिवर्तनों के संबंध में विचार करें तो इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि वहाँ भाग्य की उग्रता को सीमित और संयत करने के लिये पहले से कोई प्रबन्ध नहीं किया गया था। यदि इटली की भी रक्षा की व्यवस्था **जर्मनी, स्पेन**, और **फ्रांस** की भाँति पहले ही से की गई होती तो यह सैलाब इतने परिवर्तन न कर पाता या बहुत संभव है कि आता ही नहीं।

भाग्य के विरुद्ध दिये गये उपरोक्त तर्क पर्याप्त हैं। मै अब कुछ ऐसे उदाहरण दूँगा, जिनसे प्रकट होगा कि आज का भाग्यवान नरेश कल का अभागा और बरबाद नरेश किस प्रकार हो जाता है, हालाँकि उसके चरित्र में कोई विशेष परिवर्तन हुआ नहीं दिखलाई पड़ता। ऐसा कुछ तो उन कारणों से होता है जिनकी चर्चा हम पीछे विस्तारपूर्वक कर आये हैं; अर्थात् जो नरेश अपने आपको पूर्णतः भाग्य के भरोसे छोड़ देता है वह भाग्य के प्रतिकूल हो जाने पर नष्ट हो जाता है। मेरा विश्वास है कि वह व्यक्ति भी सुख से रहेगा जो अपने व्यवहार की पद्धति में समय की आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तन कर ले और जो व्यक्ति ऐसा नहीं करेगा वही अभागा समझे जाने योग्य है। हर एक व्यक्ति यश और धन चाहता है। इस प्रकार सबका लक्ष्य तो एक ही होता है किन्तु उस लक्ष्य के प्राप्ति के साधन भिन्न-भिन्न होते हैं, कोई द्राविड़ी प्राणायाम करके अपना लक्ष्य प्राप्त करता है तो कोई चंचलता से, कोई हिंसा से तो कोई दुष्टता से, कोई धैर्य से तो कोई किसी अन्य मार्ग से अपने लक्ष्य तक पहुँचता है। हम ऐसे भी दो सतर्क व्यक्तियों को देखते हैं। जिनमें से एक अपनी योजनाओं में सफल हो जाता है और दूसरा सफल नहीं होता।

इसी प्रकार हम यह भी देखते हैं कि दो अन्य व्यक्तियों को लक्ष्य प्राप्ति में सफलता मिलती है लेकिन भिन्न-भिन्न साधनों से मिलती है क्योंकि उनमें से एक बहुत ही सावधानी का मार्ग अपनाता है और दूसरा चंचल। साधनों का चयन कैसा है—यह समय पर निर्भर करता है। कभी कोई साधन समयानुकूल होता है तो कभी वही साधन समयानुकूल नहीं होता। इससे यह फल निकलता है, जैसा मै कह चुका हूँ, कि दो व्यक्ति विभिन्न उपायों का अवलम्बन करते हुये अपने उद्देश्यों में सफल हो जाते हैं और दो एक ही उपाय का अवलम्बन करते हैं, लेकिन उनमें से एक सफल हो जाता है, दूसरा नहीं होता। इसी पर किसी की समृद्धि भी निर्भर करती है, क्योंकि जो व्यक्ति सावधानी और बुद्धिमत्ता से कार्य करता है समय और परिस्थितियाँ भी उनके अनुकूल हो जाती हैं और वह सफल हो जाता है। लेकिन यदि समय और परिस्थितियाँ बदल जाती हैं तो उस व्यक्ति का सर्वनाश हो जायगा, क्योंकि वह उनके अनुकूल अपने साधनों और उपायों में कोई परिवर्तन नहीं करता। ऐसे बुद्धिमान व्यक्ति अत्यन्त कम मिलते हैं जो समय और परिस्थितियों के अनुकूल अपने आप में परिवर्तन कर लें। इसका एक कारण तो यह होता है कि जिस उपाय से काम लेने की आदत आदमी की पड़ जाती है, वह उसी से काम लेना पसन्द करता है और दूसरी बात यह है कि जिस साधन से किसी को सफलता मिल चुकी होती है, उसे छोड़ते हुए वह डरता है। इसलिए जब किसी अत्यन्त सावधान व्यक्ति के सामने ऐसी परिस्थिति आती है जिसमें तत्काल कार्य करने की आवश्यकता होती है तो वह हक्का-बक्का रह जाता है और कुछ कर नहीं पाता, जिसका फल होता है कि उसका सर्वनाश हो जाता है। इसीलिए यदि कोई अपने स्वभाव में समय और परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन करता चले तो उसका भाग्य भी कभी पलट नहीं सकता।

पोप जूलियस द्वितीय का यह स्वभाव हो गया था कि हर कार्य वह बड़ी जल्दी करते थे। उनकी यह पद्धति समय और परिस्थितियों के इतने अधिक अनुकूल सिद्ध हुई कि अपने इस स्वभाव और साधन की

वजह से उनको बराबर सफलता मिलती गई। उस युद्ध का ख्याल कीजिये जो उन्होने मेसर जियोवानी बेन्तीवोगली के जीवन काल में बोलना (Bologna से किया था। इस युद्ध से न तो वेनिशियन प्रसन्न थे और न स्पेन के नरेश, फ्रांस से उस समय इस सम्बन्ध में बातचीत चल रही थी, लेकिन पोप जूलियस ने इन सब की कोई परवाह नहीं की और अपने उग्र तथा चंचल स्वभाव के अनुसार बोलना पर आक्रमण कर दिया। उनके इस कार्य से स्पेन और वेनिशियन दोनों ही सहम कर रुक गये। वेनिशियन तो डर कर सहमे थे और स्पेन यह सोच कर कि वह आगे चल कर पूरे नेपिल्स राज्य पर कब्जा कर लेगा। लेकिन ऐसा करके पोप ने अपने साथ फ्रांस के नरेश को भी फँसा लिया, क्योंकि जब फ्रांस ने यह देखा कि पोप स्वयं अपने बूते पर लड़ने को तैयार हैं तो उन्हें भी मैत्री के पर्दे में पोप की सहायता करनी पड़ी। इसकी वजह यह थी कि फ्रास स्वयं वेनिशियनो को परास्त कर देना चाहता था। दूसरे, फ्रांस के नरेश ने यह भी सोचा कि यदि वे सहायता नहीं करते तो इससे उनके हितो को निश्चित रूप से क्षति होगी। इस प्रकार जूलियस ने अपनी चंचलता से वह कार्य कर डाला जिसे कोई पोप चाहे वह कितना ही अधिक बुद्धिमान और सावधान क्यो न होता, नहीं कर पाता, क्योंकि यदि उसने इस बात की प्रतीक्षा की होती कि रोम छोड़ने के पहले ही सारी तैयारियाँ पूरी हो जायँ, जैसा कि कोई भी अन्य पोप करता, तो मौका हाथ से निकल जाता और उसे सफलता न मिल पाती, क्योकि फ्रांस के राजा सहायता देने में हजार बहाने करते और अन्य लोग भी उन्हें तरह तरह से डराते। मै जूलियस के अन्य कार्यों पर विचार न करूँगा, जो सभी इसी तरह के थे और जिन सब में वे सफल हुए। उनका जीवन इतना स्वल्प हुआ कि उन्हें पराजय का कोई अनुभव ही नहीं हो सका। यदि उनको ऐसे समय कार्य करना पड़ा होता जिसमें हर एक कदम बहुत सँभाल-सँभाल कर रखने की आवश्यकता होती तो उनका सर्वनाश हो जाता; क्योंकि वे अपने चंचल स्वभाववश सावधानी से कभी कोई काम नहीं करते।

मैं इससे यह निष्कर्ष निकालता हूँ कि जो व्यक्ति एक ही प्रकार की पद्धतियों को अपनाता है, वह अपने उद्योगों में तभी तक सफल होता है, जब तक उसकी पद्धतियाँ समयानुकूल होती हैं, जहाँ वे समय के विरुद्ध हुईं कि वह व्यक्ति असफल हो जाता है। मैं भी यह विश्वास अवश्य करता हूँ कि बहुत अधिक सावधान रहने के बजाय चंचल होना भी आवश्यक है क्योंकि भाग्य लक्ष्मी एक ऐसी स्त्री के समान है जिस का स्वामित्व आप बल प्रयोग द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं। जो ऐसा नहीं करता और नरमी से काम लेता है वह सफल नहीं हो पाता। इसी प्रकार स्त्री के समान ही भाग्य युवकों के साथ मित्रता रखता है, क्योंकि वे अपेक्षाकृत कम सावधान, अधिक उग्र और उस पर दुस्साहस दिखलाकर कब्जा कर लेते हैं।

सारांश

भाग्य ही सब कुछ नहीं है। मनुष्य के अपने प्रयत्नों का भी बड़ा मूल्य होता है। यदि कोई विपत्ति का सामना करने के लिए पहले से ही तैयार रहे तो या तो उसका भाग्य प्रतिकूल होगा ही नहीं और यदि हुआ भी तो यह विपर्यय उसका अधिक नुकसान न कर पायेगा। भाग्य को अनुकूल रखने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि समय और परिस्थितियों के अनुकूल अपने साधनों और उपायों में परिवर्तन करते चलो। उसके साथ ही भाग्य का स्वामी बनने के लिए यह आवश्यक है कि आप में बहुत साहस हो—कभी-कभी तो दुस्साहस की मात्रा तक।

अध्याय २६

बर्बरों से इटली को मुक्त कराने के लिए शुभोपदेश

जिन बातों के संबंध में मैंने शुरू में चर्चा की थी, उन सब पर अब हमने विचार कर लिया है। एक बात और है जिसपर मैंने विचार किया है और वह है: इटली की वर्तमान अवस्था से उसे कोई बुद्धिमान् और सक्षम व्यक्ति मुक्त करा सकता है या नहीं और ऐसे किसी व्यक्ति के अभ्युदय के लिए परिस्थितियाँ अनुकूल हैं या नहीं। यदि कोई इटली को मुक्त कराने का कार्य अपने हाथ में ले तो वह अपनी मान-मर्यादा की वृद्धि के साथ ही वास्तविक जनसेवा भी कर सकता है या नहीं। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि आज की परिस्थितियाँ सबसे अधिक अनुकूल हैं। और, जैसा मैंने कहा है, अगर मोजेज की शक्ति के प्रदर्शन के लिए यह आवश्यक था कि इजरायलवासी मिस्र में दासता करते होते, **साइरस** की महानता और साहस के क्षेत्र को बढ़ाने के लिए यह आवश्यक था कि मेडीज (Medes) द्वारा फारसवासियों का दमन किया जाता, **थीसियस** की कीर्ति के लिए यह आवश्यक था कि एथेन्सवासी विघटित होते, तो किसी इटालियन प्रतिभा को मान्यता दिलाने के लिए यह भी जरूरी था कि इटली की यह दुरवस्था होती। यह आवश्यक था कि वह हिब्रू लोगों से भी अधिक दासता के पाश में बँधे होते, फारसवासियों से भी अधिक उनका दमन किया जाता और एथेन्सवासियों से भी अधिक उनमें अनैक्य होता; न उनमें बुद्धि होती, न बल और न व्यवस्था। वे पिटे होते, उनका सब कुछ लुट गया होता, उनके घावों से रक्त बह रहा होता, वे परास्त होते और हर तरह से बरबाद हो गये होते।

हालाँकि अब से पहले भी एक आशा की किरण फूटी थी और

लोगों ने सोचा था कि शायद ईश्वर किसी व्यक्ति को इटली की मुक्ति कराने के लिए नियुक्त कर रहा है लेकिन वह आशा धूल-धूसरित हो गयी, क्योंकि अपने जीवन की सफलताओं के उच्चतम शिखर पर पहुँच जाने के बाद अकस्मात् भाग्य ने ऐसा पलटा खाया कि उस व्यक्ति का नाश हो गया। फलतः अब पूरा का पूरा देश निर्जीव पड़ा है। हमारी मातृभूमि इस बात की प्रतीक्षा कर रही है कि कोई ऐसा व्यक्ति खड़ा हो जो उसके घावों की मरहम-पट्टी करे, लम्बार्डी की लूट को रोके, नेपिल्स और टस्कनी के राज्यों के बलात् किये जाने वाले शोषणों को बन्द कराये और उन व्याधियों से मुक्ति दिलाये जो दीर्घकाल से इटली को परेशान कर रही हैं। देखिए, जन्मभूमि किस प्रकार ईश्वर से प्रार्थना कर रही है कि वह किसी को बर्बरों की उद्दण्डता तथा अत्याचारों से छुड़ाने के लिए भेजे। देखिए, वह किस प्रकार ऐसे किसी भी ध्वज के नीचे खड़ी होने के लिए तैयार है, जो उसे विजय दिला सके। मातृभूमि अब केवल आपके घराने की ही ओर तृषित आँखों से देख रही है क्योंकि अब और कोई आशा शेष नहीं है। आपका घराना ही मातृभूमि के उद्धार कार्य का नेतृत्व कर सकता है क्योंकि वह बड़ा सौभाग्यशाली और शक्तिवान् है। ईश्वर और गिरजा दोनों की ही उस पर कृपा है। यदि आप उन लोगों के आदर्श और क्रिया-कलापों का अनुकरण करेंगे जिनका जिक्र मैं कर चुका हूँ, तो आपके लिए ऐसा करना कुछ कठिन भी नहीं होगा। यद्यपि वैसे महान् पुरुष सामान्यतः नहीं मिलते, फिर भी यह न भूलना चाहिए कि वे भी आखिर आदमी ही थे और उनमें से किसी को ऐसे अवसर न मिले थे जैसे आज उपलब्ध हैं। उनका कोई कार्य इतना न्यायोचित न था, जितना आपका यह कार्य होगा। जितनी सरलता से आप यह कार्य कर सकेंगे, कोई न कर सका था। ईश्वर ने भी उनके ऊपर उतनी कृपा न की थी, जितनी वह आप पर करेगा। आपका यह कार्य करना सर्वथा न्याय-संगत होगा क्योंकि "वही युद्ध धर्मसम्मत और न्यायपूर्ण है जो आवश्यक हो, वही

शास्त्र दयावान हैं, जो उद्धार करें"। [1]समस्त इटली अपने उद्धार का इच्छुक है। जहाँ इच्छा हो वहाँ लक्ष्यपूर्ति में कोई कठिनाई नहीं हो सकती—बशर्ते ठीक उन आदर्शों के अनुकूल कार्य किया जाय जो मैं गत् पृष्ठों में मैं आपके सम्मुख रख आया हूँ। इसके अलावा ईश्वर ने भी अलौकिक तमाशे कर दिखलाये हैं। समुद्र खुल गया है, बादल ने आपको रास्ता दिखलाया है, चट्टान से पानी फूट निकला है, पीयूष वर्षा हुई हैं, और हर वस्तु ने आपकी महिमा बढ़ाने में योग दिया है। शेष कार्य आपको करना है। ईश्वर ही सब कुछ नहीं कर देगा क्योंकि वह हमसे हमारी स्वतंत्र इच्छा तथा हमारे भाग्य से हमें मिलनेवाले यश को हमसे नहीं छीनना चाहता।

इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि जो कार्य किसी ने नहीं किया, वह आपके कीर्तिवान् वंश से करने की आशा की जा रही है। और यदि इटली में होनेवाली क्रान्तियों और युद्धों की असफलता से ऐसा लगता है कि देश की सैनिक क्षमता बिलकुल समाप्त हो गयी है तो इसका कारण यह है कि पुरानी युद्ध पद्धतियाँ बिल्कुल बेकार हो गयी हैं और ऐसा कोई व्यक्ति उत्पन्न नहीं हुआ जो नयी पद्धतियाँ खोजता। एक नवोदित नरेश के लिए उन नयी विधियाँ और नयी पद्धतियों से अधिक सम्मान की और कोई बात नहीं होती जिन्हें वह लागू करता है। ये चीजें जब किसी सुदृढ़ आधार पर होती हैं और इनमें महानता होती है तो नरेश के प्रति अधिक से अधिक श्रद्धा प्रकट की जाती है और उसकी सराहना होती है। और इटली में नयी व्यवस्था जारी करने के लिए बड़ा भारी क्षेत्र पड़ा हुआ है। यहाँ के निवासियों में केवल बुद्धि के अभाव के अतिरिक्त अन्य सब गुण हैं। प्रतिद्वंदों और प्रतियोगिता में ही देखिए

---

[1]यह अंश निम्नलिखित लैटिन लोकोक्ति का अनुवाद है; 'Instum enim est bellum quibus necessarium, et pia arma ubi nulla nisi armis spestes.

कितने ऐसे इटालियन यहाँ हैं जो बहुतों से कितने ज्यादा कल, बल और कौशल में निपुण हैं। लेकिन जब सेना का सवाल आता है तो वे अत्यन्त हीन प्रमाणित होते हैं। उनकी यह हीनता पूर्णतः नेताओं की निर्बलताओं के कारण है। जो जानकार हैं उनकी आज्ञाओं का पालन नहीं किया जाता और हर व्यक्ति यही सोचता है कि वह सब कुछ जानता है। अभी तक यहाँ ऐसे किसी व्यक्ति का अभ्युदय नहीं हुआ है जो अपनी वीरता और सौभाग्य से अन्य लोगों को अपने सामने नत कर सके। यही कारण है कि गत् २० वर्षों में जितने भी युद्ध हुए हैं और जिनमें केवल इटालियन सेना रही है; यथा—टारो, सिकन्दरिया, केपुआ, जिनोआ, बेला, बोलना और मेस्त्री के युद्ध, इन सब में इटली की ही पराजय हुई है।

यदि आपका यशस्वी वंश उन महापुरुषों के आदर्शों का अनुकरण करना चाहता है जिन्होंने अपने-अपने देशों का उद्धार कराया था तो यह सबसे ज्यादा जरूरी है कि आपकी अपनी सेना हो। अपनी राष्ट्रीय सेना होना हर बड़े और अच्छे कार्य की सच्ची नींव होती है क्योंकि उसके अलावा आपको अन्यत्र कहीं इतने विश्वासपात्र या सच्चे और अच्छे सैनिक नहीं मिल सकते। हालाँकि उनमें से प्रत्येक सैनिक अपने आप में अच्छा हो सकता है लेकिन जब वे अपने नरेश को अपना नेता देखेंगे, उसकी कृपा अपने ऊपर होते देखेंगे तो वे और भी अच्छे हो जायँगे। विदेशियों से इटली की रक्षा करने के लिए यह आवश्यक है कि हम अपनी सेना बनायें। यद्यपि स्विस और स्पेनिश—दोनों पैदल सेनाएँ बड़ी प्रबल समझी जाती थीं लेकिन फिर भी दोनों की अपनी-अपनी त्रुटियाँ हैं। उन दोनों से भिन्न तीसरे ढंग की जो सेना संघटित की जायगी वह न केवल अच्छी ही होगी, बल्कि उन पर विजय भी प्राप्त कर लेगी। स्पेन की पैदल सेना घुड़सवार सेना का आक्रमण नहीं सहन कर सकती और स्विस पैदल सेना उन सैनिकों से भिड़ते डरती है जो उन्हीं की दृढ़ता से उनका सामना करने के लिए प्रस्तुत हो। इससे यह

परिणाम निकाला जा सकता है कि स्पेनियर्ड फ्रांसीसी घुड़सवार सेना का सामना नहीं कर सकते और स्विस पैदल सेना को स्पेनियर्ड परास्त कर देते हैं। यद्यपि अभी तक स्पेनियर्डों के मुकाबिले की कोई सेना नहीं है लेकिन **रेवना के युद्ध** में एक ऐसा उदाहरण मिला है जिससे स्विसों की भी दुर्बलता का पता चल जाता है। जब स्विसों की भाँति ही संघटित जर्मन बटालियनों पर स्पेनिश सैनिकों ने आक्रमण किया तो जर्मन सेना हार ही जाती यदि कहीं घुड़सवार सेना उनकी मदद को न आयी होती। इन दोनों प्रकार की सेनाओं की त्रुटियाँ जान लेने के बाद एक ऐसी सेना संघटित की जा सकती है जो घुड़सवार सेना का भी सामना कर सके और जिसे पैदल सेना से भी डरने की आवश्यकता न रहे। यह कार्य नये प्रकार के संघटन, सैनिकों और शस्त्रों के चयन द्वारा भली भाँति किया जा सकता है। यही चीजें हैं, जो नये ढंग से नयी व्यवस्थाओं के रूप में जब लागू की जाती हैं तो उनसे किसी भी नरेश का यशोविस्तार होता है और उसकी महानता में चार चाँद लग जाते हैं।

अतः, इस अवसर को किसी भी तरह हाथ से न निकलने दिया जाय। इटली का उद्धार अवश्य किया जाय। इटली के जिन प्रान्तों को विदेशी आक्रमण का शिकार बनना पड़ा है उन प्रान्तों में मुक्तिदाता का स्वागत किन स्नेह, किस हर्ष के आँसुओं के साथ किया जायगा, यह मै प्रकट नहीं कर सकता। उनमें विदेशियों के प्रति कितनी प्रतिहिंसा और अपने नेता में कितना अटूट विश्वास होगा, यह भी कहा नहीं जा सकता। ऐसे नेता के लिए कौन से दरवाजे बंद रह सकेंगे? कौन सी ऐसी प्रजा होगी जो अपने ऐसे राजा की आज्ञा न मानेगी? किस मे उस नरेश का विरोध करने की शक्ति होगी? कौन सा इटलीवासी होगा जो अपने उद्धारकर्ता के प्रति भक्ति प्रकट करने से अपने आपको रोक सकेगा। बर्बरों के आधिपत्य की दुर्गन्ध आज प्रत्येक की नाक सड़ाये दे रही है। ईश्वर करे आपका यशस्वी वंश इस कार्य को उस उत्साह और आशा के साथ अपने हाथ में ले जो हर न्यायोचित उद्देश्य की पूर्ति का बीड़ा उठाते

समय उत्पन्न होती है। जिससे उसके ध्वज के नीचे हमारी पितृभूमि एक बार पुनः उठकर खड़ी हो जाय और उसके तत्वावधान में पेट्रार्क (Petrarch) की यह वाणी सत्य हो जाय :

"निज क्रोध के हो विरुद्ध वीरत्व खड़ा हो जायेगा।
और युद्ध का फल जल्दी ही यहाँ प्रकट हो जायेगा।
क्योंकि इटालियन लोगों की प्राचीन वीरता विश्रुत् है।
निश्चय उनके हृदयों में वह हुई नहीं अब तक मृत है।"*

---

*पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी के सौजन्य से।